UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186512

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

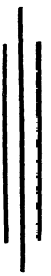
Call No. H160 V31S Accession No. H4110

Author वर्मा, अशोक कुमार

Title सरल आगमन तर्कशास्त्र

This book should be returned on or before the date last marked below.

सरल आगमन तर्कशास्त्र



लेखक

प्रो० अशोक कुमार वर्मा

रचयिता :—भारतीय तर्क परिचय (न्याय), पाश्चात्य तत्त्व विज्ञान परिचय,
पाश्चात्य दर्शन (बेकन से कांट), आदि।



प्रकाशक

किताब कुञ्ज

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

प्रकाशक—

किताब कुञ्ज

सब्जीबाग,

पटना—४

लेखक द्वारा

सर्वाधिकार सुरक्षित है

१९५०

प्रथम संस्करण—१०००

द्वितीय संस्करण—३०००

मुद्रक—

मोहनलाल बिशनोई

मोहन प्रेस

फदमकुआं,

अपनी

पूजनीय मां

तथा

पूज्य पिताजी

को

सादर समर्पित,

अशोक

प्रथम संस्करण

अपनी बात

पुस्तक लिखने की कामना बहुत दिनों से थी पर डरता था। मित्रों से प्रोत्साहना मिली। मैंने लिखना आरम्भ किया। प्रयास मेरी यही रही है कि बोलचाल की भाषा में तथा दैनिक जीवन के उदाहरणों से विषय का परिचय दे दूँ। कहां तक सफलता मिली है, मैं नहीं जानता।

पाठ्य-क्रम आई. ए. के छात्रों की आवश्यकतानुसार रखा गया है। सुभीते के लिए प्रश्न-पत्र भी दे दिए गए हैं। आशा करता हूँ कि विद्यार्थियों को इससे सहायता मिलेगी।

लिखने में Welton & Monahan की Intermediate Logic, Carveth Read की लौजिक, B. N. Roy, Mitra, Mill तथा Welton के पुस्तकों की सहायता ली गई है। मैं उनका अनुगृहीत हूं।

अपने मित्र राय शिवेन्द्र बहादुर, बृजनन्दन प्रसादजी तथा पं० रमाशंकर जी को धन्यवाद क्या दूँ? उनकी प्रोत्साहन और प्रयास का ही तो यह फल है। दो तीन अध्यायों में मेरी संगिनी का भी हाथ रहा है। उसे कैसे धन्यवाद दूँ?

नालंदा कालेज
बिहार शरीफ २२-७-४८

अशोक कुमार वर्मा

द्वितीय संस्करण

दो शब्द

मुझे हर्ष है कि विद्यार्थियों ने हमारी पुस्तक को अपनाया। इस संस्करण में अन्य विषय भी जोड़ दिए गए हैं और कहीं-कहीं उदाहरण बढ़ा दिए गए हैं। आशा है विद्यार्थियों को इससे ज्यादा लाभ होगा।

इस संस्करण में पुस्तक की रूप-रेखा भी बदल दी गई है। इसके लिए और पुस्तक को शीघ्रातीशीघ्र छपवाने के लिए प्रकाशक तथा मोहन लाल जी, मोहन प्रेस के संस्थापक, ही धन्यवाद के पात्र हैं।

वी० एन० कालेज
२५-७-५०

अशोक

विषय-सूची

पहला अध्याय

आगमन (Induction) और उसकी आवश्यकता

पृष्ठ-संख्या

१. आगमन की आवश्यकता ... १
२. समस्या ... ४
३. आगमन के लक्षण [Characteristics of Induction] ... ५
४. आगमन का उद्देश्य [Aim] ... ६
५. अभ्यास ... १०

दूसरा अध्याय

आगमन के भेद [Kinds]

१. आगमन के भेद [Kinds] ... ११
२. अवास्तविक आगमन [Inductions improperly so called] ... १२
[क] पूर्ण आगमन [Perfect Induction] ... १२
[ख] समयौक्तिक अनुमान [Induction by Parity of Reasoning] ... १४
[ग] अंश-संकलन [Colligation of Facts] ... १६
३. वास्तविक आगमन [Inductions Proper] ... १८
[क] वैज्ञानिक आगमन [Scientific Induction] ... १८
[ख] व्यावहारिक आगमन [Unscientific Induction] ... १८
[ग] सादृश्यानुमान [Analogy] ... २१
[घ] सम्भावना के आधार पर अनुमान [Argument from Probability] ... २१
४. आगमन के अन्य भेद ... २२
५. अभ्यास ... २२

तीसरा अध्याय

व्याप्ति-विधि [Inductive Method]

पृष्ठ-संख्या

१. व्याप्ति-ग्रहण की पद्धति [Steps of Inductive Method] ... २४
२. आगमन की आत्मगत [Subjective] और विषयगत [Objective] शर्तें ... २६
३. भिन्न क्रमों का महत्व ... ३०
४. आगमन और निगमन ... ३१
५. जेवन्स और अन्य तार्किकों का मत ... ३६
६. आगमनात्मक परम्परानुमान [Inductive syllogism] ... ३६
७. आगमन से लाभ ... ४१
८. अभ्यास ... ४२

चौथा अध्याय

आगमन का आधार [Grounds of Induction]

१. आगमन का आधार [Ground] ... ४४
२ प्रकृति-समरूपता-नियम [Law of Uniformity of Nature] ... ४७
३. प्रकृति-समरूपता में विश्वास का सूत्र [Origin of belief in the Law of Uniformity of Nature] ... ४६
४, कार्य-कारण नियम [Law of Causation] ... ५३
५. कार्य-कारण और प्रकृति-समरूपता नियमों में सम्बन्ध ... ५३
६. कारण का अर्थ ... ५५
[क] कारण के गुण-सम्बन्धी लक्षण [Qualitative Marks] ... ५५
[ख] कारण के परिमाण-सम्बन्धी लक्षण [Quantitative Marks] ... ५६
७. उपाधि [Condition] और कारण ... ६१
८. उत्तेजक और अन्योन्यस्थिति [Moving power & Collocation] ... ६२

पृष्ठ-संख्या

९. पर्वतक और परिवर्तित [Agent and Patient] ... ६३
१०. कारण के विषय में भिन्न मत [Different views of causation] ... ६३
११. कारण-सम्बन्ध का विज्ञान में महत्व [Importance of causation in Science] ... ६५
१२. बहुकारणवाद [Plurality of Causes] ... ६५
१३. कारणों का संयोग और कार्यों का समिश्रण [Conjunction of Causes & Intermixture of Effects] ... ६७
१४. Mutuality of Cause & Effect ... ६९
१५. अभ्यास ... ६९

पांचवाँ अध्याय

आगमन का आकार-सम्बन्धी आधार-निरीक्षण और प्रयोग

[Formal grounds of Induction-Observation & Experiment]

१. निरीक्षण का अर्थ [Meaning of Observation] ... ७१
२. निरीक्षण की शर्तें [Conditions of Observation] ... ७३
३. निरीक्षण-सम्बन्धी भूलें [Fallacies of Observation] ... ७४
१. ठीक नहीं देखने की भूल [Mal observation] ... ७४
२. नहीं देखने की भूल [Non-observation] ... ७५
४. प्रयोग [Experiment] ... ७६
५. निरीक्षण और प्रयोग [Observation & Experiment] ... ७७
६. प्रयोग से विशेष सुविधाएँ [Advantages of Experiment over Observation] ... ८०
७. निरीक्षण से विशेष सुविधाएँ [Advantages of observation over Experiment] ... ८१
८. अभ्यास ... ८२

छठा अध्याय

कल्पना (Hypothesis)

		पृष्ठ-संख्या
१.	कल्पना का अर्थ [Meaning of Hypothesis] ...	८४
२.	कल्पना की उत्पत्ति [Origin of Hypothesis] ...	८७
३.	कल्पना के प्रकार [Forms of Hypothesis] ...	८८
४.	यथार्थ कल्पना की शर्तें [conditions of a legitimate... Hypothesis] ...	८९
५.	कल्पना के प्रमाण [Proofs of a Hypothesis] ...	९२
६.	काम चलाऊ कल्पना [Working Hypothesis] ...	९६
७.	कल्पना, सिद्धान्त, नियम, और यथार्थता [Hypothesis, Theory, Law & Fact] ...	९६
८.	काल्पनिक प्रतिरूपक [Representative Fiction] ...	९७
९.	कल्पना का महत्व [Importance of Hypothesis] ...	९७
१०.	कल्पना से लाभ [Utility of Hypothesis] ...	९८
११.	अभ्यास ...	९९

सातवाँ अध्याय

कार्य-कारण सम्बन्ध के निश्चय करने की विधि

[Canons of Direct Induction]

१.	विषय प्रवेश ...	१०१
२.	निराकरण के नियम [Principles of Elimination] ...	१०२
३.	The Method of Agreement ...	१०४
४.	The Joint Method of Agreement and Difference	११०
५.	The Method of Difference ...	११४
६.	The Method of Concomitant Variations ...	११८
७.	The Method of Residues. ...	१२२
८.	मिल की विधियों की समीक्षा ...	१२४

पृष्ठ-संख्या

९. मिल की विधियों की आलोचना ... १२७

१०. अभ्यास ... १२८

आठवाँ अध्याय

निगमनयुक्त आगमन [Deduction in Induction] या निगमन रीति [Deductive Method]

१. विषय प्रवेश ... १३०

२. निगमन रीति के प्रभेद [kinds] ... १३१

३. गुण-सम्बन्धी निगमन रीति [Abstract Deductive Method] ... १३२

४. वस्तु-सम्बन्धी निगमन रीति [Concrete Deductive Method] ... १३२

[क] अव्यवहित रीति [Direct Deductive Method] ... १३३

[ख] व्यवहित रीति [Indirect Deductive Method] ... १३४

[ग] दोनों में भेद [Distinction] ... १३५

५. अभ्यास ... १३६

नवाँ अध्याय

आकस्मिकता [Chance] और सम्भावना [Probability]

१. विषय-प्रवेश ... १३७

२. आकस्मिकता [Chance] क्या है ? ... १३८

३. आकस्मिकता [Chance] का निराकरण [Elimination] ... १४०

४. संभावना [Probability] ... १४१

५. संभावना का आधार [Grounds] ... १४३

६. कारण की गवेषणा में संभावना-सिद्धान्त ... १४४

७. सम्भावना की निर्धारण विधि [Calculation] ... १४५

८. संभावना का प्रयोग [Use] ... १४८

९. सम्भावना और आगमन [Prabability and Induction] १४८

पृष्ठ-संख्या

१०. सम्भावित अनुमान [Probable argument] ... १५०
११. अभ्यास ... १५१

दसवाँ अध्याय

संख्यात विधि [Statistical Method]

१. संख्यात विधि की आवश्यकता ... १५२
२. संख्यात विधि क्या है ? ... १५४
३. संख्यात्मक अन्वेषण की सामान्य विधि [General Methods of Statistical Investigation] ... १५५
४. [क] घटना विशेषों का इकट्ठा करना [Collection of Data.] १५६
[ख] घटना विशेषों को अंकित करना [Tabulation and Classification] ... १५७
[ग] औसत [Average]-Mean, Median and mode–deviation [भ्रंश] ... १५९
[घ] सम्बन्धन [Correlation] ... १६५
५. व्यक्तिगत विकार [Personal Equation] ... १६७
६. अभ्यास ... १६८

ग्यारहवाँ अध्याय

सादृश्यानुमान [Analogy]

१. सादृश्यानुमान [Analogy] का स्वरूप [Nature] ... १६९
२. सादृश्यानुमान और वैज्ञानिक आगमन [Analogy and Scientific Induction] ... १७१
३. सादृश्यानुमान और निगमन [Analogy and Deduction] ... १७२
४. सादृश्यानुमान की निश्चयात्मकता [Strength of Analogical argument] ... १७३
५. सादृश्यानुमान के दोष (Fallacies) ... १७४

पृष्ठ-संख्या

६. सादृश्यानुमान की उपयोगिता (Use) ... १७४
७. अभ्यास ... १७५

बारहवाँ अध्याय

प्राकृतिक नियम [Law of Nature]

१. विषय-प्रवेश ... १७६
२. 'नियम' शब्द के भिन्न अर्थ ... १७६
३. नियमों का आपसी सम्बन्ध ... १७७
४. प्राकृतिक नियमों का वर्गीकरण [Classification] ... १७६
[क] स्वयंसिद्ध सिद्धांत [Axioms] ... १७६
[ख] मूल नियम [Primary Laws] ... १८०
[ग] गौण नियम [Secondary Laws] ... १८१
५. नियमित संसार ... १८३
६. अभ्यास ... १८४

तेरहवाँ अध्याय

व्याख्या [Explanation]

१. व्याख्या का अर्थ ... १८५
२. वैज्ञानिक तथा प्रचलित व्याख्या [Scientific and Popular Explanation] ... १८६
३. वैज्ञानिक व्याख्या का स्वरूप [Nature] ... १८७
४. व्याख्या के प्रकार [Forms] ... १८६
५. व्याख्या की सीमा [Limits] ... १६०
६. व्याख्या के दोष [Fallacies] ... १६१
७. अभ्यास ... १६२

चौदहवाँ अध्याय

परिभाषा [Definition]

१. विषय-प्रवेश ... १६३
२. परिभाषा की वास्तविक [Material] शर्तें ... १६४

पृष्ठ-संख्या

३. परिभाषा के प्रभेद [Kinds] ... १६६
४. अभ्यास ... १६७

पन्द्रहवाँ अध्याय

वर्गकरण [Classification]

१. वर्गीकरण का अर्थ ... १६८
२. वैज्ञानिक [Scientific] तथा लौकिक [Popular] वर्गीकरण ... २००
३. प्राकृतिक [Natural] वर्गीकरण और प्राकृतिक जाति प्रकार सिद्धांत [Theory of Natural Kinds] ... २०१
४. वर्गीकरण के नियम [Rules] ... २०३
५. श्रेणी द्वारा वर्गीकरण [Classification by series] ... २०३
६. व्यक्ति-विशेष द्वारा और परिभाषा द्वारा वर्गीकरण [Classification by Type and Definition] ... २०४
७. वर्गीकरण और व्याख्या [Explanation] ... २०५
८. वर्गीकरण और विभाजन [Division] ... २०६
९. वर्गीकरण और परिभाषा [Definition] ... २०७
१०. वर्गीकरण की सीमा [Limits] ... २०७
११. वर्गीकरण का उपयोग [Use] ... २०८
१२. अभ्यास ... २०९

सोलहवाँ अध्याय

पदक्रम और नामक्रम

[Terminology & Nomenclature]

१. विषय-प्रवेश ... २१०
२. नामक्रम और पदक्रम [Nomenclature & Terminology] ... २११
३. नामों का लौकिक [Popular] और वैज्ञानिक व्यवहार और उससे लाभ [Uses] ... २११
४. नामों के वैज्ञानिक प्रयोग की शर्तें [Conditions] ... २१३
५. शब्दों के अर्थान्तर का कारण ... २१५
६. अभ्यास ... २१५

सत्रहवाँ अध्याय

तर्काभास [Fallacy]

पृष्ठ-संख्या

१. विषय-प्रवेश और तर्काभास का वर्गीकरण ... २१७
२. अनुमान-सम्बन्धी भूलें [Inferential fallacies] ... २१९
[क] कारण-सम्बन्धी भूल [Fallacy of Causation] ... २१९
[ख] Analogy में भूल ... २२१
[ग] सामान्यीकरण की भूल [Illicit generalisation] ... २२१
३. अनुमान-सम्बन्धी क्रियाओं में भूल [Non-inferential Fallacies] ... २२२
[क] निरीक्षण-सम्बन्धी भूल [Fallacy of observation] ... २२२
[ख] वर्गीकरण की भूल ... २२२
[ग] व्याख्या, परिभाषा, नामकरण, इत्यादि में भूल ... २२२
४. सिद्धि-सम्बन्धी भूल [Extra Logical Fallacy] ... २२२
[क] प्रतिवाद का प्रज्ञान [Ignoratio Elenchi] ... २२२
[ख] आत्माश्रय [Petitio Principii] ... २२४
[ग] बहु प्रश्नात्मक दोष [Fallacy of Many Questions] ... २२५
[घ] अकारण को कारण मानना [Non causa pro causa] ... २२६
[ङ] असम्बद्ध [Non Sequitur] ... २२६
५. अभ्यास ... २२६

अठारहवाँ अध्याय

नैयायिक व्याप्ति विधि [Nyayika Method of Induction]

१. अनुमान और उसका आधार ... २२७
२. व्याप्ति ... २२९
३. व्याप्ति-ग्रहण के उपाय ... २३१
४. पाश्चात्य विधि और भारतीय विधि ... २३६
५. हेत्वाभास ... २३७
६. हेत्वाभास के प्रभेद ... २३८
७. अभ्यास ... २४२

परिशिष्ट

[क] पाश्चात्य आगमन का संक्षिप्त इतिहास ... २४३
[ख] पटना यूनिवर्सिटी के प्रश्न-पत्र १९४४-१९५० ... २४६

पहिला अध्याय

आगमन और उसकी आवश्यकता

§१. आगमन (Induction) की आवश्यकता
§२. समस्या
§३. आगमन के लक्षण (Characteristics of Induction)
§४. आगमन का उद्देश्य (Aim)
§५. अभ्यास

§१. आगमन की आवश्यकता

अनुमान (Inference) मनुष्य के ज्ञान का एक साधन (source) है। चाहे कोई तर्कशास्त्र (Logic) का अध्ययन (study) करे या नकरे, वह अपने जीवन में न जाने कितनी बार अनुमान से काम लेता है। अनुमान दो प्रकार का होता है, एक, जिसमें किसी जाने हुए सत्य से हम कोई निष्कर्ष (conclusion) निकालते हैं और दूसरे, जिसमें कुछ चीजों को देखकर वैसी और बेदेखी चीजों के विषय में कुछ अनुमान करते हैं। पहले को निगमन-विधि (Deduction) और दूसरे को आगमन (Induction) कहते हैं। जब कोई यह जानकर कि, 'जितने कांग्रेसी हैं' खद्दर पहनते हैं और 'राजेन्द्र बाबू कांग्रेसी हैं' 'इस निष्कर्ष (conclusion) पर पहुँचता है कि 'वह भी खद्दरधारी हैं' तो वह निगमन-विधि का प्रयोग करता है। निमगन-विधि में निष्कर्ष के आधार-वाक्य (premises) सत्य मान लिये जाते हैं। फिर, 'दो, चार या दस तिजारतवालों को अमीर देखकर जब कहा जाता है कि सब तिजारतवाले अमीर हैं तो यह भी अनुमान ही है, पर विधि दूसरी है। इसमें कुछ उदाहरणों को देखकर कोई फल निकाला जाता है। इसमें निष्कर्ष का आधार सत्य मान नहीं लिया जाता अपितु उसकी परीक्षा की जाती है। इसलिये हम देखते हैं कि बिना Induction के अनुमान का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता।

तर्कशास्त्र में अनुमान-सम्बन्धी-सत्य प्राप्त करने का उद्देश्य रहता है; पर सत्य दो प्रकार का है—आकारिक (formal) और वास्तविक (material)।

अतः किसी अनुमान में केवल आकारिक सत्यता हो सकती है या आकारिक और वास्तविक दोनों। उदाहरण के लिए, सभी आदमी मरणशील है; राम मनुष्य है इसलिए राम मरणशील है। इस अनुमान में वास्तविक सत्यता है क्योंकि इसके प्रत्येक वाक्य वास्तविक हैं; पर 'सभी मनुष्य अमर है, राम मनुष्य है, इसलिए राम अमर है, इसमें केवल आकारिक सत्यता है। वास्तव में मनुष्य अमर नहीं है। निगमन-विधि में अनुमान के केवल रूप (form) की परीक्षा की जाती है तथा नियम बताए जाते हैं। 'सभी मनुष्य पक्षी हैं' 'राम मनुष्य है' के आधार पर 'वह भी पक्षी है' निष्कर्ष, रूप के दृष्टि से शुद्ध है पर इसका विषय (matter) अशुद्ध है। विषय (matter) की शुद्धता के नियम अथवा विषय के दृष्टि से शुद्ध निष्कर्ष निकालने की क्रिया अगमन में ही बतलाई जाती है।

तीसरे, कोई भी अनुमान तो तब पूर्ण रूप से शुद्ध कहा जायेगा जब उसका विषय और रूप दोनों ही शुद्ध हों। निगमन-विधि में निष्कर्ष (conclusion) के विषय की सत्यता उसके आधार-वाक्य (premises) पर निर्भर रहती है। तब प्रश्न है कि ऐसे आधार-वाक्य जिनमें वास्तविकता (material truth) हो, कहाँ से आए? यदि कोई ऐसा निष्कर्ष हो जिसमें कुछ विशेष (particular) चीजों से सम्बन्ध हो तो ऐसे निष्कर्ष का आधार निरीक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जैसे, 'उस टोकरी के दस आम मीठे हैं', इत्यादि। उस टोकरी के दस आमों को चखकर यह कहा जा सकता है।

पर मनुष्य विशेष वस्तुओं को जान कर सन्तुष्ट नहीं होता, वह उनके नियमों को जानना चाहता है। नियम सामान्य वाक्य के रूप में व्यक्त रहते हैं और एक समान सभी वस्तुओं पर लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, सभी आम मीठे हैं, सभी नक्षत्र घूमते हैं, इत्यादि। परंपरानुमान (syllogism) में ऐसे ही सामान्य (universal) वाक्यों की आवश्यकता होती है। उनमें सम्पूर्ण उद्देश्यों (subject) के विषय में कुछ कहा जाता है, जैसे, 'सभी मनुष्य मरणशील हैं'। ऐसा वाक्य निरीक्षण द्वारा नहीं बन सकता क्योंकि सभी मनुष्य का निरीक्षण सम्भव नहीं है। इसलिये प्रश्न है कि ऐसे सामान्य (universal) वाक्य कैसे बनें जिनमें वास्तविकता (material truth) हो?

ऐसे वाक्य तीन रूप से मिल सकते हैं। वास्तविक सामान्य वाक्य स्वयं सिद्ध वाक्यों (Axioms) के रूप में मिलते हैं, जैसे 'दो विरोधात्मक गुण एक ही समय में एक ही वस्तु में नहीं हो सकते'; लेकिन ऐसे वाक्यों की संख्या बहुत ही न्यून है। मनुष्य का ज्ञान यदि इन्हीं स्वयंसिद्ध वाक्यों तक सीमित रहे तो ज्ञान का दायरा बहुत ही संकीर्ण हो जायगा। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे सामान्य वाक्य हैं जिन्हें स्वयंसिद्ध नहीं कहा जा सकता है, जैसे, सभी ग्रह घूमते हैं। यह वाक्य नियम के रूप में है, पर यह स्वयंसिद्ध वाक्य नहीं है। इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता है। इसलिए स्वयंसिद्ध वाक्यों से समस्या का समाधान नहीं होता है। वियोजक (analytic) वाक्यों के रूप में भी वास्तविक सामान्य वाक्य आते हैं, जैसे 'त्रिभुज तीन भुजा वाली आकृति है' लेकिन ऐसे वाक्यों से किसी नई बात का ज्ञान नहीं होता। जिसे त्रिभुज का बोध है उसे यह मालूम है कि इसका तीन भुजा सहित होना धर्म है। वियोजक वाक्यों में उद्देश्य का विश्लेषण किया जाता है। इसमें विधेय के स्थान पर उद्देश्य का केवल आवश्यक धर्म (essential attribute) मात्र रहता है। इसलिए जिसे उद्देश्य का ज्ञान है उसे ऐसे वाक्य से कोई नई बात नहीं मालूम होती है। नियम संयोजक (synthetic) वाक्य के रूप में रहते हैं, जैसे, 'हंस उजले रंग के होते हैं। इस वाक्य में 'उजला पर' हंस का आवश्यक धर्म (essential attribute) नहीं है। उजला होने से ही उसे हंस नहीं कहा जाता है। इसलिए इसमें उद्देश्य के साथ एक नया गुण जोड़ा गया है। इससे हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है। अनुमान में उसी की आवश्यकता है क्योंकि उनसे किसी नई बात का ज्ञान होता है।

कोई सामान्य वाक्य निगमन-विधि द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है, जैसे 'सभी आम पुष्टकारक हैं' सिद्ध करना है तब दो आधार-वाक्य 'सभी फल पुष्टकारक है और सभी आम फल हैं' मान कर उसे सिद्ध किया जा सकता है। पर फिर प्रश्न होता है कि ये दो सामान्य वाक्य 'सभी फल पुष्ट कारक है और सभी आम फल है' कैसे प्राप्त हुए। अतः निगमन-विधि द्वारा किसी सामान्य वक्य को प्रमाणित (prove) करने के लिये किसी दो दूसरे सामान्य वाक्यों को मानना पड़ता है। दो माने हुए वाक्यों को सिद्ध करने के

लिये फिर चार की आवश्यकता होती है। इस प्रकार गुत्थी सुलझने की बजाय उलझती ही जाती है। इसलिये निगमन-विधि द्वारा नियम अर्थात् वास्तविक सामान्य वाक्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। उनके लिये Induction आवश्यक है।

सारांशः—

(i) अनुमान दो प्रकार के हैं—निगमन और आगमन—अनुमान का अध्ययन पूर्ण नहीं होगा जब तक आगमन का अध्ययन नहीं किया जाय।

(ii) निगमन-विधि द्वारा अनुमान के केवल रूप की परीक्षा की जाती है अनुमान की वास्तविकता की परीक्षा आगमन ही द्वारा सम्भव है।

(iii) परम्परानुमान में एक सामान्य वाक्य की आवश्यकता होती है ऐसे वाक्य न अनुभव द्वारा, न स्वयंसिद्ध वाक्यों द्वारा, न वियोजक वाक्यों के रूप में और न निगमन-विधि द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। अतः आगमन आवश्यक है।

§२. *समस्या* (**Problem**)

मनुष्य को अनुभव तो विशेष (particular) वस्तुओं या विशेष घटनाओं का होता है। अपने लघुजीवन में हमें किसी वर्ग की समस्त चीजों का अनुभव होना संभव ही नहीं है। लेकिन विशेष वस्तुओं के अनुभव के आधार पर सामान्य रूप से उसके विषय मे कुछ कहा जाता है, जैसे, 'थोड़े से कौओं को देख कर कहा जाता है कि सब कौए काले होते हैं। किसी ने 'सब मनुष्यों को नहीं देखा है, न देखना संभव ही है पर कहते हैं कि 'सब मनुष्य मरणशील हैं'। किन नियमों के द्वारा निश्चयपूर्वक विशेष अनुभव के आधार पर 'सब' के विषय में अनुमान किया जा सकता है, यह निर्धारित करना आगमन (Induction) का लक्ष्य है। दूसरे शब्दों में, समस्या यह है कि, किस सिद्धांत के आधार पर किसी जाति के थोड़े से व्यक्तियों को देखकर उस जाति के व्यापक नियम बना सकते हैं?

ये नियम हैं कार्य-कारण तथा प्रकृति-समरूपता के। इन्हीं दोनों के आधार पर कोई व्यापक नियम बन सकता है। इन आधार-नियमों का स्पष्टीकरण पीछे होगा।

§३. Characteristics of Induction

कुछ उदाहरणों का निरीक्षण (observation)कर, उनके विषय में, प्रकृति-समरूपता (Uniformity of Nature) तथा कार्य-कारण (Causation)--नियमों के आधार पर, यथार्थ (real) सामान्य वाक्य के रूप में कोई नियम स्थापित करने को Induction कहते हैं।* कुछ मनुष्यों को मरते हुए देखकर हम सामान्य रूप से कहते हैं कि 'सब मनुष्य मरणशील हैं'। इस प्रकार के अनुमान हम नित्य दिन अपने जीवन में करते हैं पर वे वास्तविक नहीं होते क्योंकि उनके निष्कर्षों में निश्चयात्मकता (certainty) नहीं होती, जैसे, हम चार प्रान्तीय मंत्रियों को सच्चरित्र देखकर फल निकालते हैं कि 'सभी प्रान्तीय मंत्री सच्चरित्र हैं'। ऐसे वाक्यों में निश्चयता नहीं है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि सभी मंत्री उसी प्रकार के हों। विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे वाक्यों का मूल्य नहीं है। Induction द्वारा ऐसे वाक्यों का अनुमान किया जाता है जिनमें निश्चयात्मकता हो, जैसे, 'सभी मनुष्य मरणशील है'। इसका एक भी अपवाद नहीं है। मनुष्य जाति और मरणशीलता में आवश्यक (necessary) सम्बन्ध है; जहां एक होगा वहां दूसरा भी सत्य होगा। संक्षेप में, विशेष वस्तुओं का निरीक्षण कर कोई नियम निकालने को Induction कहते हैं। इसलिये सामान्य वाक्य के रूप में Induction के निम्नलिखित लक्षण हैं---

(क) किसी वाक्य का निरूपण करना (to establish a proposition)--Induction द्वारा दो बोधों (Ideas) में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। किसी परिभाषा में केवल एक ही बोध का स्पष्टीकरण होता है। जैसे, एक त्रिभुज तीन भुजावली आकृति है। इसमें केवल त्रिभुज का स्पष्टीकरण किया गया है, पर आगमन द्वारा एक वाक्य का निरूपण होता है। वाक्य में दो विचारों का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। मनुष्य मरणशील है। इस वाक्य में मनुष्य और मरणशीलता में सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

---

* Induction is the operation of the mind by which we infer that what we know to be true in a particular case or cases will be true in all cases which resemble the former in certain assignable respects.-Mill.

(ख) सामान्य वाक्य बनाना (to establish a universal proposition)- Induction द्वारा बनाए गये वाक्य सामान्य होते हैं। सामान्य वाक्य व्यापक होते हैं। अपनी जाति के प्रत्येक व्यक्ति के लिये वे सत्य होते हैं और उनकी सत्यता वर्तमान तक ही सीमित नहीं रहती, अपितु, भूत, और भविष्य के लिये भी, जैसे, सभी मनुष्य मरणशील हैं। बहुत से ऐसे वाक्य भी होते हैं जिनका रूप सामान्य वाक्य का होता है पर वास्तव में वे ऐसे नहीं हैं, जैसे इस टोकरी के सभी आम मीठे हैं। यहां सम्पूर्ण आम जाति के विषय में कुछ नहीं कहा जाता; इसलिये यह सामान्य वाक्य नहीं कहा जा सकता। ऐसे वाक्य देखने में तो सामान्य प्रतीत होते हैं पर वे वास्तव में वैसे नहीं हैं क्योंकि उनका क्षेत्र सीमित है। ऊपर के वाक्य में सभी आम के विषय में तो कहा गया है पर इस टोकरी के ही सभी आमों को, इसलिये यह सामान्य वाक्य नहीं है।

(ग) संयोजक वाक्य बनाना (to establish real proposition)- सामान्य वाक्य दो प्रकार के होते हैं—एक वियोजक (verbal), दूसरे संयोजक (real)। वियोजक वाक्यों में किसी बोध का विस्तार किया जाता है। जैसे, 'मनुष्य सोचने वाला प्राणी है'। ऐसे वाक्य से ज्ञान की वृद्धि नहीं होती क्योंकि जिसे 'मनुष्य' का बोध है वह जानता है कि उसका धर्म है, 'सोचना'। संयोजक वाक्यों में कुछ नई बात कही जाती है, जैसे, 'नक्षत्रों में गति है'। 'नक्षत्र' के बोध में 'गति' शामिल नहीं है। इससे ज्ञान बढ़ता है। आगमन (Induction) द्वारा संयोजक वाक्य ही निरूपित किए जाते हैं।

(घ) अनुभव के आधार पर सामान्य वाक्य बनाए जाते हैं (universal proposition on the basis of experience)—निगमन में आधार-वाक्य मान लिए जाते हैं पर आगमन का आधार है अनुभव। थोड़ी सी चीजों का निरीक्षण करके सामान्य रूप से उसके विषय में कुछ कहा जाता है। इसीलिये इसमें वास्तविकता होती है। किसी जाति के सभी व्यक्तियों का निरीक्षण संभव नहीं है। यह सम्भव नहीं है कि कोई मनुष्य किसी वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति का निरीक्षण कर सके। कोई 'सभी कौओं' या 'सभी मनुष्यों' का निरीक्षण नहीं कर सकता है। इसलिए निरीक्षण वा अनुभव 'थोड़े' की की जाती है।

(ङ) आगमन का सबसे मुख्य लक्षण यह है कि इसमें हम ज्ञात से अज्ञात

की ओर जाते (We pass from the known to the unknown) हैं। निरीक्षण विशेष घटनाओं की होती है, अनुमान 'सब' के विषय में किया जाता है। अनुभव होता है विशेष का पर निष्कर्ष होता है सामान्य का। कुछ से सबके विषय में अनुमान करने में भूल की सम्भावना रहती है। इसलिये मिल साहब ने इसे Inductive Leap, hazard or risk कहा है। यदि किसी जाति का क्षेत्र सीमित हो और उनके सभी व्यक्तियों को देखकर कोई फल निकालें तो उसे आगमन (Induction) नहीं कहेगें इसलिए कि उस निष्कर्ष से कोई नई बात नहीं मालूम होती। सभी वस्तुओं को तो देख ही लिया गया है तो निष्कर्ष नया ज्ञान कैसे दे सकता है। इसलिये प्रत्येक Induction में छलांग मारी जाती हैं। जिस प्रकार छलांग मारने में बीच की भूमि को छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार Induction में भी 'कुछ' के अनुभव के आधार पर 'सब' का अनुमान किया जाता है।

(च) ज्ञात से अज्ञात का अनुमान कार्य-कारण नियम तथा प्रकृति-समरूपता नियम के आधार पर होता है (based on the Law of Causation and the Law of the Uniformity of Nature.)

Induction में 'कुछ' को देखकर 'सब' के विषय में अनुमान किया जाता है। 'कुछ' से 'सब' के छलांग में भूल होने की भय रहती है। ऐसा सम्भव है कि जो कुछ के विषय में सत्य है वह 'सब' के विषय में सत्य न हो। इसलिए अनुमान में निश्चयात्मकता लाने के लिए हमें कुछ नियमों का सहारा लेना पड़ता है। उन्हीं के आधार पर कुछ से सब का अनुमान सम्भव है। वे नियम हैं प्रकृति-समरुपता और कार्य-कारण के।

प्रकृति-समरूपता के अनुसार समान परिस्थितियों में वस्तुओं का समान व्यापार या धर्म होता है। यदि आग का गुण आज ताप है तो कल्ह और वर्षों के बाद भी उसका यही धर्म होगा। यदि आज फल पक कर जमीन पर गीरते हैं तो भविष्य में भी वे जमीन पर ही गीरेगें आकाश की ओर उडेगें नहीं। इसी नियम के आधार पर हम कुछ उदाहरणों को देख कर सबके विषय में अनुमान करते हैं। यदि आज मनुष्य में मरणशीलता पाई जाती है तो मनुष्य भविष्य में भी मरणशील रहेगा, ऐसा इसी नियम के आधार पर कहा गया है।

पर केवल इसी नियम का सहारा लेने से भूल की सम्भावना रह ही जाती है। यदि दो तीन बार परीक्षा के लिये जाते समय तेल देख लेने पर हम फेल कर जांय और उसीसे यह अनुमान कर लें कि 'किसी काम के लिए जानेके समय तेल देख लेने से वह काम कभी भी नहीं हो सकता' तो यह भूल होगी। इसे ठीक करने के लिए हमें कार्य-कारण-नियम का आश्रय लेना पड़ता है।

कार्य-कारण नियम का अर्थ है कि प्रत्येक घटना का कोई कारण होता है। कारण और कार्य का अटूट सम्बन्ध होता है। यदि क और ख कारण और कार्य हैं तो उनका सम्बन्ध अटूट है। जहाँ क होगा वहाँ ख अवश्य होगा। इसलिए Induction में इस नियम की सहायता लेनी पड़ती है—दो ऐसे बोधों का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है जिनमें कार्य-कारण सम्बन्ध हो। मनुष्य और मरणशीलता में कार्य-कारण सम्बन्ध है। इसलिए सभी मनुष्य मरणशील हैं, यह निश्चयात्मक अनुमान है। किसी कार्य के लिए जाने में और तेल देखने में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि तेल हम देखें पर तौभि हमारा काम हो जाता है। दोनों का सम्बन्ध अटूट नहीं है; इसलिए 'किसी काम के लिए जाने के समय तेल देख लेने से वह काम कभी भी नहीं होगा' यह अनुमान गलत है।

सारांश यह हुआ कि कार्य-कारण तथा प्रकृति-समरूपता के आधार पर ही निश्चयात्मक रूप से सामान्य अनुमान किया जा सकता है।

संक्षेप में, Induction में:—

(१) वास्तविक सामान्य वाक्य स्थापित किया जाता है (establish universal real proposition.)

(२) अनुमान विशेष वस्तुओं के निरीक्षण पर आधारित रहता है (It is based on particular experience.)

(३) ज्ञात से अज्ञात का अनुमान किया जाता है (pass from known to unknown)

(४) अनुमान का आधार है प्रकृति-समरूपता नियम और कार्य-कारण नियम (Law of Causation and the Law of the Uniformity of Nature are the basis)

§४. *आगमन* (**Induction**) *का उद्देश्य* (**Aim**)

संसार में विभिन्न पदार्थ हैं। मनुष्य का लक्ष्य है उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करना। इसीलिए भिन्न विज्ञान बने हैं। विज्ञान संसार के विशेष वर्गों का अध्ययन करता है। विश्व के विभिन्न पदार्थ पहले तो हमें असम्बन्धित, छिटपुट तथा आकस्मिक प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। विश्व में व्यवस्था है और सभी पदार्थ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। व्यवस्था का अर्थ है नियमानुकूल होना। सभी पदार्थों के व्यापार का अपना अपना नियम है। इन्हीं को हम प्राकृतिक नियम कहते हैं। ग्रह के चाल के अपने नियम हैं; सितारों के अपने नियम हैं; पशु-जगत, वनस्पती-जगत, मनुष्य-जगत, मन, इत्यादि, सभी के अपने नियम हैं। यदि पदार्थों के व्यापार का कोई नियम नहीं होता वा एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता तो वैज्ञानिक ज्ञान का कोई अर्थ ही नहीं होता—एक घटना का वा एक पदार्थ का दूसरे से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। यदि फल पककर आज जमीन पर गीरता है तो निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता था कि कल भी ऐसा ही होगा। अतः संसार में अव्यवस्था अमान्य है। एक पदार्थ वा एक वर्ग दूसरे पदार्थ वा दूसरे वर्ग से सम्बन्धित हैं और सभी के अपने अपने नियम हैं। विज्ञान का लक्ष्य है इन्हीं नियमों को सिद्ध करना।

विज्ञान नियमों के निकालने में तथा उन्हें सिद्ध करने में किसी पद्धति का अनुशरण करते हैं। आगमन (Induction) विज्ञानों को इसमें सहायता प्रदान करता है। नियम सिद्ध करने की यही दो पद्धतियां है, निगमनात्मक और आगमनात्मक। अधिकतर विज्ञान दोनो ही का व्यवहार करते हैं।* अतः आगमन का लक्ष्य है नियमों को सिद्ध करना अर्थात् स्थापित करना।

---

*वे विज्ञान जो आगमन का प्रयोग करते हैं—Physics, Chemistry, Biology, Zoology, Psychology, Economics, Politics, History, Sociology, Minerology, इत्यादि।

वे विज्ञान जो निगमन का प्रयोग करते हैं—Mathematics, Pure Physics, Mechanics, इत्यादि। पर इस सूची का अर्थ यह नहीं है कि ऊपर वाले विज्ञान में निगमन-विधि प्रयोग होती ही नहीं है या नीचे वाले विज्ञान आगमन का प्रयोग करते ही नहीं हैं। निगमन और आगमन का प्रयोग सभी विज्ञानों में होता है पर ऊपर सूची वाले विज्ञानों में आगमन प्रमुख रहता है, नीचे वाले में निगमन। इसीलिए पहले वाले को आगमनात्मक और बाद वाले को निगमनात्मक कहा जाता है।

§५. अभ्यास :—

1. Why there is a transition from Deduction to Induction ? Explain fully.

2. State the problems of Induction.

3. Inductive leap or hazard is the essence of Induction. Explain fully.

4. State briefly the aims of Induction and show how it seeks to solve them.

5. What are the characteristics of Induction ? Explain fully.

दूसरा अध्याय

आगमन के भेद (Kinds of Induction)

§१. आगमन के भेद

§२. अवास्तविक आगमन

§३. वास्तविक आगमन

§४. अभ्यास

§१. *आगमन के भेद*

अनुमान की भिन्न क्रियाओं को आगमन कहा जाता है, पर मिल ने उनका दो मुख्य भेद बतलाया है—

(१) वास्तविक (Proper)

(२) अवास्तविक (Improper)

पहला तो Induction का वास्तविक भेद है पर दूसरा वास्तव में Induction नहीं है। उनका रूप Induction से मिलता जुलता है पर उसका मुख्य गुण उनमें नहीं है। इन्हें processes simulating Induction कहा जाता है। इसलिए इन्हें Induction का अवास्तविक रूप बतालाया गया है।

वास्तविक आगमन तीन प्रकार के हैं:—

(१) वैज्ञानिक आगमन (Scientific Induction)

(२) अवैज्ञानिक या व्यावहारिक आगमन (Unscientific Induction)

(३) सादृश्यानुमान (Analogy)

(४) सम्भावना के आधार पर अनुमान (Argument from probability)

अवास्तविक रूप भी तीन हैं—

(१) पूर्ण आगमन (Perfect Induction)

(२) समयौक्तिक अनुमान (Induction by Parity of Reasoning)

(३) अंश-संकलन (Colligation of facts)

क्रम के अनुसार इन सबों की व्याख्या होगी।

§२. *अवास्तविक आगमन* (Improper Induction)

(क) पूर्ण आगमन (Perfect Induction)

किसी समूह के प्रत्येक उदाहरण को देखकर उनके विषय में सामान्य रूप से कुछ कहा जाय तो उसे पूर्ण आगमन कहते हैं। एक उदाहरण लीजिये। किसी क्लास में १०० विद्यार्थी हैं। प्रत्येक विद्यार्थी के पास पुस्तक देखकर यदि कहा जाय कि 'सब के पास पुस्तक है' तो इस अनुमान को ही पूर्ण आगमन कहा जायगा। इस प्रकार के अनुमान में सब व्यक्तियों की परीक्षा करके सामान्य भाव से कुछ कहा जाता है। इसमें व्यक्ति की गणना करके निष्कर्ष निकालते हैं, इसलिये इसे गणनाजन्य अनुमान (Enumerative Induction) भी कहते हैं। गणना थोड़े से व्यक्तियों की नहीं की जाती अपितु, उस प्रकार के प्रत्येक व्यक्ति की, इसलिये इसे पूर्ण गणनाजन्य अनुमान (Induction per Complete Enumeration) भी कहा जाता है। अनुमान की इस क्रिया को आगमन इसलिये कहा जाता है कि इसमें व्यक्तियों के निरीक्षण (observation) के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है। इसके निष्कर्षों में निश्चयात्मकता होती है क्योंकि सभी व्यक्तियों की परीक्षा की जाती है। यदि किसी टोकरी में पांच आम हो और पांचों को लाल देखकर हमने कहा कि 'सब लाल है', तो इसमें सन्देह की तथा असत्यता की सम्भावना रह ही नहीं जाती। इसलिये इसे मध्यकालीन तार्किकों ने पूर्ण (perfect) आगमन कहा है।

इस प्रकार की आगमन सीमित (limited) क्षेत्र में ही सम्भव है। यदि किसी वर्ग में अनन्त व्यक्ति हों, तो प्रत्येक का निरीक्षण करना असम्भव है। मनुष्य जाति के विषय में ही यदि सामान्य रूप से कुछ कहा जाय तो क्या प्रत्येक मनुष्य को देखा जा सकता है ?

क्या पूर्ण-आगमन आगमन का वास्तविक रूप है? मिल और बेन ने इसे आगमन का वास्तविक रूप नहीं माना है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) वास्तविक आगमन का सबसे मुख्य लक्षण है ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करना, पर पूर्ण आगमन में इसकी त्रुटि है। इसमें किसी विषय के प्रत्येक व्यक्ति को देखकर कुछ अनुमान किया जाता है। इसलिये इसमें Inductive leap नहीं है।

(२) इसमें जिस सामान्य वाक्य का निरूपण किया जाता है वह वास्तव में सामान्य नहीं होता। अपनी दोनों कलमों (पार्कर और वाटरमैन) को लाल देखकर यदि हम कहें कि "सब कलम लाल है" तो यहाँ 'सब' सीमित अर्थ में सामान्य का बोध कराता है। यहां सब कलम लाल हैं का अर्थ है कि पार्कर लाल है और दूसरी कलम वाटरमैन लाल है। यह दोनों singular propositions का संकलित तथा संक्षिप्त (abridged) रूप है।

(३) इसके सामान्य वाक्य में उद्देश्य (subject) और विधेय (predicate) में सम्बन्ध स्थापित करने का आधार कार्य-कारण-सम्बन्ध नहीं है। ऊपर के उदाहरण में यह ज्ञान नहीं रहता कि कलम क्यों लाल है या कलम और उसके रंग में क्या सम्बन्ध है?

(४) इसमें व्यक्तियों (particulars) की गणना की जाती है। हम केवल देख लेते हैं कि वे कैसे हैं। उनका क्या धर्म (attributes) है, इसकी परीक्षा हम नही करते। इसलिये यह कहना कि वे गुण जो उनमें सामान्य हैं भविष्य में भी रहेगें या नहीं, कठिन है।

(५) इसमें ज्ञान की वृद्धि नहीं होती। जब देखकर यह ज्ञान प्राप्त कर ही लिया कि एक कलम लाल है और दूसरी भी लाल है तो सब कलम लाल है कहने से किसी तीसरी कलम का ज्ञान तो नहीं हुआ क्योंकि 'सब' तो यहां 'दो' ही के लिए व्यवहार हुआ है।

(६) वास्तव में यह निगमन-विधि है। इसे निम्नलिखित तरीके से निगमन कह सकते हैं:—पार्कर, वाटरमैन लाल है, यहां पर यही दो कलम हैं (पार्कर और वाटरमैन), इसलिए यहां पर की दोनों कलम अर्थात् सब कलम लाल है।

मूल्यांकन (Value)

ऊपरकी मीमांसा से तो प्रतीत होता है कि पूर्ण आगमन का ज्ञान के क्षेत्र में कोई मूल्य ही नहीं है, पर वास्तव में एसी बात नहीं है।

मध्यकालीन तार्किकों ने तो बतालाया है कि इससे अधिक निश्चयात्मक फल किसी दूसरी विधि द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक आगमन

में थोड़े से व्यक्तियों को देखकर सामान्य अनुमान किया जाता है इसलिये उसमें निश्चयात्मकता कहां ?

इस विचार में भी भूल है। यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को देखकर निश्चित रूप से कुछ अनुमान किया जा सकता है पर भविष्य में भी वह सत्य होगा यह नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक आगमन में केवल थोड़े से व्यक्तियों की परीक्षा होती है, पर उसमें उनका वास्तविक धर्म ढूंढ़ा जाता है और कार्य-कारण सम्बन्ध पर वे निर्भर रहते हैं। इसलिये भविष्य में भी वे सत्य होते हैं। 'मनुष्य मरणशील है', जैसा कुछ काल पहले सत्य था आज भी और भविष्य में भी वैसा ही सत्य रहेगा।

पूर्ण आगमन का लाभ दूसरे रूप में है।

(१) पूर्ण आगमन व्यावहारिक जीवन के लिये लाभदायक है। वस्तुओं के धर्म (attributes) की परीक्षा करना साधारण मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है।

(२) व्यक्तिवाचक वाक्यों (singular propositions) का संकलित रूप रहने से यह स्मृति (memory) के लिये लाभदायक है। अलग-अलग किसी चीज को याद रखने से सरल होता है उसका संकलित रूप में याद रखना।

(३) सभी वस्तुओं में सामान्य रूप से एक ही गुण पाये जाने पर उसके कारण जानने की उत्सुकता हो सकती है। यदि कारण जाना जाय तो वही अनुमान वैज्ञानिक हो जाता है।

(ख) समयौक्तिक अनुमान

Induction by Parity of Reasoning

गणित में बहुत से प्रमाणों का रूप आगमन सा है। वस्तुतः वे उससे भिन्न हैं। रेखाचित्र के द्वारा किसी साध्य (theorem) का प्रमाण भी आगमन सा ही लगता है। एक उदाहरण लें, रेखागणित के १६ वें साध्य में एक त्रिभुज का रेखाचित्र बनाकर प्रमाणित किया जाता है कि उस त्रिभुज के तीनों कोण का योग दो समकोण के बराबर होता है। इस आधार पर कि वही युक्ति (reasoning) उस प्रकार के सभी चित्रों अर्थात् त्रिभुजों में लागू होगी, एक सामान्य नियम बना लेते हैं कि किसी त्रिभुज के तीनों कोण का योग दो

समकोण के बराबर होता है। वास्तव में साध्य में कोई नियम अर्थात् सामान्य वाक्य नहीं प्रमाणित किया जाता अपितु किसी विशेष चित्र में कुछ साबित किया जाता है, पर इसके आधार पर कि वही युक्ति उस किस्म के सभी चित्रों में लागू होगी, एक सामान्य नियम बना लिया जाता है। इसी प्रकार के अनुमान को समयौक्तिक अनुमान कहते हैं।

थोड़े से उदाहरणों (cases) को देखकर इस आधार पर कि वही युक्ति जो उन थोड़े से उदाहरणों को प्रमाणित करती है उस प्रकार के सभी उदाहरणों को प्रमाणित कर देगी, कोई नियम बनाने को समयौक्तिक अनुमान कहते हैं। इसे समयौक्तिक इसलिये कहा जाता है कि अनुमान का आधार युक्ति की समता (Parity of Reasoning) है। कुछ उदाहरणों से एक सामान्य नियम 'समता' के आधार पर अनुमान किया जाता है। रेखागणित के सभी प्रमाण इस प्रकार हैं।*

आलोचना

क्या समयौक्तिक अनुमान आगमन का वास्तविक भेद है?

रूप में तो समयौक्तिक अनुमान आगमन सा प्रतीत होता है क्योंकि कुछ उदाहरणों को देखकर इसमें सामान्य नियम का निरूपण किया जाता है पर वस्तुतः दोनों में बहुत फर्क है।

(१) आगमन का लक्षण है विशेष वस्तुओं के निरीक्षण के आधार पर सामान्य नियमों का निरूपण करना। समयौक्तिक अनुमान में सामान्य नियम उदाहरणों के निरीक्षण पर आधारित नहीं है। इसमें दो, तीन या चार उदाहरणों को देखकर कोई नियम नहीं निकाला जाता अपितु किसी एक चित्र (diagram) का व्यवहार किया जाता है और वह चित्र समूचे वर्ग का संकेत करता है।

बात यह है कि रेखागणित के चित्र गुणात्मक (abstract) होते हैं, वास्तविक (concrete) नहीं। यदि हम किसी त्रिभुज को देखना चाहें तो नहीं देख सकते, त्रिभुजी कागज या कपड़ा या पत्थर को देख सकते हैं। इसलिये

* Algebra, इत्यादि गणितशास्त्र में दिए गए प्रमाण भी इसी प्रकार के होते हैं। इसलिए इसे गणितात्मक आगमन (Mathematical Induction) कहा जाता है।

कोई एक चित्र अपने किस्म के सम्पूर्ण वर्ग (class) का प्रतिनिधित्व (representation) करता है। जिसे विशेष (particular) चित्र समझा जाता है वह वास्तव में सम्पूर्ण वर्ग का चिन्ह रहता है। ऐसी बात वास्तविक (concrete) विषयों में सत्य नहीं है। एक मनुष्य सम्पूर्ण मानव-जाति का द्योतक नहीं है। जो एक मनुष्य के लिये सत्य होगा वह सम्पूर्ण जाति के लिये सत्य नहीं होता। रेखाचित्र (diagrams) में एक का गुण उस वर्ग के लिये सत्य होता है।

इसलिये वास्तव में समयौक्तिक अनुमान में विशेष वस्तुओं का निरीक्षण नहीं किया जाता अपितु सम्पूर्ण वर्ग की जांच होती है क्योंकि एक रेखाचित्र सम्पूर्ण वर्ग का चिन्ह है।

(२) वास्तव में समयौक्तिक अनुमान निगमनात्मक (Deduction) है। रेखागणित में कुछ स्वयंसिद्ध विचारों से निगमन निकाला जाता है फिर उससे दूसरा निगमन और सभी साध्य उन्ही स्वयम्सिद्ध विचारों के फल हैं। त्रिभुज की परिभाषा से कि 'यह तीन भुजावाली आकृति है' निगमन निकलता है कि इसके तीणों कोणों का योग दो समकोण होगा।

समयौक्तिक अनुमान और पूर्ण आगमन

समता—दोनों आगमन के अवास्तविक रूप हैं।

फर्क—समयौक्तिक अनुमान में नियम वास्तव में सामान्य (universal) होना है। पूर्ण आगमन में जिस सामान्य वाक्य का निरूपण किया जाता है वह वास्तव में सामान्य नहीं होता।

(ग) अंश-संकलन (Colligation of facts)

कुछ तार्किकों ने सामान्य बोधों द्वारा व्याख्या की क्रिया को आगमन मान लिया है। मान लीजिये कि किसी पदार्थ के बहुत से अंग (parts) हैं। भिन्न अंगों को अलग-अलग देखकर उन वस्तु का बोध (concept) हो तो उस क्रिया को अंश-संकलन कहते हैं।

संकलन (colligation) का अर्थ होता है संग्रह करना अथवा बांधना। इसलिये किसी वस्तु के अंगों को देखकर उन्हें एक बोध में संकलन कर लेने को अंश-संकलन कहा गया है। मिल के अनुसार विविध विवरणों (details) को एक वाक्य में संकलन करने को अंश-संकलन कहा जाता है।

एक उदाहरण लीजिये—एक नाविक समुद्र में थल (land) देखता है। वह उस जमीन के किनारे-किनारे नाव पर जाता है। अन्त में वह उसी स्थान पर पहुँच जाता है जहां से उसने घूमना आरम्भ किया था। इससे उसको द्वीप (island) का बोध होता है।

मान लीजिये एक बड़ा सा टेबुल है। उस टेबुल का एक अंग पहले दिखलाया जाय, फिर दूसरा अंग। इसके बाद हम कहें कि 'यह एक टेबुल है' तो यह अंश-संकलन हुआ। इस क्रिया को बेवेल ने आगमन कहा है क्योंकि इसके द्वारा कुछ अंगों को देखकर एक नया बोध होता है।

आलोचना

क्या इसे आगमन कह सकते हैं ?

अंश-संकलन भी आगमन का अवास्तविक रूप है। इसके कारण निम्नलिखित हैं—

(क) किसी भी अनुमान (inference)में किसी वाक्य का निरूपण किया जाता है। वाक्य में दो बोधों का सम्बन्ध रहता है, जैसे, 'राम एक बालक है।' इसमें 'राम' और 'बालक' दो बोध हैं। अंश-संकलन द्वारा हम केवल एक बोध बनाते हैं, जैसे, 'द्वीप' का या 'टेबुल' का ।

(ख) अंश-संकलन द्वारा जिस बोध का ज्ञान होता है वह नया नहीं रहता। यदि हमें द्वीप का बोध पहले से नहीं रहे तो किसी जमीन को समुद्र से घिरा देखकर भी उसे द्वीपनहीं समझ सकते।

(ग) यह व्याख्या का एक रूप है। इसमें केवल यह बतलाया जाता है कि 'यह द्वीप है', 'यह टेबुल है', इत्यादि। यह क्यों द्वीप है या यह क्यों टेबुल है, इसकी समीक्षा नहीं की जाती। आगमन में कारण-सम्बन्ध (Causal relation) स्थापित किया जाता है पर अंश- संकलन में ऐसी बात नहीं है।

(घ) वास्तव में अंश-संकलन निगमनात्मक है। द्वीप का पहले से बोध रहता ही है। एक नई जमीन को हम देखते हैं। उसके गुण द्वीप के गुण से मिलते हैं, इसलिये उसे भी द्वीप कहते हैं। इस अनुमान का रूप यह होगा :—

समुद्र से घिरे थल को द्वीप कहते हैं ; यह जमीन समुद्र से घिरी है इसलिये यह जमीन द्वीप है।

ऊपर की सामग्री से प्रमाणित होता है कि अंश-संकलन-विधि आगमनात्मक नहीं है, पर प्रत्येक आगमन में अंश-संकलन (Colligation of fact) का उपयोग होता है। आगमन में कुछ उदाहरणों को देखकर सामान्य नियम निर्धारित किया जाता है। हमने विशेष उदाहरणों (particulars) को देखा है, पर इससे एक सामान्य बोध बनाते हैं; यह अंश-संकलन है। आगमन में उस सामान्य बोध का सम्बन्ध दूसरे बोध से करते हैं। उदाहरण—यदि हमने नियम बनाया है कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं', तो पहले देखा है राम को, श्याम को, जदू को, हरी को, पर इन विशेष मनुष्यों को 'मनुष्य' के सामान्य बोध द्वारा प्रकट करते हैं और 'मनुष्य' के बोध से 'मरणशीलता' के बोध का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जहां तक विशेष मनुष्यों को सामान्य-बोध द्वारा व्यक्त करने का प्रश्न है वह क्रिया अंश-संकलन है पर उसके बाद दो बोधों को सम्बन्धित करना आगमन का काम है। इसलिये प्रत्येक आगमन अंश-संकलन है पर प्रत्येक अंश-संकलन-क्रिया आगमन नहीं है (Every Induction is Colligation but every Colligation is not Indnction.)।

§३. *आगमन के वास्तविक रूप*(**Proper Induction**)

(क) वैज्ञानिक आगमन (Scientific Induction) आगमन के वास्तविक रूप को वैज्ञानिक आगमन कहते हैं। इसका विस्तार पहले ही किया गया है।

(ख) अवैज्ञानिक वा व्यावहारिक आगमन (Popular Induction or Induction per Simple Enumeration.)

कुछ उदाहरणों को देखकर, केवल प्रकृति-समरुपता नियम तथा विरोधी उदाहरणों के अभाव में, कोई नियम अर्थात् यथार्थ सामान्य वाक्य निरूपण करने को व्यावहारिक आगमन कहते हैं। हम अपने जीवन में नित्य-दिन इस प्रकार के अनुमान से काम लेते हैं। इसलिये इसे व्यावहारिक आगमन कहा गया है। कुछ कौओं को काला देखकर कहा जाता है कि सब कौए काले हैं; कुछ आम को चखकर कुंजड़े से कह देते हैं कि तुम्हारे सब आम मीठे हैं। ऐसे अनुमान में कुछ उदाहरणों का निरीक्षण किया जाता है और उनमें कोई गुण पाकर उस जाति की और वस्तुओं में भी उसी गुण का अनुमान करते हैं। ऐसा इस विश्वास पर होता है कि कोई विरोधी उदाहरण नहीं मिलता। यदि कौए उजले

रंग के भी पाए जायं तो इस प्रकार का सामान्य अनुमान नहीं किया जा सकता। चूंकि एक ही प्रकार का अनुभव होता है इसलिये सम्भावना होती है कि भविष्य में उस पदार्थ में या और भी उस प्रकार की वस्तु में वही गुण हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें प्रकृति-समरूपता आधार रहता है पर कार्य-कारण सम्बन्ध का अभाव रहता है। कौओं में और कालापन में क्या सम्बन्ध है, क्यों कौए काले होते हैं, इसका कारण ज्ञात नहीं है। इसलिये ऐसे निष्कर्ष निश्चित नहीं होते। उनमें अपवाद भी मिल सकता है। इससे इसे अवैज्ञानिक आगमन (Unscientific Induction) भी कहा जाता है। संक्षेप में इसके लक्षण हैं:—

(क) सामान्य वाक्य का निरूपण करना अर्थात् सामान्य रूप से कुछ कहना, जैसे, सभी कौए काले हैं। यह वास्तविक आगमन का लक्षण है।

(ख) ज्ञात से अज्ञात अनुमान करना—केवल कुछ उदाहरणों को देखा जाता है पर अनुमान सामान्य होता है। यह भी वास्तविक आगमन का लक्षण है।

(ग) इस प्रकार के अनुमान में वस्तुओं का विश्लेषण तथा उनकी परीक्षा नहीं की जाती। उनके तथा उनके गुणों के सम्बन्ध का पता नहीं लगाया जाता। उन उदाहरणों की केवल गणना होती है। इसलिये इसे अपूर्ण गणनाजन्य आगमन (Induction per Simple Enumeration or Incomplete Induction) भी कहा जाता है।

(घ) प्रकृति-समरूपता-नियम के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है, पर इसमें कार्य-कारण सम्बन्ध का अभाव रहता है। इसलिये निष्कर्ष के सत्य होने की केवल सम्भावना मात्र रहती है। इन्हीं कारणों से वास्तविक आगमन (Proper Induction) होते हुए भी इसे अवैज्ञानिक कहते हैं।

मूल्यांकन (Value)

गणनात्मक आगमन का बेकन ने कोई विशेष मूल्य नहीं बताया है। उसका मत है कि बच्चे इस प्रकार का अनुमान करते हैं। केवल दो-चार उदाहरणों को देखते ही कोई नियम स्थापित नहीं हो सकता। ऐसे अनुमान में निश्चयात्मकता आ नहीं सकती। जब तक किसी गुण के किसी वस्तु में होने के कारण का ज्ञान नहीं रहता निश्चित रूप से कोई अनुमान नहीं किया जा सकता। इसलिये ऐसे अनुमान को बहुत से तार्किकों ने बेकार समझा है।

यह बात बहुत अंशों में ठीक है पर व्यावहारिक आगमन बिलकुल बेकार नहीं समझा जा सकता। इसमें सम्भावना की मात्रा होती है। किसी निष्कर्ष में सत्य होने की बहुत अधिक सम्भावना रह सकती है और किसी में कम। एक कालेज शिक्षक को अमीर देखकर सामान्य रूप से यह कहने में कि 'सब कालेज के शिक्षक अमीर हैं' कोई तथ्य नहीं है; पर यदि १५ या २० मद्रासी को तेज देखकर यह कहा जाय कि सब मद्रासी तेज होते हैं तो उस निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना अधिक रहती है। इसलिये ऐसे अनुमान का मूल्य उदाहरणों की संख्या (number of instances) पर निर्भर करती है। यदि भावात्मक उदाहरणों (positive instances) की संख्या अधिक हुई तो निष्कष के सत्य होने की सम्भावना अधिक रहती है, जैसे, कम से कम १०० कौओं को काला देखा है इसलिये और कौओं के काले होने की सम्भावना अधिक है। भावात्मक उदाहरणों की जितनी कम संख्या होगी उतनी कम सम्भावना निष्कर्ष के सत्य होने की होती है। यदि एक या दो मनुष्य को काला देखा जाय तो यह कहना कि 'सब मनुष्य काले हैं' ठीक प्रतीत नहीं होता।

दूसरे, विरोधात्मक उदाहरणों का अभाव (absence of negative instances) भी ऐसे अनुमान को पुष्ट करता है। यदि हमारे अनुभव में कोई भी विरोधात्मक उदाहरण न मिले तो वैसी अवस्था में उस अनुमान के सत्य होने की सम्भावना अधिक रहती है।

पर अधिक से अधिक अनुभव होने पर भी ऐसे अनुमान में निश्चयात्मकता नहीं आ सकती क्योंकि कार्य-कारण सम्बन्ध के ज्ञान का अभाव रहता है। यदि यह पता चल जाय कि कौओं में कोई विशेषता है जिसके कारण उनका कालापन है तो निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि सब कौए काले होगें। ऐसी अवस्था में अनुमान वैज्ञानिक हो जाता है अर्थात् वही अनुमान कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर वैज्ञानिक हो जाता है, व्यावहारिक नहीं रह जाता। इसलिये व्यावहारिक आगमन वैज्ञानिक आगमन का संकेत (suggest) करती है। वे सांकेतिक (suggestve) अधिक हैं पर प्रमाण-शक्ति उनमें कम है इसलिये उन्हें वैज्ञानिक आगमन की पहली सीढ़ी कहा गया है।

गणनात्मक आगमन (Enumerative Induction)—

व्यावहारिक तथा पूर्ण आगमन को गणनात्मक आगमन कहा गया है। इनमें वस्तुओं का विश्लेषण नहीं किया जाता अपितु केवल उनकी गणना की जाती है। गणना से किसी गुण (Quality) का किसी वस्तु से सम्बन्ध का पता नहीं चल सकता। किसी गांव के पचास आदमी अनपढ़ रह सकते है पर इस गणना से यह अनुमान करना कि बाकी लोग भी उस गांव के अपढ़ है, ठीक नहीं है क्योंकि गणना से यह ज्ञान नहीं होता कि क्यों वे पचास अपढ़ हैं ? यदि मालूम हो जाय कि वह गांव चारों ओर पानी से घिरा है, शहर से सैकड़ों मील दूर है, गांव में कोई स्कूल नहीं है, लोग गरीब है, वे बाहर जा नहीं सकते तब वैसा अनुमान कर सकते हैं अर्थात् कारण का ज्ञान होने पर ही अनुमान संतोषजनक होता है।

गणनात्मक अनुमान दो प्रकार के होते हैं। एक में सम्पूर्ण उदाहरणों (particulars) की गणना करके कोई अनुमान किया जाता है और दूसरे में कुछ उदाहरणों को देखकर अज्ञात विषय में अनुमान करते हैं। एक को पूर्ण गणनाजन्य अनुमान और दूसरे को अपूर्ण गणनाजन्य अनुमान (Induction per Complete Enumeration and Induction per Simple Enumeration) कहते हैं।

(ग)सादृश्यानुमान (Analogy) इसकी व्याख्या पीछे होगी।

(घ) सम्भावना के आधार पर अनुमान (Argument from Probability)—सम्भावना सिद्धान्त भी आगमन का ही रूप माना जाता है। जहां किसी घटना की उत्पत्ति के लिए अनेक उपकरण होते हैं वहां प्रत्येक की गणना करना तथा प्रत्येक का ज्ञान सम्भव नहीं है। अतः उस घटना के होने और नहीं होने की निश्चयात्मकता नहीं हो सकती; पर उस घटना के घटने की सम्भावना का गुणन किया जा सकता है। सम्भावना की मात्रा होती है। यह आकस्मिकता के गुणन पर आश्रित हैं। सम्भावना के गुणन से जिस निष्कर्ष पर हम पहुँचते हैं वह निश्चयात्मक नहीं होता है। इसके अतिरिक्त वे निष्कर्ष केवल औसत के लिए सत्य होते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम किसी देश के कुछ लोगों की परीक्षा करके वहां के लोगों की औसत उम्र निकालते हैं, तब

इसका यह अर्थ नहीं है कि उसी उम्र में वहां के सब लोग मर जाएगें अपितु यदि सबों की परीक्षा की जाय तो करीब-करीब उसी उम्र में लोगों की मृत्यु होगी। यह अनुमान की विधि आगमनात्मक है क्योंकि इसमें निरीक्षण के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है और अपने क्षेत्र में सामान्य भीहोता है।

आगमन (Induction) के अन्य भेद :—

Induction शब्द का भिन्न अर्थ में प्रयोग किया गया है। यह उसके इतिहास से स्पष्ट हो जायगा। यहां पर भिन्न तार्किकों के मत का उल्लेख किया जायगा। अनुमान की उन विधियों को भी कुछ तार्किकों ने आगमन (Induction) कहा है जो वास्तव में Induction है नहीं पर वैसे दीखते हैं। कुछ लोगों ने तो वैसे ही अनुमान को वास्तविक Induction कहा है और वैज्ञानिक आगमन को अवास्तविक है। भिन्न काल में इसका अर्थ भिन्न रहा है।

मध्यकालीन तार्किकों ने आगमन का दो भेद बतलाया था, Perfect और Imperfect Induction। प्रत्येक पदार्थ का निरीक्षण कर सामान्य सिद्धान्त वा वाक्य निरूपण करने को उन्होंने Induction कहा है। उनके अनुसार प्रत्येक अर्थात् 'सब' के निरीक्षण के उपरान्त ही हम 'सब' के विषय में निश्चयात्मक अनुमान कर सकते हैं। यह वर्ग के पूर्ण व्यक्तियों के गणना के उपरांत ही सम्भव है। अतः पूर्ण गणनाजन्य अनुमान (Induction per Complete Enumeration) को ही उन्होंने Perfect Induction कहा है।

उन विधियों को जिसमें 'थोड़े' से 'सब' का अनुमान किया जाता है उन्होंने Induction का Imperfect form माना है। ऐसे अनुमान में, उनके अनुसार, निश्चयात्मकता सम्भव नहीं है। अतः वे सभी विधियां जिसमें कुछ उदाहरणों की परीक्षा के बाद सब का अनुमान किया जाता है Imperfect Induction कहलाए। इस मत के अनुसार Scientific Induction, Induction per Simple Enumeration, Analogy और Argument from Probability सभी Imperfect Induction हुए। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि यही विधियां वास्तविक आगमन (Induction) हैं और Perfect Induction अवास्तविक है। इसकी आलोचना ऊपर की गई है।

कुछ आधुनिक तार्किकों ने Scientific Induction, Unscientific Induction तथा Analogy, जो सभी, मध्यकालिन तार्किकों के अनुसार, Imperfect Induction हैं, भेद बतलाने के लिए वैज्ञानिक आगमन (Scientific Induction) को Imperfect Methodical Induction और अवैज्ञानिक आगमन (Unscientific Induction) और सादृश्यानुमान (Analogy) को Imperfect Immethodical Induction कहा है। तीनों ही विधियां Imperfect हैं क्योंकि उन में 'कुछ' से 'सब' का अनुमान किया जाता है पर वैज्ञानिक आगमन Methodical है और बाकी Immethodical क्योंकि पहले में पद्धति तथा नियमों का पालन किया जाता है और बाद वाले में किसी नियम का अनुशरण नहीं किया जाता।

§.४ *अभ्यास* :—

1. Distinguish Induction proper from Inductions improperly-so-called.

2. 'In Perfect Induction there is no 'inductive leap'; hence, there is no real inference'. Discuss.

3. How does Induction differ from Colligation of fact ? Explain.

4. Distinguish between scientific and Popular Induction and also point out the differences between Complete and Incomplete Induction.

5. Explain and illustrate the various kinds of Inductions improperly-so-called.

6. Point out the distinction between processes simulating Induction and processes allied to Induction.

7. 'Every Induction is a colligation but every colligaton is not an Induction'. Discuss.

8. Explain Ind uction by Parity of Reasoning. Is it true form of Induction ?

9. Explain and exemplify Inference from Simple Enumeration. How it differs from Scientific Induction ?

तीसरा अध्याय

व्याप्ति–विधि (Inductive Method)

§१. व्याप्ति-ग्रहण की पद्धति (Steps of Induction)
§२. आगमन की आत्मगत (subjective) और विषयगत(objective) शर्तें
§३. भिन्न क्रमों (Steps) का महत्व
§४, आगमन और निगमन (Induction and Deduction)
§५. जेवन्स और अन्य तार्किकों के मत—
§६. आगमनात्मक परम्परानुमान (Inductive syllogism)
§७. आगमन से लाभ
§८. अभ्यास

§१. *व्याप्ति-ग्रहण की पद्धति या विज्ञान-रीति*-**(processes, steps or Methods of Induction or Methodology of Science)**

हम पहले कह चुके हैं कि आगमन का लक्ष्य अनेक उदाहरणों से समान्य नियम निकालने का है। अब प्रश्न है कि कैसे अर्थात् किन रीतियों द्वारा सामान्य नियम स्थापित किया जाता है ?

१ समस्या का स्पष्ट ज्ञान (clear idea of the problem to be investigated)—कोई भी नियम स्थापित करने के पहले यह जरूरी है कि किस क्षेत्र में या किन चीजों के विषय में या किन वस्तुओं का नियम निकालना है, इस बात को अच्छी तरह समझ लें। मनुष्य अपने जीवन में तो नित्य दिन, पल-पल अनुभव करता रहता है। वह हजारों चीजों को देखता है; पर उससे वह कोई नियम नहीं निकाल लेता, न निकाल ही सकता है। कौन सी वस्तु का अनुसन्धान करना है, कहां कहां वह वस्तु उपलब्ध है अर्थात् क्या समस्या है यह समझ लेना सबसे पहले जरूरी है।

२. उसके बाद उसके भिन्न-भिन्न उदाहरणों का निरीक्षण (observation) करना आरम्भ करते हैं। निरीक्षण करने में यह ध्यान रहता है कि उन उदाहरणों को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में देखें जिससे उनका पूर्ण विवरण तथा परिचय मिल सके। किसी खास स्थान में या विशेष समय में किसी कारणवश किसी वस्तु में विशेष प्रकार का गुण रह सकता है जो उसका वास्तविक धर्म नहीं है। इसलिये परिवर्तित परिस्थितियों (changed circumstances) में उदाहरणों का निरीक्षण किया जाता है।

केवल निरीक्षण करने से ही काम समाप्त नहीं हो जाता। प्रकृति की घटनाएँ बड़ी जटिल होती हैं। उनमें अपनी समस्या के दृष्टिकोण से बहुत-सी आवश्यक (necessary) और बहुत सी अनावश्यक (irrelevant) बातें निकलती हैं। मानलिया जाय कि किसी डाक्टर को किसी दवा का परिणाम जानना है। इस दशा में जलवायु, भोजन, शरीरिक गठन, इत्यादि के फलों को हटा कर ही उस दवा का फल ज्ञात हो सकता है। जलवायु, भोजन, शारीरिकगठन, इत्यादि का भी फल शरीर पर होता है। यदि किसी दवा का सेवन किया जाय तो उस दवा का कितना असर हुआ यह तो तभी जाना जा सकता है जबकि उपरोक्त शर्तों का फल पृथक कर दें। इसलिए निरीक्षण के बाद उनका विश्लेषण (analysis) किया जाता है। विश्लेषण द्वारा यह पता चल जाता है कि कौन से गुण आवश्यक (necessary) हैं और कौन अनावश्यक (irrelevant)।

विश्लेषण दो प्रकार का होता है—शारीरिक (physical) या मानसिक (mental)। जब किसी पदार्थ को वास्तव में भिन्न भिन्न अंगों में बाट दिया जाय तब वह शारीरिक (physical) विश्लेषण हो जायगा। पर किसी पदार्थ के अंगों का या गुणों को अपने मन में पृथक पृथक विचार करें तो वह विश्लेषण मानसिक (mental) होगा। जैसे, किसी नारंगी के गुणों का विश्लेषण किया जाय तो उसमें पीलापन, वजन तथा गोलाई का विचार होता है। इन गुणों को नारंगी से वास्तव में पृथक नहीं किया जा सकता पर उन्हें पृथक पृथक विचारा जा सकता है। उनमें से किसी एक के विषय में भी ध्यान दिया जा सकता है पर वास्तव में एक को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। इस क्रिया को abstraction कहा जाता है। व्याप्ति-विधि (Indu-

ctive method) में दोनों प्रकार का विश्लेषण काम में लगाया जा सकता है। विश्लेषण कर देने के बाद अनावश्यक बातों का परिष्कार आवश्यक है। यदि उस दवा का फल पता लगाना है तो भोजन, जलवायु, शारीरिक गठन, इत्यादि का फल यदि हटा नहीं दिया तो उस दवा का वास्तविक फल का पता नहीं चल सकता है। अतः हम अनावश्यक गुणों को हटा (eliminate) देते हैं। हटाना भी वास्तविक या मानसिक (physical or mental) दोनों हो सकता है। विश्लेषण और परिष्कार के लिए घटनाओं की विविध परिस्थिति में निरीक्षण की जानी चाहिए। विविध परिस्थितियों में निरीक्षण करने से ही आवश्यक और अनावश्यक बातों का पता चलना सम्भव है। प्रकृति में किसी घटना के साथ बहुत सी अनावश्यक बातें भी सम्मिलित रहती हैं। इस परिस्थिति में उस घटने का शुद्ध रूप पता नहीं चलता है। अतः यदि विविध परिस्थितियों में उसी घटने का निरीक्षण किया जाय तो बहुत सी बातें जो पहले मिली थीं वो नहीं मिलतीं। वे ही अनावश्यक बाते हैं और उनका वास्तव में उस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। सारांश यह हुआ कि आवश्यक और अनावश्यक बातों के ज्ञान के लिए परिस्थितियों में परिवर्तन करना (vary the circumstances) आवश्यक हो जाता है।

३. पूर्ण रूप से परीक्षा करने के बाद हम कल्पना (hypothesis) करते हैं कि उन घटनाओं का कौन-सा वास्तविक कारण है। जब मनुष्य बहुत सी सामान्य वस्तुओं या घटनाओं का निरीक्षण करता है तब वह किसी न किसी कारण की कल्पना कर लेता है। वह कल्पित कारण (supposed cause) वास्तविक (actual) या मिथ्या (false) दोनों ही हो सकता है। इसलिये इसकी परीक्षा की आवश्यकता होती है; अतः कल्पना ऐसी होनी चाहिए जिसकी परीक्षा की जा सके। कल्पना करने की कोई खास रीति नहीं है। यह मनुष्य की निजी बुद्धि तथा विद्या पर निर्भर है।

४. कल्पना के उपरान्त उस कल्पित कारण का सामान्यीकरण (generalisation) कर देते हैं अर्थात् यह मान लेते हैं कि उन देखे हुए उदाहरणों में ही नहीं अपितु और भी वैसे अज्ञात उदाहरणों का वही कारण होगा। यहीं हम ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करते हैं।

५. कारण के विषय में हमारी कल्पना सत्य और असत्य दोनों ही हो सकती है। कल्पना में तो हमने केवल अटकल लगाया है। वास्तविक रूप में तो हमें कारण का पता नहीं चला है। इसलिये अपनी कल्पना को अनुभव के द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता होती है तभी कारण का निश्चित ज्ञान सम्भव है। इसलिये कल्पना की परीक्षा (verification) की जाती है। परीक्षा दो रीति से हो सकती है। जहां निरीक्षण किया जा सकता है वहां तो सीधी रीति (direct verification) से काम लेते हैं। सीधी रीति से परीक्षा दो तरह से की जा सकती है, किसी पदार्थ को देखकर या उस पर प्रयोग (experiment) करके; पर बहुत सी ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका निरीक्षण आर्थात् उनको सीधी परीक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे स्थान पर उसे सत्य मानकर उससे कुछ फल निकाला जाता है। यदि वह वास्तविक हो तो उसका फल यह या वह होगा। फिर देखा जाता है कि वह निगमन (conclusion) अनुभव सिद्ध होता है या नहीं। इसे निगमनात्मक रीति कहते हैं (Deductive or Indirect method)। कभी-कभी दोनों ही रीति से कल्पनाओं की परीक्षा की जाती है। यदि परीक्षा द्वारा कल्पना सिद्ध (proved) हो जाती है तो वास्तविक कारण का ज्ञान हो जाता है और नियम बन जाता है, पर यदि वह कल्पना सिद्ध नहीं होती तो दूसरी कल्पना की जाती है और उसकी परीक्षा होती है ।

संक्षेप में—नियम अर्थात् कुछ उदाहरणों को देखकर वास्तविक यथार्थ सामान्य वाक्य बनाने की निम्नलिखित पद्धति है:—

(१) समस्या का स्पष्ट ज्ञान (Clear idea of the problem);

(२) निरीक्षण—विश्लेषण तथा अनावश्यक गुणों का पृथक करना ; (Observation-analysis and elimination of irrelevant factors)

(३) कल्पना (Hypothesis) ;

(४) सामान्यीकरण (Generalisation) ;

(५) परीक्षा—सीधी या निगमन निकाल कर (Verification-Direct or Indirect) ।

एक उदाहरण (An illustration)

मान लें कि मलेरिया ज्वर के कारण का पता लगाना है। खोज आरम्भ

करने के पहले हम यह स्पष्ट रूप से समझ लेते हैं कि मलेरिया क्या है, इसके क्या चिन्ह हैं ? इस प्रकार स्पष्ट रूप से जान लेते हैं कि मलेरिया एक प्रकार का ज्वर है जिसमें जाड़ा होकर बुखार, प्यास, दर्द, इत्यादि होता है।

इसके बाद इस रोग से पीड़ित ५ या १० मनुष्यों का निरीक्षण करते हैं। निरीक्षण में परिस्थियों को बदलते भी हैं। इन उदाहरणों का विश्लेषण करते हैं और निश्चय करते हैं कि किन अवस्थाओं में यह रोग होता है। हम देखते हैं कि प्रत्येक में क्या-क्या चिन्हहैं। खाना, पीना, जलवायु, स्वास्थ्य, कपड़ा, जाति, रंग, इत्यादि प्रत्येक में भिन्न हैं। इसलिये वे अनावश्यक बातें हैं। सभी में पाते हैं कि रहने का स्थान, दलदल तथा मच्छरों से भरा है, इसलिये खोज के सम्बन्ध में ये आवश्यक बातें हैं।

अपनी बुद्धि से इसके बाद कल्पना करते हैं कि या तो मच्छड़ या दलदल मलेरिया का कारण है। किसी एक की कल्पना करके उसकी परीक्षा करते हैं। मान लें कि मच्छड़ मलेरिया का कारण है; अब इसकी परीक्षा करनी है।

परीक्षा करने के पहले यह अनुमान कर लेते हैं कि अज्ञात उदाहरणों में भी यही कारण होगा। इसे सामान्यीकरण कहते हैं।

सामान्यीकरण कर लेने से ही नियम स्थापित नहीं हो जाता। अभी तो कारण की केवल कल्पना की गई है। कल्पना की परीक्षा आवश्यक है। परीक्षा सीधी या फेर से होती है। किसी मनुष्य पर उस तरह के मच्छड़ का प्रयोग कर देखते हैं कि उसका क्या फल होता है ? यदि वास्तव में उसे ज्वर हो जाता है तो सिद्ध होता है कि मच्छड़ ही उस ज्वर का कारण है। फेर से परीक्षा निगमन निकाल कर की जाती है। यदि मलेरिया मच्छड़ ही के कारण होता है, ऐसा मान लिया जाय, तो जहां उस प्रकार का मच्छड़ होगा वहां मलेरिया पीड़ित लोग होंगे, ऐसा कह सकते हैं। इसके बाद देखते हैं कि वास्तव में ऐसी बात है या नहीं। यदि वास्तव में ऐसी बात ठीक है तो हमारी कल्पना सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार नियम स्थापित करते हैं कि सभी मलेरिया पीड़ितों को अनौफेल्स (एक खास प्रकार का मच्छड़) के काटने से यह रोग होता है।

पर इन क्रमों (steps) के अलग अलग विवरण से यह नहीं समझना

चाहिये कि इनका प्रयोग एक के बाद एक होता है। किसी अनुसन्धान में यह बतलाना मुश्किल हो जाता है कि कहां पर से कौन शुरु होता है।

§२. *आगमन की आत्मगत तथा विषयगत शर्तें*

आगमन द्वारा नियम स्थापित करने के लिए उपरोक्त शर्तों का पालन आवश्यक है। दिये हुए सीढ़ीयों के अनुसार अन्वेषण करने पर ही सफलता मिलती है। विज्ञान में इन्हीं पद्धतियों का पालन किया जाता है। अत: वे ही आगमन की विषयगत (objective) शर्तें हैं। पर इन शर्तों का पालन करने पर भी कोई वैज्ञानिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता जब तक वह स्वयं अपने मन को अन्धविश्वासों से खाली न कर ले। अत: किसी वैज्ञानिक अन्वेषण के पहले अपने आप को उसके लिए तैयार कर लेना आवश्यक है। उपरोक्त पद्धति के ज्ञान रहने पर भी जब तक स्वयं हम कुछ शर्तों का पालन न करें तब तक कोई वैज्ञानिक गवेषणा सम्भव नहीं है। आत्मगत शर्तें क्या हैं उनका उल्लेख अब किया जायगा।

आत्मगत शर्तें:—किसी वैज्ञानिक गवेषणा में सबसे पहले, जैसा बेकन ने बतलाया है, हमें अपने मन से अन्धविश्वासों को दूर कर देना चाहिये। मनुष्य का मन अधिकतर किसी न किसी रूप में अन्धविश्वासों से भरा रहता है। जब तक हमारे मस्तिष्क में अन्धविश्वास रहेगें तब तक प्रकृति का वास्तविक रूप का पता हमें नहीं चल सकता। बेकन ने इन अन्धविश्वासों को Idolas कहा है। इन्हें मस्तिष्क से हटा कर ही हम प्रकृति के वास्तविक रूप का प्रदर्शन कर सकते हैं। अत: वैज्ञानिक गवेषणा के पहले यह पहली आवश्यकता है।

(२) वैज्ञानिक गवेषणाओं में जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रकृति बड़ी जटिल है। वह इतनी सरल नहीं है कि बिना किसी मेहनत के हमें कार्य-कारण सम्बन्ध का पता चल जाए। कारण के पता लगाने में या किसी प्रकार का अविष्कार करने में काफी सतर्कता की आवश्यकता होती है। सतर्क होने के आतिरिक्त हमें धैर्य की भी आवश्यकता है। किसी गवेषणा में प्रतिकूल परिस्थिति सदा विचलित करती है। पर उन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करके ही हमें सफलता मिल सकती है। सतर्कता और धैर्य दोनों आवश्यक है।

(३) यह बतलाया गया है कि किसी भी आगमनात्मक पद्धति में कल्पना की आवश्यकता होती है। कल्पना ही हमें रास्ता दिखलाती है। हम उसी से कारण का अटकल लगाते हैं और पीछे परीक्षा द्वारा उसे सिद्ध करते हैं। पर कल्पना के लिए काल्पनिक शक्ति आवश्यक है। केतली से भांप निकलते हुए वैट-सन के पहले कितने लोगों ने देखा होगा पर पहली बार वैटसन ही ने इस बात की कल्पना की कि भांप-शक्ति द्वारा भारी से भारी वस्तु भी चलाई जा सकती है; अतः उसने इंजन का अविष्कार किया। तीव्र बुद्धि और काल्पनिक शक्ति की कल्पना में आवश्यकता है। अतः आगमन के लिये ये दोनों अनिवार्य हैं।

(४) आगमन की दो आवश्यक मान्यताएं हैं, प्रकृति-समरूपता-नियम (Law of Uniformity of Nature) और कार्य-कारण-नियम (Law of Causation)। वैज्ञानिकों को इन दोनों नियमों को मानकर ही आगे बढ़ना होता है। अभी के प्रयोग और निरीक्षण से भविष्य की कल्पना वह इन्हीं के आधार पर करते हैं। ज्ञात से अज्ञात का अनुमान इसी से होता है। अतः किसी नियम के प्रतिपादन करने में इन दोनों नियमों में विश्वास आवश्यक है।

सारांशः—

(१) अन्धविश्वासों को हटाना (To free one's mind from Idolas)

(२) धैर्य और सतर्कता (Patience & care)

(३) तीव्र बुद्धि और काल्पनिक शक्ति (Intelligence & imaginative mind)

(४) प्रकृति-समरूपता और कार्य-कारण नियमों में विश्वास

§३. *भिन्न क्रमों का महत्व* (**Importance of the various steps**)

भिन्न विचारकों ने भिन्न क्रमों का अलग अलग महत्व बतलाया है।

बेकन ने बतलाया है कि नियमों के पता लगाने में निरीक्षण (observation) सब से अधिक महत्वपूर्ण है। जब तक पूर्ण रूप से समस्या न जान लें और उदाहरणों की व्यवस्थित निरीक्षण न करें, कोई नियम स्थापित नहीं किया जा सकता।

प्लेटो ने विश्लेषण के द्वारा आवश्यक बातों के पता लगाने को अधिक महत्व दिया है। उसका कहना है कि जब यह निश्चित रूप से पता चल जाता है

कि ये बातें आवश्यक हैं तो नियमों का स्थापित करना बिल्कुल आसान हो जाता है।

बेवेल ने कल्पना को सब से महत्वपूर्ण बतलाया है। यूं तो किसी वस्तु को बहुत से लोग देखते हैं पर जब तक कारण की कल्पना नहीं की जाती कोई नियम स्थापित नहीं किया जा सकता। बहुत लोगों ने आम को पक कर नीचे गिरते देखा पर एक ही ने कल्पना की, कि पृथ्वी में आकर्षण के कारण ऐसा होता है। परीक्षा के उपरान्त यही कल्पना नियम हो गया।

मिल ने सामान्यीकरण को ही महत्व दिया है। उसके विचार से तर्कशास्त्र का विषय अनुमान है, अनुसन्धान नहीं। सामान्यीकरण के द्वारा ही हम ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करते हैं।

जेवन ने परीक्षा को सबसे अधिक महत्वपूर्ण कहा है। जब तक कल्पना की परीक्षा नहीं की जाती वास्तविक कारण का पता नहीं चल सकता, इसलिये निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है।

वास्तव में इन क्रमों का प्रयोग अलग-अलग एक के बाद एक का नहीं होता। कहीं कहीं तो यह कहना मुश्किल है कि कहां किसका प्रयोग हुआ है। सब क्रम फल की दृष्टि से बराबर महत्व रखते हैं। प्रयोग में एक को भी छोड़ा नहीं जा सकता।

§४. *आगमन और निगमम में भेद और सम्बन्ध*—**(Relation between Induction and Deduction)**

आगमन और निगमन दोनों ही अनुमान के प्रकार हैं इसलिये दोनों में निकट सम्बन्ध है। अब हम दोनों में भेद (differences) और सम्बन्ध (relation) बतलायेगें।

भेद (Differences)

(१) निगमन-विधि द्वारा माने हुए (presupposed) सत्यों से फल निकालते हैं, आगमन में वस्तुओं के निरीक्षण के आधार पर उनका नियम स्थापित करते हैं। एक में आधार को सत्य मान लेते हैं दूसरे में उसका अनुभव करते हैं। उदाहरण-सभी ग्रह चलते हैं, मंगल एक ग्रह है; अतः मंगल भी चलता है।

यह निगमन-विधि है। इसमें आधार-वाक्यों की परीक्षा नहीं की गई है अपितु इसे सत्य मान लिया गया है। इसीलिए इसमें किसी भी आधार से कोइ निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इसमें आधार-वाक्यों की परीक्षा की आवश्यकता नहीं है। पर आगमन के आधार निरीक्षण (observation) तथा प्रयोग (experiment) पर आश्रित रहते हैं। उन्हें सत्य नहीं मान लिया जाता।

(२) निगमन-विधि में हम सामान्य (universal) से विशेष या कम सामान्य (particular or less universal) फल निकालते हैं। ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट विदित होता है कि निष्कर्ष का आधार-वाक्य (premise) निष्कर्ष से अधिक व्यापक है। उसमें सभी ग्रहों के बारे में कुछ कहा गया है पर निष्कर्ष में मंगल के विषय ही में कोई बात कही गई है। यदि निगमन-विधि में कम व्यापक (less general) से अधिक व्यापक निष्कर्ष निकाला जाए तब उस अनुमान में दोष हो जाता है। आगमन में वस्तु-विशेष (particular object) के अनुमान के आधार पर सामान्य नियम निकाला जाता है। इसका निष्कर्ष सामान्य होता है। इसलिए इसमें कम व्यापक से अधिक व्यापक निष्कर्ष होता है।

(३) निगमन-विधि में अनुमान के केवल आकार (form) की जांच होती है—केवल उसी के नियम (rules) बताए जाते हैं। इसमें यह नहीं विचार किया जाता कि अनुमान में वास्तविकता कहां तक है। 'सब मनुष्य-ईमानदार हैं, सब पक्षी मनुष्य हैं, इसलिए सब पक्षी ईमानदार हैं' यह अनुमान निगमात्मक (Deductive) है और रूप की दृष्टि से शुद्ध भी। आगमन में आकार और विषय (form and matter) दोनों ही की जांच होती है।

(४) निगमनात्मक अनुमान में आधार-वाक्य (premises) की संख्या (number) निश्चित (fixed) है, अनन्तरानुमान (Immediate Inference) में एक और परम्परानुमान (Syllogism) में दो। आगमन में किसी निष्कर्ष के आधार की संख्या असीमित रहती है। ऐसा सम्भव है कि एक ही उदाहरण के निरीक्षण और प्रयोग से कार्य-कारण सम्बन्ध का पता चल जाय और हम कोई नियम स्थापित करलें या दो, तीन, चार या उससे भी अधिक उदाहरणों को देखने की आवश्यकता पड़े।

(५) निगमनात्मक तर्क को आधार हैं व्याघात-नियम, तदात्मय-नियम और मध्यदशानिषेध-नियम। इन्हीं को मानकर कोई निगमनात्मक निष्कर्ष सम्भव होता है; पर आगमनात्मक तर्क का आधार कार्य-कारण-नियम और प्रकृति-समरूपता-नियम हैं। इन्हीं के आधार पर 'कुछ' से 'सब' का अनुमान होता है।

सम्बन्ध (Relation)

जब दोनों का सम्बन्ध विचार करते हैं तो प्रश्न उठता है कि दोनों में कौन मौलिक और पूर्ववर्ती (fundamental and prior) है? इस विषय पर सभी तार्किकों का मत एक नहीं है। तार्किकों के दो दल हैं, एक जो अनुमान में केवल आकारिक (formal) सत्य ढूँढ़ते हैं और दूसरे जो वास्तविक (material) सत्य पर प्रकाश डालते हैं। दोनों के मत इस सम्बन्ध में भिन्न हैं।

मौलिक (fundamental) कौन?

(क) मैनसेल, हैमिल्टन, इत्यादि, आकारवादी तार्किकों (formal logicians) का विचार है कि निगमन मौलिक है और आगमन गौण अनुमान है या उसीका एक रूप। उनके अनुसार आगमनात्मक तर्क आसानी से निगमनात्मक सांचे में ढ़ाले जा सकते हैं। अरस्तु ने आगमन को तीसरे Figure का ही एक Mood बताया है। इससे यह सिद्ध होता है कि आगमन कोई स्वतंत्र अनुमान नहीं है। इसके अतिरिक्त आगमनात्मक अनुमान में कार्य-कारण-नियम और प्रकृति-समरूपता को आधार मान कर जितने निष्कर्ष हैं सब निगमनात्मक ढंग से उनसे निकाले जा सकते हैं, जैसे, जो वस्तु एक दूसरे के साथ बराबर हो तो एक का सम्बन्ध दूसरे से रहता है (कार्य-कारण-नियम), क और ख बराबर साथ रहते हैं, इसलिये क और ख सम्बन्धित हैं। यह निगमन-विधि है। इसी प्रकार जितने आगमनात्मक (Inductive) अनुमान हैं वे सभी निगमनात्मक रूप में ढ़ाले जा सकते हैं। इसलिए उनका मत है कि आगमन निगमन से स्वतंत्र नहीं है। निगमन ही मौलिक अनुमान है और आगमन उसका व्युत्पन्न (derived) रूप।

(ख) मिल, वेन, इत्यादि विषयवादी तार्किकों (material logioians) का मत भिन्न है। उनके अनुसार आगमन ही मौलिक है और निगमन उसी

के अन्तर्गत एक गौण अनुमान है। निगमनात्मक अनुमान में कम से कम एक व्यापक (universal) वाक्य की आवश्यकता होती है। वह व्यापक वाक्य कार्य-कारण सम्बन्ध पर आश्रित रहता है। अत: कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करना ही अनुमान का मुख्य लक्ष्य है। यह सम्बन्ध आगमन द्वारा ही स्थापित किया जाता है। जब व्यापक वाक्य अर्थात् नियम स्थापित हो जाते हैं तब निगमन उनको उदाहरणों में लागू करता है, जैसे, यह आगमन द्वारा निश्चय कर लेने पर कि मलेरिया का कारण अनोफिल दंशन है, उससे निगमन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'इस मलेरिया पीड़ित' को भी उसी मच्छड़ ने काटा है। इसलिए निगमन कोई स्वतंत्र अनुमान नहीं है। यह आगमन का ही एक गौण भाग है।

वास्तव में दोनों दलों का विचार एकतरफा है। दोनों विधियां एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं बल्कि एक दूसरे को संकेत (suggest) करती हैं। एक दूसरे पर आधारित हैं, पर एक को दूसरे में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। ऐसा करने से दोनों की अपनी अपनी वास्तविकता चली जाती है। दोनों वास्तव में एक दूसरे के सहायक हैं।

(क) पूर्ववर्ती (Prior) कौन ?

जेवन का मत है कि निगमन पूर्ववर्ती है और आगमन उसके बाद आता है। आगमन द्वारा किसी नियम की स्थापना की जाती है। नियम स्थापित करने में हमने देखा है कि पहले कल्पना (hypotheses) की जाती है और बाद में उस कल्पना की परीक्षा की जाती है। पर परीक्षा करने में निगमन की आवश्यकता होती है। इसलिए आगमन में कोई नियम बिना निगमन की सहायता से नहीं स्थापित किया जा सकता है। अत: निगमन का स्थान पहले है और आगमन का बाद में।

(ख) मिल का विचार इसके प्रतिकूल है। परम्परानुमान (syllogism) में, जो निगमन का मुख्य रूप है, एक सामान्य आधार-वाक्य की आवश्यकता होती है। वह सामान्य-वाक्य आगमन द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है। उसी सामान्य वाक्य से निगमन में विशेष या कम व्यापक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अत: आगमन का स्थान पहले है और निगमन का उसके बाद।

इस विचार में भी वही दोष है। निगमन और आगमन प्रतिकूल नहीं हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

अन्य विचार :—बहुत से तार्किकों ने आगमन को निगमन की प्रतिकूल क्रिया बतलाया है। निगमनमें सामान्य से कम सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है पर आगमन में कम सामान्य से सामान्य निष्कर्ष होता है। अतः आगमन निगमन की उल्टी विधि है। इन मतों से प्रतीत होता है कि आगमन और निगमन वास्तव में प्रतिकूल विधियां हैं और दोनों में विरोध है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है।

यथार्थ सम्बन्धः—निगमन और आगमन दोनों ही अनुमान के दो प्रकार हैं। तर्कशास्त्र का लक्ष्य है अनुमान विषयक सत्य की प्राप्ति; पर सत्य एक है। उसके दो पहलू हैं ,आकारिक सत्य और वास्तविक सत्य ; पर इन दोनों पहलुओं को पृथक नहीं किया जा सकता है। हर अनुमान में उसका कुछ आकार होता है और उसका कुछ विषय। एक से निगमन सम्बन्धित है और दूसरे से आगमन। अतः इन दोनों को भी पृथक नहीं किया जा सकता है। किसी विज्ञान में दोनों की आवश्यकता होती है। किसी में निगमन प्रमुख रहता है और किसी में आगमन। पर केवल निगमन या केवल आगमन द्वारा किसी भी वैज्ञानिक अन्वेषण में सफलता नहीं मिल सकती। वास्तव में दोनों एक दूसरे के पूरक (supplementary) हैं। अनुमान के पूर्ण ज्ञान के लिए दोनों आवश्यक हैं। एक बिना दूसरे के अधूरा है।

तत्त्व को अध्ययन करने की दो विधियां होती हैं—विश्लेषणात्मक (analytic) और संयोगात्मक (synthetic)। संसार में विशेष पदार्थ सिद्धान्तों के उदाहरण मात्र होते हैं। राम की मृत्यु, श्याम की मृत्यु, हरी की मृत्यु, इत्यादि, 'सभी मनुष्य मरणशील हैं', इस नियम का उदाहरण है। आगमन द्वारा इन विशेष उदाहरणों का निरीक्षण कर सिद्धान्त का अनुमान किया जाता है और निगमन में उन सिद्धान्तों का विश्लेषण कर विशेष निष्कर्ष निकाला जाता है। पहले में हम विशेष उदाहरणों का संयोग करते हैं दूसरे में सिद्धान्तों का

विश्लेषण किया जाता है। पर इन दोनों विधियों में एक ही तत्त्व का ज्ञान होता है। तत्त्व में भेद नहीं होता।

इसलिए दोनों का लक्ष्य (aim) एक ही है, अनुमान में सत्य की प्राप्ति पर अन्तर है केवल आरम्भविन्दु (starting point) में और रीति में। निगमन का आरम्भविन्दु है सामान्य नियम और उसी से विश्लेषण द्वारा विशेष निष्कर्ष निकाला जाता है। आगमन का आरम्भविन्दु है विशेष उदाहरण और उसीसे नियम स्थापित किया जाता है। एक की रीति हुई विश्लेषणात्मक दूसरे का संयोगात्मक। अतः दोनों में विरोध नहीं है क्योंकि दोनो का तत्त्व (essence) एक ही है।

§५. *जेवन्स और अन्य तार्किकों के मत:—*

(क) जेवन्स ने बतलाया है कि आगमन (Induction) निगमन की उत्क्रमिक (inverse) क्रिया है। उत्क्रमिक शब्द गणितशास्त्र का है। गणितशास्त्र में सीधी क्रिया (direct process) उसे कहा जाता है जहां निश्चित संख्याएं दी हुई हों और हमें उनका फल निकालना पड़ता है। जैसे, ३×४ दिया हुआ है और उसका गुणनफल हुआ १२। यह क्रिया सीधी है। उत्क्रमिक क्रिया inverse process) में फल दिया हुआ रहता है और उन संख्याओं को निकालन पड़ता है जिनका वह फल है। जैसे, १२ दिया हुआ है और इसके अवयवों को निकालना है। इसके अवयव हुए ४×३ या ६×२ या १२×१ या ३×१६, इत्यादि। इस क्रिया में यह स्पष्ट है कि निष्कर्ष निश्चित नहीं है क्योंकि एक ही फल अनेकों अवयवों से निकाला जा सकता है जैसा कि उपरोक्त उदाहरण में दिया गया है। जेवन्स के अनुसार आगमन भी इसी प्रकार निगमन की उत्क्रमिक क्रिया है। निगमन में दो आधार वाक्यों से निष्कर्ष निकाला जाता है और निष्कर्ष निश्चित होता है। आधार वाक्यों के मान लेने पर दूसरा निष्कर्ष सम्भव ही नहीं है। 'सभी पक्षी के पंख होते हैं', 'यह एक पक्षी है', इसलिए, उसे भी पंख होगा, यह निष्कर्ष निश्चित है। पर आगमन में निष्कर्षों में निश्चयात्मकता सम्भव नहीं है। एक-दो उदाहरणों को देख कर सामान्य नियम निकाला जाता है। भविष्य में वह सत्य होगा या नहीं होगा ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। यदि सभी घटना-विशेषों का निरीक्षण सम्भव होता

तो निष्कर्ष निश्चयात्मक होते पर ऐसा सम्भव नहीं है। दूसरे, एक ही घटना कई एक कारणों से हो सकती है, इसलिए यह निश्चत रूप से कहना की अमुक घटना का अमुक कारण है दोषपूर्ण होगा। जिस प्रकार १२ भिन्न संख्याओं का गुणन फल है और यह कहना कि १२ केवल ४×३ का फल है, दोषपूर्ण होगा उसी प्रकार आगमन के निष्कर्ष भी हैं। दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार सीधी क्रिया पहले होती है और बाद में उसकी उल्टी क्रिया, उसी प्रकार निगमन का पहला स्थान है और आगमन का बाद वाला। इसीलिए जेवन्स ने आगमन को निगमन की उत्क्रमिक क्रिया बतलाया है। जेवन्स का मत वास्तव में दोषपूर्ण है। निगमन को आगमन की पूर्वगामिनी कहना उचित नहीं है। दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। अतः पहले और बाद का प्रश्न ही उनके साथ नहीं है। दूसरे, आगमन का निष्कर्ष निश्चयात्मक होता है। यदि जेवन्स का मत ठीक माना जाय तो उस दृष्टि से कोई भी ज्ञान निश्चयात्मक नहीं हो सकता क्योंकि अनुभव सीमित होता है। भविष्य में क्या होगा इसका तो भविष्य का अनुभव करने ही पर कहा जा सकता है। उसी आधार पर विज्ञान के सत्य निश्चयात्मक माने जाते हैं। इस दृष्टि से आगमन के निष्कर्ष भी निश्चयात्मक होते हैं क्योंकि वे कार्य-कारण सम्बन्ध पर आश्रित हैं। फिर यह कहना कि एक ही कार्य (effect) के कई-एक कारण हो सकते हैं इसलिए किसी फल से उसका कारण निश्चत रूप से नहीं जाना सकता, भी ठीक नहीं है। हम आगे देखेंगें कि यह मत कि कोई कार्य (effect) कई कारणों से होते हैं, दोषपूर्ण है। पर यदि आगमन को निगमन की उल्टी क्रिया कहने का यह अर्थ है कि एक में सामान्य से विशेष और दूसरे में विशेष से सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है, तो यह विचार ठीक है। पर इससे यह नही समझना चाहिए कि दोनों प्रतिकूल क्रियाएं हैं।

(ख) बेकन ने निगमन को 'उतरनेवाली क्रिया' (descending process) और आगमन को 'चढनेवाली क्रिया' (ascending process) कहा है। इसका अर्थ यह है कि निगमन में सामान्य नियम से विशेष निष्कर्ष निकाले जाते हैं अर्थात् अधिक व्यापक से कम व्यापक की ओर जाते हैं। आगमन में घटना-विशेष से सामान्य निष्कर्ष निकाला जाता है अर्थात् कम व्यापक से

धिक व्यापक निष्कर्ष। यह क्रिया ठीक वैसी ही है जैसी यदि हम नीचे से किसी पहाड़ पर चढ़ें तब विशेष पदार्थ की विशेष आकृति नहीं सूझती, सभी सामान्य रूप दीखने लगते हैं। वैसे ही आगमन में घटना-विशेषों के निरीक्षण के उपरांत सामान्य नियम निकाला जाता है। पहाड़ पर से जैसे जैसे हम नीचे की ओर आते हैं पदार्थों का सामान्य रूप दूर होता जाता है और सभी वस्तुओं की विशेष आकृति सामने आ जाती है, इसी प्रकार निगमन में भी सामान्य से विशेष की ओर जाया जाता है। इसीलिए एक को उतरनेवाली क्रिया और दूसरे को चढ़नेवाली क्रिया कहा गया है। बेकन की इस उक्ति से यह प्रतीत होता है कि दोनों विपरीत क्रियाएं हैं, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। यह सत्य है कि एक में विशेष से सामान्य और दूसरे में सामान्य से विशेष निष्कर्ष निकाला जाता है पर दोनों का राह एक ही है। चढ़ने और उतरने का राह दो नहीं है इसलिए दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं है।

(ग) Fowler ने आगमन और निगमन में भेद बतलाते हुए कहा है कि आगमन में हम कार्य से कारण की ओर और निगमन में कारण से कार्य की ओर जाते हैं। घटना-विशेष की परीक्षा के उपरान्त हम आगमन में उसका कारण बताते हैं इसलिए उसमें कार्य (effect) से कारण (cause) की ओर हम बढ़ें, और निगमन में सामान्य नियम अर्थात् कारण से हम विशेष (कार्य) निष्कर्ष निकालते हैं। इस मत में भी दोष हैं। आगमन में केवल कार्य (effect) से कारण का पता नहीं चलाया जाता अपितु कारण का ज्ञान रहने पर इस विधि द्वारा कार्य का भी पता चलाया जाता है और उसे सिद्ध किया जाता है। इसलिए ऐसा कहना कि आगमन में हम केवल कारण का पता चलाते हैं, भूल है।

दूसरे, यदि उपरोक्त कथन का यह अर्थ हो कि कार्य से कारण का पता लगाने में निश्चयात्मता की कमी रहती है क्योंकि एक ही कार्य के कई कारण हो सकते हैं तो यह भी ठीक नहीं है। आगमन के निष्कर्ष निश्चयात्मक होते हैं।

(घ) ऐसा भी कहा गया है कि आगमन में वस्तु विशेष (facts) से विचार (ideas) का और निगमन में विचार (ideas) से वस्तु-विशेष का अनुमान किया जाता है। नियम जो आगमन द्वारा स्थापित किए जाते हैं सैद्धान्तिक

होते हैं और उनका प्रत्यक्ष उदाहरण रूप विशेषों में होता है। इसलिए यह कहा गया है कि आगमन में वस्तु-विशेष से विचार का अनुमान किया जाता है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि आगमन के निष्कर्ष केवल मानसिक हैं, यथार्थ नहीं। सके निष्कर्षों में भी यथार्थता है और निगमन में भी मानसिक अंश।

§ ६. *आगमनात्मक परम्परानुमान* **(Inductive Syllogism)**

कुछ तार्किकों ने आगमन को निगमनात्मक सांचे में ढालने का प्रयत्न किया है। उनका मत है कि आगमनात्मक तर्क वास्तव में निगमनात्मक अनुमान ही का एक भेद है और इसीलिए उन्हें परम्परानुमान (syllogism) के रूप में परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसा विचार आकारवादी (formal) तार्किकों का है जिन्होंने निगमन को ही अनुमान का प्रमुख भेद बतलाया है। इस दिशा में अरस्तु (Aristotle) और भैटले या आलडरीच के मत उल्लेखनीय हैं।

(१) अरस्तु का मत :—उसके अनुसार विशेष उदाहरणों के आधार पर किसी वाक्य के सिद्ध करने को आगमन कहा जाता है। किसी वाक्य की सार्वभौमिकता सिद्ध करना यह प्रमाणित करके कि वह विशेष उदाहरणों में लागू है आगमन है। उसने इसे कहा है proving the major term of the middle by means of the minor अर्थात् मध्यपद के साथ वृहत्पद को लघुपद द्वारा सिद्ध करना। यहां वृहदपद का अर्थ है उस पद से जिसका सबसे अधिक विस्तार हो और मध्यपद मध्यविस्तार और लघुपद सबसे कम विस्तारवाला पद से। उसने आगमन को निम्नलिखित रीति से परम्परानुमान में व्यक्त किया है :—

गाय, भेड़, हरिन, इत्यादि, पागुर करते हैं।
गाय, भेड़, हरिन, इत्यादि, सींघवाले पशु हैं।
अतः सभी सींघवाले पशु पागुर करते हैं। या
क, ख, ग, घ, इत्यादि ट हैं।
क, ख, ग, घ, इत्यादि सभी त हैं।
इसलिये सभी त, ट हैं।

इसमें 'पागुर करना' यह वृहद्पद है, 'सींघवाले पशु' मध्यपद और गाय,

भेड़, हरिन, इत्यादि लघुपद। यह तर्क तीसरे आकार (figure) के Darapti मूड (Mood) में है। यहां वृहद्पद 'पागुर करना' मध्यपद 'सींघवाले पशु' के लिए सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार कोई भी आगमनात्मक तर्क निगमनात्मक सांचे में ढाले जा सकते हैं। पर इसमें कठिनाई तथा दोष है।

(१) गाय, भेड़, हरीन, इत्यादि को सभी सींघवाला पशु कैसे सिद्ध किया गया है? यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक की गणना की जाय। प्रत्येक की गणना करके ही सबके विषय में निश्चित रूप से कहा जा सकता है। पर क्या सब की गणना करना सम्भव है? यदि सब की गणना कर भी लिया जाय तब उसे आगमन नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमें ज्ञात से अज्ञात का अनुमान नहीं हुआ है जो आगमन का मुख्य लक्षण है। अत: उस दशा में इस अनुमान को आगमन कहा ही नहीं जा सकता है। यदि कुछ उदाहरणों को देखकर सब का अनुमान किया जाता है तब वह आगमन है। इस दशा में उपरोक्त विधि से निष्कर्ष नहीं स्थापित किया जा सकता है। उसके लिये व्याप्ति-विधि का प्रयोग आवश्यक है।

(२) अनुमान के आकार की दृष्टि से भी यह अनुमान दोषपूर्ण है। पहले वाक्य में गाय, भेड़, हरीन, इत्यादि सामूहिक अर्थ में नहीं प्रयोग हुए हैं पर दूसरे वाक्य में सामूहिक अर्थ में उनका प्रयोग हुआ है। वे सब मिलाकर सब सींघवाले पशु हैं। अत: एक ही पद दो अर्थों में व्यवहार किया गया है, एक में विभाजित अर्थ में दूसरे में सामूहिक अर्थ में, इसलिए इसमें संग्रह-दोष (fallacy of composition) हो गया है। अत: उपरोक्त विधि से आगमन को परंपरानुमान (syllogism) में नहीं व्यक्त किया जा सकता है।

(३) Whatley और Aldrich का मत :—इन्होंने भी आगमन को परम्परानुमान में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। उनकी रीति निम्नलिखित है:—

वे मनुष्य जिन्हें हमने देखा है और जिन्हें हमने नहीं देखा, मरणशील हैं,

पर सभी मनुष्य *वही मनुष्य हैं जिन्हें हमने देखा है और वे जिन्हें हमने नहीं देखा है,* अत: सभी मनुष्य मरणशील हैं।

यह अनुमान प्रथम आकार (first figure) का Barbara Mood है। इसी प्रकार अन्य आगमनात्मक अनुमान परम्परानुमान में व्यक्त किए जा

सकते हैं। पर इस तर्क में भी दोष है। इस अनुमान में जो आधार-वाक्य है उसे ही सिद्ध करने की आवश्यकता है। यह कैसे सिद्ध होता है कि 'वे जिन्हें हमने देखा, मरणशील हैं'। इसे हमने इस अनुमान में सत्य मान लिया है। पर इसे सिद्ध करने की आवश्यकता है तभी हमारा निष्कर्ष वास्तविक होगा। उसे सिद्ध करने के लिए आगमन की आवश्यकता होती है।

(३) Mill ने बताया है कि प्रकृति-समरूपता-नियम को आधार मानकर आगमनात्मक अनुमान परम्परानुमान के रूप में परिवर्तित हो सकते हैं।

प्रकृति-समरूपता-नियम—किसी परिस्थिति में जो किसी जाति के कुछ सदस्यों के लिए सत्य है वह उसी परिस्थिति में उस जाति के प्रत्येक सदस्य के लिए सत्य होगा। मरणशीलता मनुष्य जाति के अनेक सदस्यों, जैसे, राम,श्याम, इत्यादि, के लिए सत्य है, किसी विशेष परिस्थिति में अर्थात जब उनमें मानव प्रकृति विद्यमान है; इसलिए मरणशीलता उस परिस्थिति में अर्थात् जब उनमें मानव-प्रकृति विद्यमान है, उस जाति के प्रत्येक सदस्य के लिए सत्य होगा अर्थात् सभी मनुष्य मरणशील हैं—निष्कर्ष। इस विधि से आगमनात्मक परंपरानुमान सम्भव है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि आगमन स्वतंत्र अनुमान नहीं है। कुछ उदाहरणों के निरीक्षण के उपरांत ही सब के विषय में अनुमान किया जा सकता है। ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करने के लिए उस परिस्थिति का अन्वेषण करना पड़ता है जो थोड़े से निरीक्षित उदाहरणों में मिलता है।

§७. *आगमन से लाभ:—*

कुछ उदाहरणों के आधार पर सामान्य नियम स्थापित करना आगमन का लक्ष्य है। अपने दैनिक जीवन में और वैज्ञानिक गवेषणाओं में भी मनुष्य कुछ ही पदार्थों का निरीक्षण करता है। यदि वह चाहे भी तो सभी पदार्थों का निरीक्षण वह कर नहीं सकता क्योंकि भविष्य उसके अनुभव के बाहर है। इन्हीं अनुभवों के आधार पर सामान्य नियम बनाए जाते हैं। अत: दैनिक जीवन के लिए और विशेषकर वैज्ञानिक गवेषणाओं के लिए आगमन नितांत आवश्यक है।

आगमन विज्ञानों में पद्धति के रूप में व्यवहार किया जाता है। इसी पद्धति के व्यवहार से बड़े बड़े आविष्कार हुए हैं। अत: यह वैज्ञानिक पद्धति के रूप में

अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। विशेष पदार्थों के निरीक्षण के आधार पर ही सामान्य नियम स्थापित किए जाते हैं। जो पदार्थ पहली दृष्टि में स्फुट तथा असम्बन्धित दीखते हैं उनके नियमों का ज्ञान हो जाने से उनमें सम्बन्ध दीखने लगता है। एक ग्रह दूसरे से बिल्कुल भिन्न प्रतीत होते हैं पर जब हमें यह ज्ञात हो जाता है कि वे एक ही नियम का पालन करते हैं तो उनका सम्बन्ध भी स्पष्ट हो जाता है। ये नियम आगमन द्वारा सिद्ध होते हैं। अत: आगमन से हमें विश्व की आन्तरिक एकता की झलक मिलती है। आगमन नियमों को स्थापित करके भविष्य की गवेषणाओं में भी सहायता पहुँचाती है। नए नए अन्वेषणों में स्थापित नियम ही सहायक होते हैं।

आगमन यथार्थ सामान्य वाक्यों का निरूपण करता है। ये वाक्य परम्परानुमान (syllogism) में आधार-वाक्य होते हैं। अत: निगमनात्मक अनुमान के आधार-वाक्य आगमन द्वारा सिद्ध होते हैं। उन्हीं से निष्कर्ष निकाला जाता है।

निगमन केवल अनुमान के आकार का अध्ययन करता है। अनुमान का दूसरा पहलू उसका विषय आगमन से ही सम्बन्धित है। अत: अनुमान का अध्ययन आगमन से ही पूर्ण होता है।

इसके अतिरिक्त आगमन स्मृति के लिए सहायक है। एक आलमारी में यदि १०० अंग्रेजी की पुस्तकें हों तो सभी को एक-एक कर याद रखना सम्भव नहीं है। आगमन द्वारा उन्हें सामान्य वाक्य के रूप में स्मरण रखना सरल है। इसलिए स्मृति के लिए भी आगमन सहायक है।

§८. *अभ्यास:—*

1. What is meant by 'varying the circumstance' in Scientific Investigation ? What is the utility of this process ? Explain with illustrations.

2. Explain the Inductive Method pointing out its utility.

3. Explain fully the differences between Deduction and Induction. Can Induction be described as the inverse process of Deduction ?

4. Does Induction precede Deduction or Deduction precede Induction ? Discuss.

5. 'The difference between Induction and Deduction is not one of principle but of starting point.' Discuss.

6. 'Induction and Deduction are not opposed to each other, rather, they are complementary processes.' How far do you agree with this statement ?

7. What are the subjective conditions of Induction ? Explain fully.

8. What is meant by Inductive syllogism ? Explain fully.

चौथा अध्याय

आगमन का आधार (Ground of Induction)

§१. आगमन का आधार (Ground)

§२. प्रकृति-समरूपता-नियम (Law of Uniformity of Nature)

§३. प्रकृति-समरूपता में विश्वास का सूत्र (origin of belief in the Law of Uniformity of Nature)-व्याप्ति-चक्र (Paradox of Induction)

§४. कार्य-कारण-नियम (Law of Causation)

§५. कार्य-कारण नियम और प्रकृति-समरूपता नियम में सम्बन्ध

§६. कारण का अर्थ—

(क) कारण के गुण-सम्बन्धी लक्षण (Qualitative marks of a cause)

(ख) कारण के परिमाण-सम्बन्धी लक्षण (Quantitative marks of a cause)

§७. उपाधि (Condition) और कारण

§८. उत्तेजक और अन्योन्यस्थिति(Moving power & Collocation)

§९. प्रवर्त्तक और परिवर्तित (Agent and Patient)

§१०. कारण के विषय में भिन्न मत (Different views of causation)

§११. कारण-सम्बन्ध का विज्ञान में महत्व

§१२ बहुकारणवाद (Plurality of causes)

§१३. कारणों का संयोग और कार्यों का सम्मिश्रण (Conjunction of causes & Intermixture of Effects)

§१४. Mutuality of cause & effect.

§१५. अभ्यास

§१. *आगमन का आधार* (Ground of Induction)

आधार का अर्थ है उचित कारण। यह उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जायगा। अक्सर हम लोग कहते हैं कि वह भला आदमी है, ईश्वर उसका भला करेगा।

इस कथन के पीछे ईश्वर की न्यायशीलता में हमारा विश्वास छिपा हुआ है। यदि यह विश्वास न रहे तो उक्त कथन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। इसलिए 'ईश्वर की न्यायशीलता' में विश्वास हमारे उक्त कथन का आधार है। उसी प्रकार जब आगमन द्वारा कोई नियम स्थापित किया जाता है तो उसका कोई आधार होता है। अब हम उन्हीं आधारों की परीक्षा करेंगे।

हम जानते हैं कि आगमन द्वारा विशेष अनुभवों के आधार पर सामान्य नियम स्थापित किया जाता है। बचपन में एक दो बार आग में अंगुली पड़ जाने पर जलन का अनुभव होता है तो हमें ज्ञान होता है कि आग का गुण जलाना है। यहां देखते हैं कि अनुभव द्वारा हमने नियम स्थापित किया है कि 'आग में ताप है'। इस नियम में हम तीन बातें पाते हैं—

(क) इसका केवल आकार ही नहीं अपितु विषय (matter) भी सत्य है। वास्तव में हम पाते हैं कि आग में ताप है।

(ख) 'आग' और 'ताप' में अटूट सम्बन्ध है अर्थात् जहां आग होगी वहां ताप भी अवश्य ही होगा। यह सम्बन्ध क्षणिक नहीं है। यदि ऐसा होता तो नियम के रूप में हम नहीं कह सकते कि आग में ताप है।

(ग) अनुभव तो हमें अभी तक का हुआ है पर जब हम कहते हैं कि 'आग में ताप है' तो उसका अर्थ है कि भविष्य में भी आग का गुण ताप ही होगा। यह नियम केवल अभी तक के लिए ही नहीं अपितु भविष्य में भी सत्य होगा, ऐसा विश्वास है।

(१) अब पहला प्रश्न है कि अनुमान का विषय (matter) कहां से प्राप्त हुआ और हम कैसे जानते हैं कि यह सत्य है? इसका उत्तर होगा कि इस अनुमान का विषय निगमन-विधि के अनुमान के विषय के समान कल्पित नहीं है अपितु हमारे अनुभव पर आश्रित है। हमने दो तीन बार ऐसा अनुभव किया है कि आग में ताप है इसलिए इस सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'आग में ताप है'। दूसरे, इसकी वास्तविकता की परीक्षा भी हम निरीक्षण और प्रयोग द्वारा ही करते हैं। इसलिए देखते हैं कि इसकी वास्तविकता जांच करने के लिए हमें निरीक्षण (observation) और प्रयोग (experiment) की सहायता लेनी पड़ती है। उनके बिना कोई सामान्य नियम स्थापित किया ही नहीं जा सकता।

यदि ऐसा करें तो अनुमान कल्पित होगा और उसके विषय की सत्यता का कोई प्रमाण (proof) नहीं होगा। इसलिए निरीक्षण और प्रयोग (observation and experiment) को आगमन का विषय-सम्बन्धी-आधार (material ground) माना गया है।

(२) दूसरा प्रश्न है कि हम कैसे कहते हैं कि 'आग' और 'ताप' में अटूट सम्बन्ध है? यह तो हम तभी कह सकते हैं जब हम मान लें कि इस संसार में एक पदार्थ या घटना दूसरे पदार्थ या घटना से सम्बन्धित है और यह सम्बन्ध अटूट है। यदि ऐसा नहीं मानें अर्थात् यदि हम यह मानें कि इस संसार में एक पदार्थ या घटना का दूसरे पदार्थ या घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है या क्षणिक सम्बन्ध है तो कैसे कहा जा सकता है कि 'आग का धर्म ताप है' ? पर हमने कहा है कि जब कोई नियम स्थापित किया जाता है तो यह विश्वास रहता है कि दो पदार्थों में अटूट सम्बन्ध है। इसलिए हम यह मान ही लेते हैं कि इस संसार में प्रत्येक घटना का कोई कारण होता है और उस कारण तथा उस घटना में अटूट सम्बन्ध रहता है—जहां एक होगी वहां दूसरी भी होगी। कोई नियम स्थापित करने के पहले इसे मान कर ही हम आगे बढ़ते हैं। इस मन्तव्य (presupposition) को हम कार्य-कारण नियम (Law of Causation) कहते हैं। इसलिए हम देखते हैं कि कार्य-कारण नियम भी आगमन का आधार है। इस नियम का अनुमान के स्वरूप (form) से सम्बन्ध है, विषय से नहीं। जब तक इस सम्बन्ध का पता नहीं चलता आगमन सम्भव नहीं है। अतः इसे आगमन का स्वरूप या आकार-सम्बन्धी-आधार (formal ground) माना गया है।

(३) तीसरा प्रश्न यह है कि जब हमारा अनुभव केवल अभी तक का हुआ है तो कैसे कहते हैं कि भविष्य में भी यह नियम सत्य होगा? कल्ह क्या होगा हमने आज अनुभव नहीं किया है, न कर ही सकते हैं तो कैसे कहते हैं कि कल्ह भी आग का गुण ताप ही होगा? इसका उत्तर है कि हमें प्रकृति की एकता में विश्वास है अर्थात् यह विश्वास है कि यदि किसी वस्तु का आवश्यक गुण आज 'क' है तो हर समय और हर स्थान पर उसका वही गुण होगा। यदि ऐसा नहीं मानें अर्थात् यदि यह मानें कि आज पेड़ से फल नीचे गिरते हैं तो कल्ह ऊपर की ओर उड़ने लगेंगे तो ज्ञान असम्भव हो जायगा। उस दशा में कोई नियम

स्थापित नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रकृति की एकता में विश्वास कर
आगे बढ़ते हैं। इस मन्तव्य को प्रकृति-समरूपता नियम (Law of Uniformit
of Nature) कहा जाता है। अत: प्रकृति-समरूपता नियम भी आगमन
आधार है पर इस नियम का भी अनुमान के आकार (form) से सम्बन्ध
उसके विषय से नहीं, इसलिए इसे आगमन का आकार-सम्बन्धी-आधार (fo
mal ground) माना गया है।

सारांश यह हुआ कि जिन नियमों का आगमन द्वारा निरूपण होता
उनका विषय (matter) निरीक्षण और प्रयोग द्वारा मिलता है और उन
स्वरूप (form) प्रकृति-समरूपता नियम (law of the Uniformity
Nature) और कार्य-कारण नियम (law of Causation) पर आधारित रह
है : इसलिए निरीक्षण और प्रयोग (observation and experimen
आगमन के विषय-सम्बन्धी (material) आधार (ground) और प्रकृ
समरूपता नियम (law of the Uniformity of Nature) तथा का
कारण नियम (law of Causation) आगमन के आकार-सम्बन्धी आध
(formal grounds) हैं।

§२. *प्रकृति-समरूपता नियम* **(Law of the Uniformity of Nature)**

इस नियम की परिभाषा करना सम्भव नहीं है क्योंकि यह मूल सिद्धान्त
पर इसकी व्याख्या की जा सकती है। इस नियम की लोगों ने भिन्न प्रकार
व्याख्या की है। कोई इस नियम का अर्थ बतलाते हैं कि प्रकृति में एक सी घ
नाएं होती हैं-जैसा भूतकाल में होता आया है वैसा ही भविष्य में भी होग
प्रकृति सब स्थानों और सब कालों में एक सा व्यवहार करती है।

प्रकृति-समरूपता के इस अर्थ के विरुद्ध कुछ तार्किकों ने आपत्ति की
प्रकृति-समरूपता का यह अर्थ नहीं है कि भविष्य बिल्कुल भूत या वर्तमान
तरह होगा। यदि ऐसा होता तो कैसे हम हर रात नए स्वप्न देखते ? १९३४
१५ जनवरी को भूकम्प हुआ था पर १९३५ के १५ जनवरी को वैसी घटना न
घटी। कल्ह सबेरे आकाश में बादल छाया हुआ था पर आज वैसी बात नहीं
इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि प्रकृति में भिन्न भिन्न घटनाएं नहीं होत
प्रकृति में भिन्नता है। नित्य दिन नई नई घटनाएं होती रहती हैं। पर प्रकृति

यह अस्तव्यस्तता तथा उच्छृङ्खलता वास्तविक नहीं है। भूकम्प, आंधी, युद्ध और महामारी देखने में अव्यवस्थित घटनाएं प्रतीत होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका न कोई कारण है, न कोई नियम। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। ध्यानपूर्वक देखने से प्रकृति की अस्तव्यस्तता दूर हो जाती है। प्रत्येक घटना नियमबद्ध हैं और उन्हीं नियमों के अनुसार उनका व्यापार होता है।

वास्तव में प्रकृति की समरूपता का अर्थ है कि प्रकृति नियमों से बंधी हुई है। यहां पर घटनाएं किसी नियम के अनुसार होती हैं अर्थात् उनका कोई कारण होता है। यदि वह कारण उपस्थित रहे तो उसका परिणाम वही होगा जो सदा होता आया है। पानी बादलों के सघन होने से होता है। भविष्य में यदि बादल सघन हों तो फल पानी ही होगा, आग नहीं। आग का गुण है ताप तो भविष्य में भी जहां आग होगी वहां ताप ही होगा, ठंडक नहीं। प्रकृतिका व्यवहार ऐसा नहीं हो सकता कि यहां आग में ताप है तो दूसरे देश में उसमें ठंडक हो या आज आग में ताप है तो कल्ह उसमें ठडक हो। आज सबेरे बादल हो तो कल्ह भी सबेरे आकाश में बादल ही रहेगा यह प्रकृति की समरुपता का अर्थ नहीं। पर जब भी बादलों का सघनीकरण होगा तो वृष्टि होगी ही। इसमें प्रकृति अचल और अटल है। प्रकृति में संयोग और अस्तव्यस्तता का अभाव है। यदि किसी परिस्थिति में आज कुछ होता है तो उसी परिस्थिति में कभी भी वहां होगा। इस लिए प्रकृति की समरूपता का अर्थ हुआ कि समान परिस्थिति में किसी वस्तु का एक ही प्रकार का व्यवहार होता है। दूसरे शब्दों में प्रकृति नियमों से बद्ध है। नियम के विरुद्ध प्रकृति का व्यवहार नहीं हो सकता। ये नियम अटल हैं। इसलिए वास्तव में यह नियम सापेक्षिक है। इस नियम का यह अर्थ नहीं है कि समान घटनाएं प्रकृति में हुआ करती हैं अपितु इसका अर्थ यह है कि यदि समान परिस्थितियां रहें तब समान परिणाम होता है। समान घटना या फल होना समान परिस्थितियों पर निर्भर है। यदि परिस्थितियां एक नहीं रहीं, तब वह घटना कभी भी नहीं घटेगी।

इस सम्बन्ध में बेन ने कहा है कि प्रकृति में कोई खास एक नियम नहीं है जिससे की सभी वस्तुओं का संचालन होता है। नियम एक नहीं अनेक हैं (there is not an uniformity but uniformities)। संसार में भिन्न

प्रकार के वस्तु हैं। सबके अपने अपने नियम हैं। जिन नियमों से आकाश के तारे व्यवहार करते हैं उन्हीं के अनुसार मनुष्य या पेड़-पौधे का व्यवहार नहीं होता। भिन्न वर्गों के लिए भिन्न नियम हैं। इसलिए प्रकृति में समरुपता नहीं अनेकता है क्योंकि अनेक नियम हैं।

बेन की इस व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि संसार असम्बन्धित नियमों का ढ़ेर है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। संसार में एक वस्तु दूसरे से सम्बन्धित है इसलिए उनके नियमों में भी सम्बन्ध है। इस प्रकार नियम तो अनेक हैं पर उन नियमों में एकता है अर्थात् प्रकृति की अनेकता में भी एकता ही है। सारांश यह हुआ कि संसार नियमों से बद्ध है। भिन्न प्रकार के पदार्थों के भिन्न नियम हैं। एक नियम दूसरे से सम्बन्धित है। इस प्रकार प्रकृति में समरुपता है। मिल ने प्रकृति-समरुपता-नियम को आगमन का मूल साध्य-वाक्य (ultimate major premise) कहा है। आगमन में ज्ञात से अज्ञात तथा 'कुछ' से 'सब' का अनुमान किया जाता है। ज्ञात उदाहरणों के अनुसार ही समान अज्ञात पदार्थों का व्यवहार होगा या गुण होगा यह किस आधार पर माना जाता है? भविष्य का अनुभव नहीं किया जा सकता है अतः अनुभव द्वारा भी यह सिद्ध नहीं होता है। इस प्रकार का निष्कर्ष प्रकृति-समरुपता-नियम के आधार पर ही सम्भव है।

§३. *प्रकृति-समरुपता में विश्वास का सूत्र*

प्रकृति-समरुपता नियम का ज्ञान मनुष्य को कैसे होता है ?

(क) अनुभववाद (Empiricism)

इस सम्बन्ध में मिल का मत विचारनीय है। उसके अनुसार अनेक बार यह अनुभव करने पर कि समान कारण का समान परिणाम होता है मनुष्य अनुमान करता है कि सदा समान कारणों का समान परिणाम होता है अर्थात् प्रकृति में समरूपता है। हमने देखा है कि पानी से जैसे पहले प्यास बुझती थी आज भी बुझती है, आग में पहले भी ताप ही था और आज भी ताप ही है इस लिए अनुमान करते हैं कि जिन पदार्थों का आवश्यक गुण भूतकाल में जैसा रहता है वैसा ही भविष्य में भी रहता है। यही प्रकृति-समरुपता नियम है। इसलिए यह नियम अनुभव के आधार पर अनुमान किया जाता है। अनुभव

के आधार पर अनुमान को आगमन कहते हैं तो प्रकृति-समरुपता नियम का आगमन द्वारा ज्ञान होता है।

विचार करने पर मालूम होता है कि मिल के मत में दोष है। पहले प्रमाणित किया गया है कि प्रकृति-समरुपता नियम आगमन का आधार है अर्थात् इस को मान कर ही कोई अनुमान कर सकते हैं। यहां मिल ने बतलाया है कि प्रकृति-समरुपता नियम का आधार है साधारण अनुभव-जन्य-अनुमान। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधार अपने ऊपर ही अवलंबित है। यह युक्ति एक चक्र (circle) की भांति है। इसे आत्माश्रय (Self-contradictory or Paradox) दोष कहते हैं। इसे ही व्याप्ति-चक्र (Paradox of Induction) कहा जाता है।

दूसरी कठिनाई यह है कि वैज्ञानिक आगमन द्वारा हम निश्चित फल निकालते हैं और उसका आधार प्रकृति-समरुपता नियम है। प्रकृति-समरूपता का ज्ञान साधारण अनुभव के द्वारा होता है जिसमें कोई निश्चयात्मकता नहीं है अर्थात् प्रकृति-समरुपता नियम संशयात्मक है। पर हम अभी कह चुके हैं कि वैज्ञानिक आगमन द्वारा निश्चित फल मिलता है। तब प्रश्न है कि यह निश्चित कैसे हुआ? इसलिए मिल का यह मत माननीय नहीं है।

(ख) बुद्धिवाद (Rationalism)—इस मत के अनुसार प्रकृति-समरूपता नियम जन्मजात (Innate) है। वह अनुभव द्वारा प्राप्त नहीं होता; प्रकृति समरूपता एक सामान्य नियम है। इसकी सत्यता भूतकाल और वर्तमान काल तक सीमित नहीं है अपितु यह भविष्य के लिए भी सत्य है। पर मनुष्य का अनुभव वर्तमान तक ही सीमित है। भविष्य का अनुभव मनुष्य को नहीं हो सकता, अतः अनुभव के आधार पर हम यह कैसे कह सकते हैं कि यह नियम भविष्य में भी सत्य होगा। अनुभव के आधार पर इस नियम में निश्चयात्मकता नहीं आ सकती। पर यह नियम निश्चयात्मक है क्योंकि इसीके आधार पर सामान्य निश्चयात्मक नियम आश्रित रहते हैं। अतः यह अनुभव द्वारा नहीं प्राप्त होता अपितु अनुभव के पहले से ही हमारे मस्तिष्क में रहता है। इसका ज्ञान मनुष्य को अन्तर्दृष्टि (intuition) द्वारा होता है। इसलिए इसे जन्मजात (innate) कहा गया है। यह मत हैर्माल्टन, रीड, इत्यादि का है।

उपरोक्त मत रूढीवादी (dogmatic) प्रतीत होता है। बुद्धिवादियों का यह मत कि अनुभव द्वारा सामान्य नियम नहीं स्थापित किया जा सकता क्योंकि अनुभव वर्तमान तक ही सीमित रहता है, ठीक है : पर इसके लिये कि इसका ज्ञान अन्तर्दृष्टि (intuition) द्वारा होता है, कोई युक्ति नहीं दी है। कुछ आलोचकों ने कहा है कि यदि यह नियम जन्मजात (innate) है तब यह सभी मनुष्यों को (बच्चे, अपढ़, इत्यादि को भी) स्पष्ट रूप से विदित रहता, पर ऐसी बात नहीं है। पर यह आलोचना उचित नहीं है। यह नियम बच्चों में या अशिक्षित लोगों में अविकसित रूप में रहता है। उनका मानसिक विकास होने से यह स्पष्ट हो जाता है, जिस प्रकार वृक्ष बीज में अविकसित रूप में रहता है पर विकास होने पर वह स्पष्ट हो जाता है। विकास अनुभव द्वारा होता है। अतः केवल बुद्धि ही नहीं अपितु अनुभव का भी इस नियम के ज्ञान प्राप्त होने में हाथ है। बुद्धि और अनुभव दोनों ही के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त होता है। यही उचित मत प्रतीत होता है।

विकासवाद (Evolutionism)—स्पेन्सर इत्यादि विकासवादियों ने अनुभववाद और बुद्धिवाद का शमन किया है। न अनुभववाद उचित है और न बुद्धिवाद। दोनों एकतरफा हैं। वास्तव में यह नियम हममें जन्मजात (innate) है। यह हमें अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त हुआ है। पर पूर्वजों को सर्वप्रथम इसका ज्ञान अनुभव द्वारा प्राप्त हुआ था। फिर आनुवंशिक (heredity) नियम द्वारा यह हममें जन्म से ही वर्तमान है।

यह मत वास्तव में दोनों मतों का शमन नहीं करता अपितु अनुभववाद का ही समर्थन करता है। अनुभववाद की कठिनाई को यह सिर्फ हटा देता है, दूर नहीं करता। यदि हमारे पूर्वजों को अनुभव द्वारा ही यह नियम प्राप्त हुआ तो प्रश्न है कि कैसे उन्हें यह सम्भव हुआ ? इसलिए अनुभववाद की कठिनाइयाँ इस मत में भी वर्तमान हैं। यह मत मान्य नहीं है।

समरूपता के मूल भेद (Fundamental Kinds of Uniformities)

मिल ने बतलाया है कि प्रकृति में तीन प्रकार की समरूपता मिलती है—(१) आनुपूर्वी घटनाओं की समरूपता (Uniformity of Succession), (२) सहभावी घटनाओं की समरूपता (Uniformity of Co-existence) और (३) समान घटनाओं की समरूपता (Uniformity of Similarity)।

'पानी से प्यास बुझती है'। इस उक्ति में 'पानी' और 'प्यास बुझने' का सम्बन्ध आनुपूर्वी है। पानी पीने से प्यास अवश्य ही बुझेगी। जहां पहली घटना होगी दूसरी भी अवश्य ही घटेगी। इसमें प्राकृतिक समरूपता है और एक के बाद दूसरी घटना घटती है इसलिए दोनों में आनुपूर्वी सम्बन्ध है। इसेही आनुपूर्वी घटनाओं की समरूपता कहते हैं।

प्रकृति में कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जिन्हें सहभावी कहा जा सकता है। किसी धातु (metal) के साथ fusibility, opacity, इत्यादि सदा साथ रहते हैं। अतः यह सहभावी घटनाओं की समरूपता का उदाहरण हुआ।

किसी समान पदार्थ के बराबर जितनी चीजें हैं सभी आपस में समान हैं -यह है उदाहरण समान घटनाओं की समरूपता का। गणितविज्ञान इसी नियम पर आश्रित है।

बेन का मत उपरोक्त मत से मिलता है। उसने समान घटनाओं की समरूपता के स्थान पर सम और असम घटनाओं की समरूपता (Uniformity of equality & inequality) को तीसरी प्राकृतिक समरूपता बतलाया है।

रीड़ महोदय ने कहा है कि उपरोक्त तीन समरूपताओं के अतिरिक्त प्रकृति में और भी दूसरे प्रकार की समरूपताएं मिलती हैं।

(१) तद्विरुद्ध परिहार और मध्ययोग परिहार नियम (Law of Contradiction & Excluded Middle)

(२) परम्परानुमान के कुछ स्वयंसिद्ध सिद्धान्त, जैसे, Dictum de omni et nullo

(३) देश और काल की समरूपता (Uniformity of Time & Space)

(४) शक्ति-नित्यता नियम (Law of Conservation of Energy)

(५) कार्य-कारण नियम (Law of Causation)

(६) सहभावी घटनाओं की समरूपता (Uniformity of Co-existence)

फिर सहभाव भी अनेक प्रकार की हो सकती है—

(i) रेखागणित-सम्बन्धी सहभावीता (Geometrical Co-existence)—जैसे, यदि किसी चतुर्भुज की आमने-सामने वाली कोण बराबर हों तब आमने-सामने वाली भूजा बराबर और समानान्तर होगीं।

(ii) द्रव्य के गुणों में सामान्य सहभाव (Universal Co-existence of properties in Substance)-जैसे, किसी द्रव्य में गुरूत्वाकर्षण।

(iii) कारण द्वारा सहभाव (Co-existence due to Causation)-जैसे, यदि दो पदार्थ एक ही कोठरी में साथ रख दिये जायं तो वे सहभावी होगें।

(iv) किसी उपजाति में स्वभाव के कारण गुणों में सहभाव (Co-existence of properties in a species due to its nature)-जैसे, पशुतत्व और विवेक मनुष्य में, या मन और शरीर पशु में।

(v) विचित्र सहभाव-जैसे, दूध में धवलता।

§४. *कार्य-कारण नियम* **(Law of Causation)**

संसार परिवर्तनशील है। इसमें क्षण प्रति क्षण परिवर्तन होता रहता है। कल था सो आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं होगा। नई नई घटनाएं होती रहती हैं। अब प्रश्न है कि इन घटनाओं का कोई कारण होता है या वे विना कारण ही होती रहती हैं? कार्य-कारण नियम के अनुसार प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। जब जब कारण उपस्थित रहता है वह घटना भी उपस्थित रहती है। प्रत्येक परिवर्तन अपने पूर्व परिवर्तन से सम्बन्धित है। पूर्वघटनाओं के कारण ही भविष्य की घटनाएं होती हैं। अकारण कुछ नहीं होता। कभी कभी बोलचाल में हमलोग कह देते हैं कि इसका कोई कारण नहीं है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सम्भव है कि किसी घटना का कारण सहज में पता न लगे पर उसका कारण अवश्य होगा। यदि कारण कुछ न हो तो घटनाएं हुई कहां से? शून्य से किसी घटना का उदय नहीं हो सकता। सारांश यह हुआ कि प्रत्येक घटना का कोई कारण होता है।

§५. *कार्य-कारण नियम और प्रकृति-समरूपता नियम में सम्बन्ध*

दोनों नियम आगमन के आधार हैं। इसलिए दोनों में सम्बन्ध है। पर दोनों के सम्बन्ध के विषय में दो भिन्न मत हैं—

(क) कुछ तार्किकों (मिल, वेन, इत्यादि) का मत है कि कार्य-कारण नियम प्रकृति-समरूपता नियम का ही एक रूप है। यह कोई भिन्न नियम नहीं है। कार्य-कारण नियम के अनुसार प्रत्येक घटना का एक कारण होता है। प्रकृति-समरूपता नियम के अनसार संसार में सभी पदार्थ नियमों से बद्ध हैं। इनमें

समरूपता है। पर समरूपता तीन प्रकार की है। उसमें अनुपूर्वी घटनाओं की समरूपता भी एक है अर्थात् एक घटना का नित्य रूप से दूसरी घटना के पहले होना। यही है कार्य-कारण नियम। इसलिए हम देखते हैं कि दोनों ही करीब करीब एक ही बात का समर्थन करते हैं। इसीलिए कार्य कारण नियम को प्रकृति समरूपता नियम का एक रूप बतलाया गया है।

(ख) कुछ तार्किकों (सीगवर्ट, वेल्टन,इत्यादि) का मत है कि दोनो नियम एक दूसरे से भिन्न हैं। कार्य-कारण नियम से केवल यही पता चलता है कि प्रत्येक घटना का एक कारण होता है। इससे यह नहीं अर्थ निकाला जा सकता कि समान कारण का समान परिणाम होता है। या दूसरे से भी यह नहीं अर्थ लगाया जा सकता कि प्रत्येक घटना का एक ही कारण होता है। इसलिये दोनों नियम भिन्न हैं। यही मत ठीक प्रतीत होता है। दोनों नियमों के भिन्न होने का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि उनमें लगाव नहीं है। आगमन में कुछ उदाहरणों के निरिक्षण के उपरान्त व्यापक नियम (universal proposition) स्थापित किए जाते हैं। इन नियमों की सत्यता वर्तमान तक ही सीमित नहीं रहती अपितु भविष्य के लिए भी वे उतने ही सत्य होते हैं। वे भविष्य में भी सत्य होगें ऐसा प्रकृति-समरुपता नियम के आधार पर ही कहा जा सकता है। इस लिए आगमन में सामान्यीकरण (generalisation) का आधार प्रकृति-समरुपता नियम ही है। पर सामान्यीकरण को सिद्ध करने के लिए और उसमें निश्चयात्मकता लाने के लिए उसे कार्य-कारण सम्बन्ध पर आश्रित रहना आवश्यक है। यदि दो तीन मनुष्यों के पांव बड़ा देखें और यदि देखें कि वे गंवार हैं तो ऐसा सामान्यीकरण किया जा सकता है कि पांव बड़ा होता है गंवार का। पर यह सामान्यीकरण न शुद्ध है और न इसमें निश्चयात्मकता है क्योंकि यह कारण-संबंध पर आश्रित नहीं। पांव बड़ा होने में और गंवारपन में कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए यह दोषपूर्ण है। यदि यह कहा जाय कि मलेरिया सदा मच्छड़ों (अनोफोल्स) के काटने से होता है तो इसमें निश्चयात्मकता है क्योंकि यह कार्य-कारण सम्बन्ध पर आश्रित है। प्रयोग द्वारा यह पता चला है कि मच्छड़ (अनोफोल्स) के दशन से ही ज्वर होता है जिसे मलेरिया कहा जाता है। सारांश यह हुआ कि यदि प्रकृति-समरुपता नियम के आधार पर ही कुछ उदाहरणों को देखकर व्यापक वाक्य (universal

prop.) की रचना की जाय तब वह आगमन अवैज्ञानिक (unscientific Induction) होगा। वैज्ञानिक आगमन के लिए कार्य-कारण सम्बन्ध आवश्यक है। अत: दोनों नियम, आगमन में, एक दूसरे के सहायक हैं। एक के विना केवल दूसरे से काम नहीं चल सकता। अत: दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध है।

§६. *कारण का अर्थ* (Meaning of Cause)

दुनिया में, एक घटना के बाद दूसरी घटना और दूसरी के बाद तीसरी, इस प्रकार परिवर्तन होता चला आ रहा है। इस परिवर्तन में पहले आनेवाली घटनाओं पर पीछे आनेवाली घटनाएँ निर्भर रहती हैं क्योंकि विना किसी कारण के कोई घटना नहीं होती। पहले आने वाली घटनाओं को, जिसकी उपस्थिति (presence) में कोई घटना उपस्थिति हो और जिसके अभाव (absence) में वह घटना न हो, कारण कहते हैं। वह घटना जो दूसरी घटना पर निर्भर रहती है, उसको कार्य (effect) कहा जाता है। बादल और उनके सघन होने को पानी बरसने का कारण बतलाया जाता है क्योंकि पानी बरसना उन पर निर्भर है। अब प्रश्न है कि कारण का गुण और परिमाण (quality and quantity) क्या होता है अर्थात् उसके गुण-सम्बन्धी (qualitative और परिमाण-सम्बन्धी (quantitative) लक्षण (marks) क्या हैं ?

(क) *कारण का गुण वा गुण-सम्बन्धी लक्षण*
(Qualitative Marks of a Cause)

(१) किसी घटना को निरपेक्ष रुप से कारण नहीं कहा जा सकता है। एक ही घटना कारण भी हो सकती है और कार्य (effect) भी, जैसे, चोट। चोट दर्द का कारण है पर स्वयं गिरने का कार्य (effect) है। इसलिए कारण और कार्य सापेक्ष (relative) हैं। जब भी हम कहते हैं कि अमुक घटना कारण है तो अर्थ होता है कि वह कारण है किसी फल का या जब भी कहते हैं कि अमुक घटना कार्य है तो अर्थ होता है कि वह कार्य है किसी कारण का। एक के बिना दूसरे का कोई अर्थ नहीं है, जिस प्रकार 'पिता' का, विना 'पुत्र' के या 'पुत्र' का विना 'पिता' के कोई अर्थ नहीं होता।

(२) किसी घटना का कारण कोई घटना ही होता है। घटना उसे कहते

हैं जिसमें परिवर्तन हो रहा है। बहुधा हम लोग कहते हैं कि ईश्वर इस घटना का कारण है और ईश्वर को अचल समझते हैं। विज्ञान की दृष्टि से ऐसे कारण को कारण नहीं माना जाता भले ही धर्म की दृष्टि से ईश्वर या देवताओं को किसी घटना का कारण मान ले। कारण कोई घटना होती है।

(३) कारण एक घटना तो है पर बहुत सी घटनाएं साथ साथ होती हैं, बहुत सी किसी के पहले और बहुत सी किसी के बाद। अब प्रश्न है कि किसी घटना का कारण उसके पहलेवाली घटना होती है या बादवाली या साथवाली? कारण सदा कार्य की पहलेवाली घटना होती है अर्थात् कारण पूर्ववर्ती घटना (antecedent event) है। कारण कार्य के बाद हो या साथ हो उससे कार्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? उदाहरण लें। हमें चोट लगी तब दर्द हुआ तब हम चिल्लाने लगे। यहां दर्द का कारण चिल्लाना नहीं कहा जा सकता क्योंकि चिल्लाते तो हैं दर्द के कारण। दर्द परिणाम है चोट लगने का। यहां ध्यान रखना चाहिए कि कारण और कार्य में सदा इस प्रकार का आगा-पीछा नहीं रहता कि हम कह सकें कि यहां कारण समाप्त हुआ और वहां परिणाम आरम्भ हुआ। सारांश यह हुआ कि कारण पूर्ववर्ती घटना(antecedent event) है। *

(४) किसी घटना के पूर्व बहुत सी घटनाएं होती हैं। मैं इस समय लिख

*कुछ तार्किकों ने इस मत का विरोध किया है कि कारण कार्य का सदा पूर्ववर्ती होता है। किसी घटना को कारण तभी कहा जाता है जब कि उससे किसी कार्य की उत्पत्ति हो जाती है। जब तक कार्य नहीं हो तब तक किसी घटना को उसका कारण नहीं कहा जा सकता है। अतः कारण और कार्य सहवर्ती हैं। रीड ने इस मत की आलोचना की है। उसने बतलाया है कि किसी घटना को कारण कहने का अर्थ ही है कि वह कार्य के पहले हो और उसी से कार्य की उत्पत्ति हो। अतः कारण कार्य का पूर्ववर्ती है। मेलोन (Mellone) ने बतलाया है कि कारण को कार्य का पूर्ववर्ती कहने का यह अर्थ नहीं मानना चाहिए कि एक दूसरे से सर्वथा पृथक हैं। प्राकृतिक घटनाएं लगातार होती हैं। उनके बीच कोई खाई नहीं है। इसलिए कारण और कार्य यद्यपि भिन्न हैं पर इस प्रकार का अन्तर नहीं है कि कहा जा सके कि कारण यहां समाप्त हुआ और कार्य यहां आरम्भ हुआ।

रहा हूँ। हमारा लिखना एक घटना है। इसके पहले बहुत सी घटनाएं हुई हैं, जैसे, हमारा सोचना, नौकर का आना, सड़क पर गाड़ी चलना, एक कौए का उड़ कर चले जाना, हमारे बच्चे का रोना, इत्यादि। क्या सभी पूर्ववर्ती घटनाएं हमारे लिखने के कारण हैं? सभी पूर्ववर्ती घटनाओं का हमारे लिखने से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए सभी कारण नहीं कही जा सकतीं। पूर्ववर्ती घटनाएं दो प्रकार की होती हैं, नियत (invariable) और अनियत (variable)। नियत पूर्ववर्ती घटना वह है जो जब भी कोई घटना (event) हो तो वह हमेशा उसके पहले हो, जैसे, वृष्टि के पूर्व बादलों का जमा होना। जब भी वृष्टि होती है तब आकाश में बादल अवश्य रहते हैं। अनियत पूर्ववर्ती घटनाएं ऐसी नहीं। उनका किसी घटना के सदा पहले होना आवश्यक नहीं है। वृष्टि के पहले यदि कोई कोठे से गिर पड़े तो उस मनुष्य का कोठे से गिरना पूर्ववर्ती घटना तो अवश्य कही जायगी पर वह घटना अनियत होगी क्योंकि हर बार जब वृष्टि होती है तो उसके पहले वह कोठे से नहीं गिरता। उसका कोठे से गिरना तो एक आकस्मिक घटना है। उस घटना का वृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए आकस्मिक अर्थात् अनियत (variable) पूर्ववर्ती घटना कारण नहीं होता। कारण नियत पूर्ववर्ती घटना (invariable antecedent event) है। यदि किसी पूर्ववर्ती को किसी घटना का कारण मान लिया जाता है तब उस अनुमान में दोष हो जाता है। इस दोष को यदनन्तर तत्कारणकं (Post hoc ergo poropter hoc) कहा जाता है। Post hoc ergo propter hoc का अर्थ है 'इसके बाद इसीलिए इसी के कारण'। चूँकि कोई घटना अमुक घटना के बाद होती है इसीलिए उसे उसका कारण मान लिया जाता है। ऐसा करना भूल है क्योंकि नियत पूर्ववर्ती घटना कारण है न कि कोई पूर्ववर्ती। इसी दोष के कारण अन्धविश्वास होता है। यदि किसी काम में जाने के समय तेल मिल जाता है और उस काम में सफलता नहीं मिलती है तो तेल देखना ही काम बिगड़ने का कारण बतलाया जाता है। पर वह तो अनियत पूर्ववर्ती है। कभी-कभी कहीं काम में जाते समय तेल देख लेने पर भी उसमें सफलता मिलती है।

(५) यदि पूर्ववर्तिता और नियतता अर्थात् कार्य के पहले होना और हमेशा होना ही कारण का लक्षण हो तो दिन को रात का और रात को दिन का कारण

कह सकते हैं। हर रात के पहले दिन होता है और हर दिन के पहले रात होती है। उसी प्रकार बिजली चमकने को बादल गरजने का कारण कह सकते हैं। किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। न दिन रात का कारण है, न रात दिन का और न बिजली चमकना बादल गरजने का क्योंकि ये एक दूसरे पर निर्भर नहीं हैं। दिन और रात दोनों ही एक ही कारण के सहपरिणाम (Co-effects) हैं. सूर्य और पृथ्वी की गति के। बिजली का चमकना और बादल का गरजना दोनों ही बादलों के सघन होने के कारण होने हैं। इसलिए कारण का लक्षण केवल नियतता और पूर्ववर्तिता नहीं अपितु किसी उपाधि (Condition) से स्वतंत्र रहना भी है अर्थात् स्वतंत्रता या उपाधि रहित होना भी कारण का लक्षण है। कारण को किसी शर्त की आवश्यकता नहीं रहती न उसे किसी स्थिति पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि सूर्य न हो तो दिन का प्रश्न ही नहीं उठता, इसलिए 'दिन' को 'सूर्य' पर निर्भर रहना पड़ता है न कि 'रात' पर। यदि कारण को कार्योत्पत्ति के लिए किसी स्थिति पर निर्भर रहना पड़े तो वह स्थिति भी कारण ही का एक अंग है और सब को मिला कर कारण कहा जाता है। यदि कारण के रहते कार्य न हो तो इसका अर्थ हुआ कि उसमें कुछ कमी है और उसे कारण नहीं कह सकते। इसलिए कारण का लक्षण अनौपाधिक होना (unconditionality) भी है। कारण कार्य के अनौपाधिक और नियत पूर्ववर्ती घटना को कहते हैं।

(६) कारण स्वतंत्र होता है। उसे कार्योत्पत्ति के लिए किसी स्थिति पर निर्भर नहीं रहना पड़ता इसलिए जब कारण उपस्थित होता है तब उसका कार्य भी शीघ्र ही उपस्थित हो जाता है। यदि कारण को किसी पर निर्भर रहना पड़े तो कार्य में देरी हो सकती है इसलिए उसे कारण कहा ही नहीं जा सकता। कारण कार्य से अनन्तर (immediate) रहता है। बहुत सी ऐसी घटनाएँ हैं जिनका किसी घटना से सम्बन्ध है पर वह दूरवर्ती (remote) है। ऐसी घटनाएँ स्वतंत्र रूप से उस कार्य की उत्पत्ति नहीं करतीं इसलिए उन्हें कारण नहीं माना जा सकता।

सारांश यह हुआ कि किसी कार्य (effect) का कारण (cause) उसकी अनौपाधिक (unconditional), तत्कालिक (immediate), नियत (invariable) पूर्ववर्ती (antecedent) घटना है।

(ख) कारण का परिमाण (Quantity) वा परिमाण-सम्बन्धी लक्षण (Quantitative Marks)

परिमाण की दृष्टि से कारण और कार्य बराबर होते हैं अर्थात् दोनों की शक्ति (energy) और द्रव्य (matter) की मात्रा बराबर होती है। मान लिया जाय कि कारण में द्रव्य की मात्रा दो सेर है तो उसके कार्य में भी उतनी ही होगी। कारण ही कार्य में परिणत (changed) हो जाता है। इस प्रकार कारण की शक्ति (energy) और द्रव्य (matter) कार्य को प्राप्त हो जाते हैं। मिट्टी के लोंदे से हम घड़ा बनाते हैं। मिट्टी का लोंदा घड़े का कारण है। दोनों का द्रव्य बराबर होता है केवल रूप (form) का अन्तर होता है।

कारण और कार्य की पारिमाणिक समता का आधार है द्रव्य-शक्ति-नित्यता नियम (Law of the Conservation of Matter and Energy)। इस नियम के अनुसार संसार में कुल द्रव्य और शक्ति जितनी हैं उनकी मात्रा में कभी भी कमी या आधिक्य नहीं होता।

द्रव्य-नित्यता नियम (Law of the Conservation of Matter) के अनुसार संसार में जितना द्रव्य है उसके परिमाण में कभी कमी और आधिक्य नहीं होता केवल द्रव्य के रूप में अन्तर होता है। जब Oxygen (प्राणवायु) का कुछ परिमाण Hydrogen (जलवायु) के कुछ परिमाण के साथ मिलाया जाता है तो परिणाम होता है जल, एक तरल पदार्थ। उनके रूप में अन्तर हो जाता है पर उनका परिमाण एक रहता है।

इसी प्रकार शक्ति-नित्यता-नियम (Law of the Conservation of Energy) के अनुसार संसार में जितनी शक्ति है उसके परिमाण में न कमी होती है न आधिक्य। शक्ति का केवल रूप बदलता है पर वे नष्ट नहीं होतीं। जब गेंद खेलते खेलते हम थक जाते हैं तो प्रतीत होता है कि हमारी शक्ति समाप्त हो गई पर वास्तव में वह समाप्त नहीं होती दूसरे रूप में उसका परिवर्तन हो जाता है—ताप (heat) में। शक्तियां भिन्न प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की शक्ति का रुपान्तर दूसरे तरह की शक्ति में होता है पर किसी का नाश नहीं

होता। * अतः इस दृष्टि से भी कार्य और कारण परिमाण में बराबर होते हैं।

इसी नियम से यह सिद्ध किया गया है कि कारण और कार्य परिमाण की दृष्टि से बराबर होते हैं। यदि उन्हें बराबर न मानें तो तीन सम्भावनाएँ हैं:—

(१) कारण के द्रव्य और शक्ति की मात्रा कार्य के द्रव्य और शक्ति की मात्रा से अधिक होती है।

(२) कारण के द्रव्य और शक्ति की मात्रा कार्य के द्रव्य और शक्ति की मात्रा से कम होती है।

(३) कारण के द्रव्य और शक्ति की मात्रा कार्य के द्रव्य और शक्ति की मात्रा से कभी कम और कभी अधिक होती है।

इसमें तीसरी सम्भावना तो निराधार है क्योंकि प्रकृति में समरुपता है इसलिए यह सम्भव नहीं कि कारण कभी कम और कभी अधिक हो।

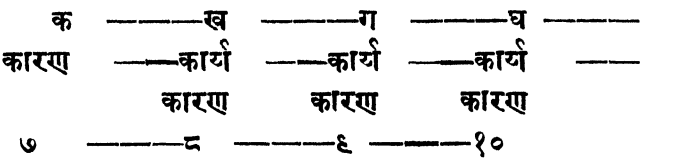
पहली सम्भावना के मानने से यह सिद्ध होता है कि संसार में द्रव्य और शक्ति की मात्रा कम हो रही है क्योंकि दुनिया में परिवर्तन होता जा रहा है- एक घटना से दूसरी घटना और फिर तीसरी, अर्थात् कारण से कार्य और फिर उससे कोई दूसरा कार्य। यदि कारण कार्य से अधिक हो तो अभी की द्रव्य और शक्ति की मात्रा एक मिनट पहले की द्रव्य और शक्ति की मात्रा से कम हो जायगी।

क	ख	ग	घ
——कारण	——कार्य कारण	——कार्य कारण	——कार्य ——
———१०	———९	———८	———७ ———

* शक्ति दो प्रकार की होती है—Kinetic और Potential। गतिशील द्रव्य की शक्ति को Kinetic energy कहा जाता है। एक गेंद जब इधर से उधर उछलता रहता है उस समय उसमें Kinetic energy रहती है। गतिहीन द्रव्य में जो शक्ति रहती है वह Potential energy हुई। यदि वही गेंद कहीं पर रखा रहे और उसमें कोई गति नहीं हो तो उसकी शक्ति को Potential energy कहा जायगा। नाचते हुए लट्टू में Kinetic energy है और जब वह जमीन पर पड़ा रहता है तब उसमें Potential energy। कारण से कार्य होने का अर्थ होता है energy का Kinetic से Potential रूप में या Potential से Kinetic रूप में परिवर्तन। शक्ति का नाश नहीं होता है।

यदि अभी की कुल द्रव्य और शक्ति को १० से संकेत करें तो दूसरे क्षण को ९ से संकेत करेंगे। इस प्रकार ९ तब ८ और ७, इत्यादि। द्रव्य और शक्ति की मात्रा कम ही होती जायगी। पर द्रव्य-शक्ति-नित्यता नियम के अनुसार इसमें दोष हो जायगा। इसलिए इस सम्भावना को भी माना नहीं जा सकता।

दूसरी सम्भावना में ठीक उल्टा दोष होता है। इसके अनुसार द्रव्य और शक्ति की मात्रा पहले से अधिक होती जायगी क्योंकि कार्य के द्रव्य और शक्ति की मात्रा कारण से अधिक हो जाती है।



पर ऐसा सम्भव नहीं है। इसलिए इस सम्भावना को भी नहीं माना जा सकता।

अत: कारण के द्रव्य और शक्ति की मात्रा कार्य के द्रव्य और शक्ति की मात्रा के बराबर होती है। सारांश में, परिमाण की दृष्टि से कारण-कार्य बराबर होते हैं।

§७. *उपाधि* (Condition) *और कारण*

इस संसार में किसी भी घटना का होना बहुत सी बातों पर निर्भर रहता है। हम कालेज जाने को सोचते हैं पर पानी बरसने और एक मित्र के आ जाने से रुक जाते हैं। हमारा कालेज नहीं जाना केवल पानी बरसने पर ही निर्भर नहीं बल्कि मित्र के आने और कई-एक बातों पर निर्भर है, जैसे, उस दिन का काम नहीं किए रहना, पढ़ने लिखने की ओर उदासीनता, चरित्रबल का अभाव, माता पिता का लाड प्यार, इत्यादि। उक्त घटना का होना सभी बातों के रहने पर ही सम्भव है। यदि कोई एक ही बात होती तो हमारा कालेज जाना नहीं रुकता। इसलिए सभी बातों के समूह को कारण कहते हैं और किसी एक को उपाधि (condition)। उपाधि उसे कहते हैं जो कार्य की उत्पति में सहायक हो पर जिसमें अकेले कार्योत्पति की शक्ति न हो। पानी बरसना, कालेज नहीं जाने का एक शर्त है; मित्र का आना या उस दिन का काम नहीं किए रहना, इत्यादि अलग-अलग उस घटना के शर्त हैं। कारण उन सभी

उपाधियों का योग है। उपाधि कारण का एक अंग है। जिस प्रकार फ्रेम चक्का, हैंडल, इत्यादि साईकिल के अंग हैं और इन्हीं के योग को साईकिल कहते हैं, उसी प्रकार शर्त कारण का एक अंग है और सभी शर्तों के योग को कारण कहा जाता है। इसलिए कारण शर्तों से भिन्न नहीं है। किसी एक शर्त को कारण नहीं कहा जा सकता जिस प्रकार साईकिल के एक हिस्से को, जैसे फ्रेम या चक्का को, साईकिल नहीं कह सकते। एक अंग सम्पूर्ण के बराबर नहीं हो सकता।

उपाधि दो प्रकार की होती है, भावात्मक (positive) और अभावात्मक (negative)। भावात्मक उपाधि उसे कहते हैं जिसकी उपस्थिति से कार्य की उत्पत्ति में सहायता होती है। यदि वह अनुपस्थित रहे तो कार्य का होना सम्भव नहीं हो, जैसे, ऊपर के उदाहरण में पानी बरसना या मित्र का आना। यदि पानी नहीं बरसता या मेरे मित्र नहीं आते तो हमारा कालेज जाना नहीं रुकता। अभावात्मक उपाधि उसे कहते हैं जिसकी अनुपस्थिति से कार्य की उत्पत्ति में सहायता होती है। यदि वह उपस्थित रहे तो कार्य का होना सम्भव नहीं हो, जैसे, ऊपर के उदाहरण में चरित्रबल का अभाव, पढ़ने लिखने की ओर ध्यान का अभाव, इत्यादि। यदि पढ़ने लिखने की ओर ध्यान रहता या चरित्रबल रहता तो कालेज का जाना नहीं रुकता। इसलिए कार्योत्पति के लिए भावात्मक और अभावात्मक दोनों प्रकार के शर्तों का रहना आवश्यक है। सभी भावात्मक और अभावात्मक उपाधियों के समष्टि को कारण कहते हैं (Cause is the sum-total of all conditions positive and negative)।

§८. *उत्तेजक* (**Moving Power**) *और अन्योन्यस्थिति* (**Collocation**)

शक्ति-नित्यता के अनुसार कारण के दो अंग (parts) होते हैं, उत्तेजक और अन्योन्यस्थिति। एक उदाहरण लें; १९४७ में एक हिन्दू के लड़के ने एक मुसलमान के लड़के को मारा। फलस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। दंगे का कारण है गाली और दोनों दलों में पहले से कटुता का भाव। यदि यही गाली देना १९०९ में होता तो दंगा नहीं होता क्योंकि परिस्थिति अर्थात् यह भाव उस समय नहीं था। इसलिए केवल गाली देना कारण नहीं है अपितु आज की परिस्थिति भी दंगे के लिए जिम्मेवार है। इस प्रकार देखते हैं कि

कारण के दो अंग हुए, एक गाली देना दूसरा आज की परिस्थिति अर्थात् दोनों दलों में शत्रुता का भाव। पहले को उत्तेजक कहते हैं और दूसरे को अन्योन्य-स्थिति। उत्तेजक उस शक्ति को कहते हैं जिससे कार्य उत्तेजित होता है और अन्योन्यस्थिति उस परिस्थिति को जिससे वह शक्ति उत्तेजक हो जाती है। गाली देना, उत्तेजक इसलिए है कि उसी से दंगा हुआ। कटुभाव, अन्योन्य-स्थिति है इसलिए कि उसी परिस्थिति में गाली देना उत्तेजक हुआ। यदि कटुभाव न रहता तो गाली देना बच्चों का खेल माना जाता। किसी कार्य की उत्पत्ति के लिए दोनों आवश्यक हैं। कभी कभी हमलोग केवल उत्तेजक को कारण मान लेते हैं। बच्चा दौड़ते-दौड़ते जब गढ़े में पैर पड़ने से गिर जाता है तो उसके माता-पिता बच्चे को दौड़ने के लिए दण्ड देते हैं। वास्तव में बच्चे के गिरने का कारण केवल उसका दौड़ना ही नहीं है बल्कि उस गढे की उपस्थिति भी है। इसलिए उत्तेजक और अन्योन्यस्थिति दोनों मिलकर किसी घटना के कारण होते हैं।

§९. *पर्वत्तक* (**Agent**) *और परिवर्तित* (**Patient**)

ऊपर की तरह ये दोनों भी कारण ही के भेद हैं। कार्य करनेवाले को पवर्त्तक कहते हैं और जिस पर कार्य होता है उसे परिवर्तित कहते हैं। आपने किसी को पीठ पर मारा और मारने के कारण खून बहने लगा तो आप पर्वत्तक हुए और जिस स्थान पर आपने मारा है वह परिवर्तित। कुछ लोगों ने पर्वत्तक को क्रियाशील और परिवर्तित को निष्क्रिय बतलाया है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। जिसमें परिवर्तन या गति होती है यदि वह परिवर्तन के लिए तैयार न रहे तो परिवर्तन उसमें नहीं होगा। इसलिए उसे बिल्कुल निष्क्रिय मानना ठीक नहीं है।

§१०. *कारण के विषय में भिन्न मत* (**Different views of Causation**)

(क) साधारण मत (Popular View).

कारण का जो अर्थ एक वैज्ञानिक बतलाता है वह किसी साधारण मनुष्य के विचार से भिन्न है। साधारणतः वृष्टि का कारण बतलाया जाता है बादल, नौका डूबने का आंधी और परीक्षा में असफल होने का कड़ा प्रश्नपत्र। वास्तव में केवल बादल, केवल आंधी या केवल कड़ा प्रश्नपत्र से ही दिए हुए कार्यों की उत्पत्ति नहीं होती। आकाश में बादल रहते हैं पर कभी कभी वृष्टि नहीं होती

है; आंधी आती है पर सभी नौकाएं नहीं डूबतीं; कड़ा प्रश्नपत्र रहने पर भी बहुत से विद्यार्थी पास करते ही हैं। यदि ये कारण होते तो कार्यों की उत्पत्ति अवश्य करते, पर इनकी उपस्थिति में भी आवश्यक नहीं है कि कार्य हो ही। ये कार्य की स्थितियां या उपाधियां हैं। इसलिए साधारणत: किसी एक महत्वपूर्ण उपाधि (स्थिति) को ही हम कारण समझने लगते हैं। यही साधारण या व्यावहारिक मत है। किन्तु हमने अभी बतलाया है कि यह मत ठीक नहीं है। सभी उपाधियों के योग को कारण कहना चाहिए। इससे अनभिज्ञ रहने से ही मनुष्य असफल होता है और अन्धविश्वासों का शिकार बनता है।

(ख) वैज्ञानिक मत (Scientific View)

(१) वैज्ञानिक दृष्टि से भावात्मक और अभावात्मक उपाधियों के योग को कारण कहते हैं, या किसी कार्य के अनौपाधिक, नियत और तत्कालिक पूर्ववर्ती घटना को उसका कारण कहा जाता है।

(२) द्रव्य-शक्ति-नित्यता नियम की दृष्टि से कारण कार्य के बराबर होता है। दोनों मतों को ऊपर समझा दिया गया है।

(३) अरस्तु के अनुसार कारण के चार अंग है Material cause, Formal cause, Efficient cause और Final cause। एक उदाहरण लें, एक कुम्हार मिट्टी का घड़ा बनाता है तब उस घड़े का चार कारण हुआ। घड़ा मिट्टी से बनाया गया है। मिट्टी हुआ घड़े का Material cause। किसी पदार्थ का Material cause उस द्रव्य को कहा जाता है जिस द्रव्य से उस पदार्थ की रचना होती है। जिस आकार में मिट्टी बनाई गई वह हुआ घड़े का Formal cause। किसी पदार्थ के आकार को उसका Formal cause कहा जाता है। कुम्हार ने किसी औजार से ही मिट्टी के घड़े का निर्माण किया। उस औजार और उसकी कारीगरी को घड़े का Efficient cause कहा जायगा। किसी पदार्थ के निर्माण में जिस कारीगरी की आवश्यकता होती है वही उसका Efficient cause होता है। घड़ा बनाने का कोई लक्ष्य अवश्य होता है। वही लक्ष्य उस घड़े का Final cause कहलाता है। जिसलक्ष्य से किसी पदार्थ का निर्माण हो वही उसका Final cause है।

इन चारों में Material और Formal causes आन्तरिक कारण हैं क्योंकि वे उस पदार्थ में ही वर्तमान हैं। पर Efficient और Final causes बाह्य कारण हैं क्योंकि वे उस पदार्थ के बाहर हैं।

§११. *कार्य-कारण सम्बन्ध का विज्ञान में महत्व*

कारण के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्व और मूल्य विज्ञान के क्षेत्र में बहुत अधिक है, विशेष रूप से रसायनशास्त्र (Chemistry) और भौतिकशास्त्र (Physics) में। इन दोनों विज्ञानों का विषय है शक्ति (energy) और जड़द्रव्य (matter), अतः यहाँ यह निश्चित करने में कि किस जड़द्रव्य से किसकी उत्पत्ति होती है और कौन सी शक्ति का परिवर्त्तन किस शक्ति में सम्भव है, पता लगाना लाभदायक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त किसी शक्ति के उत्पादन में कौन-कौन सी शक्तियाँ काम करती हैं और कौन-कौन सी विरोधात्मक हैं यह भी निश्चित किया जा सकता है। इनके आधार पर ही विज्ञान में आविष्कार होते हैं। पर समाजविज्ञान या शरीरविज्ञान या ऐसे अन्य विज्ञानों में, जहां अनेक शक्तियां काम करती हैं या जहां परिमाण (quantity) का प्रश्न नहीं उठता, कारण का निश्चित करना कठिन होता है। वहाँ अन्य रीतियों से काम लिया जाता है।

व्यावहारिक क्षेत्र में कारणवाद का प्रयोग कठिन है। यह सम्भव नहीं है कि किसी घटना के कारण को ढूँढ़ने में सभी भावात्मक और अभावात्मक उपाधियों की ओर साधारण मनुष्य ध्यान दे। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वैज्ञानिक मत शुद्ध नहीं है। यदि उसका प्रयोग नित्य दिन के जीवन में किया जाय तो हमारी बुद्धि भी शिक्षित होगी और हम अन्धविश्वासों के शिकार नहीं बनेंगे।

§१२. *बहुकारणवाद* **(Plurality of Causes)**

वैज्ञानिक दृष्टि से किसी घटना का एक ही कारण होता है पर यदि साधारण दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होता है कि एक ही घटना कई-एक कारणों से होती है। यदि किसी घटना का कारण इस समय 'क' हो तो दूसरे समय उसी घटना का कारण 'ख' हो सकता है। प्लेग, चोट, गोली, पानी में डूबने, इत्यादि कई कारणों से मृत्यु हो सकती है। कमजोरी, घाव, ठेस या अधिक चलने से पैर में दर्द हो सकता है। बत्ती, बिजली या सूर्य सभी से रोशनी हो सकती है।

इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि कार्य (effect) एक ही रहता है पर उसका कारण भिन्न समयों में भिन्न होता है। इसे ही बहुकारणवाद कहा गया है। मिल ने इस विचार का समर्थन किया है। दूसरे शब्दों में, बहुकारणवाद का अर्थ यह हुआ कि एक ही कार्य के भिन्न समयों में भिन्न कारण हो सकते हैं। यहां ध्यान रखना चाहिए कि कई कारण मिलकर कार्योत्पादन नहीं करते बल्कि अलग अलग भिन्न समयों में। इस मत के अनुसार किसी कार्य का कोई एक ही निश्चित कारण नहीं होता।

साधारण दृष्टि से यह मत ठीक जान पड़ता है क्योंकि हम लोग इसी प्रकार का अनुभव करते हैं किन्तु विचार करने पर यह भ्रमयुक्त सिद्ध होता है। हम-लोग कारण में तो भेद करते हैं पर कार्य में भेद नहीं करते। यह ठीक है कि ऊपर के बताए हुए कारणों का फल मृत्यु है या रोशनी है या दर्द है, किन्तु सब मृत्यु, सब रोशनी या सब दर्द एक से नहीं होते। हम जानते हैं कि मरने के बाद कभी-कभी डाक्टर चीर-फाड़ कर देखते हैं कि मरने का क्या कारण है। यदि सब मृत्यु एक ही प्रकार की होती तो डाक्टर कैसे पता चलाते कि कोई मनुष्य जहर खाकर मरा या पानी में डूब कर मरा। इसी प्रकार देखने में तो प्रतीत होता है कि कार्य एक है, 'रोशनी', पर सब रोशनी एक प्रकार की नहीं होती। बत्ती की रोशनी, बिजली की रोशनी और सूर्य की रोशनी में वास्तव में भेद है। यह हमारी अज्ञानता है कि हम कार्यों में भेद नहीं करते हैं। यदि ऐसा करें तो देखेंगे कि किसी कार्य का एक ही कारण होता है।

प्लेग से —प्लेग-मृत्यु

जहर से—जहर-मृत्यु, इत्यादि।

इस मत को मानने में एक और कठिनाई है। यदि बहुकारणवाद को ठीक मान लें तो किसी कार्य का किसी समय ठीक-ठीक कारण पता नहीं चल सकता। यदि किसी कार्य के कई कारण हों तो किसी समय कौन से कारण से कार्य की उत्पत्ति हुई नहीं जाना जा सकता है। इसलिए कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित करने की सब रीतियां बेकार हो जाती हैं।

उपाय (remedy) :–हमने देख लिया है कि क्यों ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही कार्य के कई-एक कारण होते हैं। कारणों में तो भेद हम करते हैं पर कार्यों

में भेद नहीं करते। हर प्रकार की मृत्यु को केवल मृत्यु और हर प्रकार की रोशनी को केवल रोशनी कह दिया जाता है। इस दोष से बचने के उपाय हैं—

(क) यदि कारणों में भेद करते हों तो कार्यों में भी वैसा ही करें अर्थात् कहें कि प्लेग के कारण प्लेग-मृत्यु होती है, जहर के कारण जहर-मृत्यु, इत्यादि। इसे कार्यों का विशेषीकरण (particularisation) कहा जाता है।

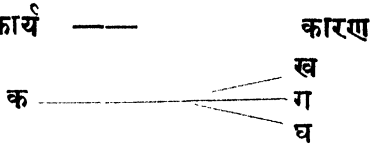
(ख) यदि कार्यों में भेद नहीं करते हों तो कारणों में भी भेद न करें अर्थात् सभी कारणों में एक सामान्य बात (common factor) निकाल लें और उसी को उस कार्य का कारण बताएँ। उदाहरणार्थ, मृत्यु का कारण कह सकते हैं दिल की धड़कन रुकना। किसी रोग द्वारा मृत्यु होने में दिल की धड़कन अवश्य रुक जाती है, अतः उसी को मृत्यु का कारण बताएं। इसे कारण का सामान्यीकरण (generalisation) कहते हैं।

§१३. *कारणों का संयोग और कार्यों का सम्मिश्रण* **(Conjunction of Causes & Intermixture of Effects)**

दुनिया बड़ी जटिल है। यहां जटिल (complex) घटनाएं होती रहती हैं, जो एक नहीं अनेक कारणों के योग से होती हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं जहां अनेकों कारण मिल कर कोई संयुक्त कार्य (कई एक कार्यों का योग) उत्पादित करते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक कोठरी में एक मोमबत्ती, लाल्टेन और पेट्रोमैक्स जला कर रख दिया जाय तो रोशनी होगी; किन्तु वह रोशनी वैसी नहीं होगी जैसी केवल मोमबत्ती या लाल्टेन या पेट्रोमैक्स से होती है। यहां तीनों कारणों (मोमबत्ती, लाल्टेन और पेट्रोमैक्स) के संयोग से एक संयुक्त कार्य (effect) हुआ है। यह संयुक्त कार्य अलग-अलग सब कार्यों का संमिश्रण (Intermixture) है अर्थात् मोमबत्ती की रोशनी, लाल्टेन और पेट्रोमैक्स की रोशनी का। इस संयुक्त कार्य (joint effect) को कार्यों का संमिश्रण (Intermixture of Effects) कहते हैं। मोमबत्ती, लाल्टेन और पेट्रोमैक्स स्वतंत्र कारण हैं क्योंकि स्वतंत्र रूप से अलग-अलग भी कार्योत्पादन की शक्ति उनमें है पर यहां तीनों मिल कर कार्य-उत्पादन करते हैं। इस प्रकार बहुत से कारणों के मिल कर कार्योत्पादन को कारणों का संयोग (Conjunction of causes) कहते हैं। यहां कारणों के योग और बहुकारणवाद में भेद

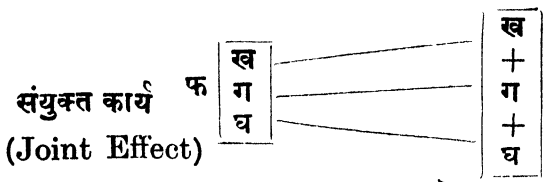
समझ लेना चाहिए। बहुकारणवाद के अनुसार एक ही कार्य के भिन्न समय में भिन्न कारण हो सकते हैं पर कारणों के संयोग में बहुत से कारण एक साथ मिल कर एक संयुक्त कार्य उत्पादित करते हैं।

बहुकारणवाद—



ख, ग और घ अलग अलग क की उत्पत्ति करते हैं

कारणों का संयोग



ख, ग और घ एक साथ फ की उत्पत्ति करते हैं

कार्यों का सम्मिश्रण दो प्रकार का होता है:—

(क) कार्यों का समजातीय संमिश्रण (Homogenous Intermixture of Effects)।

(ख) कार्यों का विजातीय संमिश्रण (Heterogenous Intermixture of Effects)।

(क) कार्यों का समजातीय संमिश्रण—

जब कार्यों का इस प्रकार का संमिश्रण हो कि संयुक्त कार्य (Joint effect) पृथक कार्यों के सामन हो तब उसे कार्यों का समजातीय संमिश्रण कहते हैं। मान लें कि दस बत्तियों से रोशनी होती हो तो संयुक्त कार्य रोशनी हुआ। यह संयुक्त कार्य पृथक कार्यों (रोशनी) के समान है। दोनों के गुण एक हैं। एक से भी रोशनी ही होती, दस से भी रोशनी ही होती है। फर्क दोनों में केवल परिमाण का होता है अर्थात् कम और अधिक का। इसे ही कार्यों का समजातीय संमिश्रन कहते हैं। ऐसे उदाहरण यंत्रविज्ञान (Mechanics) या पदार्थविज्ञान (Physics) में अधिक मिलते हैं। इसलिए इसे यान्त्रिक या शारीरिक (Physical)संमिश्रण भी कहा जाता है।

(ख) कार्यों का विजातीय संमिश्रण—

जब संयुक्त कार्य (Joint effect) पृथक कार्यों से भिन्न या विपरीत हो तब उस संमिश्रण को कार्यों का विजातीय संमिश्रन कहते हैं। इसमें कारण और कार्य में गुण का अन्तर हो जाता है। दोनों दो किस्म के हो जाते हैं। हम खाते तो दाल, भात और तरकारी हैं पर उसका परिणाम है रक्त। रक्त संयुक्त कार्य है। यह संयुक्त कार्य पृथक कार्यों से भिन्न है। यहां केवल परिमाण (quantity) का फर्क नहीं होता अपितु गुण में फर्क होता है। इसे ही कार्यों का विजातीय संमिश्रण कहते हैं। ऐसे उदाहरण रसायनशास्त्र में अधिक मिलते हैं, इसलिए इसे कार्यों का रसायनिक संमिश्रण (Chemical Intermixture) भी कहा जाता है।

§१४. Mutuality of Cause and Effect

कभी कभी जब दो पदार्थों में कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब यह बताना कठिन होता है कि कौन किसका कार्य है और कौन किसका कारण। अंडा और मुर्गी, बीज और वृक्ष में इसी प्रकार का सम्बन्ध है। अंडा से मुर्गी होती है और मुर्गी से अंडा, बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज।

प्रवृति (Tendency)

जब एक ही पदार्थ पर दो बराबर विरोधात्मक शक्तियां काम करती हैं तब वह पदार्थ साम्यावस्था (equilibrium) में रहता है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि शक्तियां काम ही नही करतीं। यदि उनमें से एक काम करती तो दृश्य फल होता। इसलिए उस कारण को प्रवृति कहा जाता है जिसका यदि कोई विरोधात्मक शक्ति काम न करे तो फल हो।

संचित कार्य (Progressive Effect)—कारण दो प्रकार के होते हैं स्थायी और अस्थायी। स्थायी कारण वह है जो सदा काम करे जैसे पृथवी में आकर्षण-शक्ति। यदि ऐसे कारणों का फल जमा होकर किसी जटिल कार्य की उत्पत्ति करे तो उसे ही संचित कार्य (Progressive Effect) कहा जाता है।

§१५. *अभ्यास*

1. What is the difference between Formal and Material grounds of Induction ? In what sense Nature is Uniform.

2. Explain the principle of Uniformity of Nature. "There is not one Uniformity but many Uniformities ? Discuss.

3. Explain the Law of Causation. What are the qualitative marks of a Cause ?

4. What is the relation between the Law of Uniformity of Nature and the Law of Causation ?

5. What bearing the Law of Conservation of Matter and Energy has on the nature of causality ? What are the quantitative marks of a Cause ?

6. What is the Paradox of Induction ? Explain critically.

7. Explain the relation between Cause and Condition. What do you understand by the following :

(i) Moving power and Collocation.

(ii) Agent and Patient.

8. Is it true to say that the same event can be produced by many causes differently ? Explain critically.

9. Explain the difference between Plurality of Causes and Composition of Causes. What is meant by Intermixture of Effects ? Explain its two kinds.

10. What are the different views of causality ? Explain the popular conception.

पांचवाँ अध्याय

निरीक्षण और प्रयोग

आगमन के विषय-सम्बन्धी आधार (**Material grounds of Induction**)

§१. निरीक्षण का अर्थ (Meaning of Observation)

§२. निरीक्षण की शर्तें (Conditions of Observation)

§३. निरीक्षण-सम्बन्धी भूलें (Fallacies of Observation)

(क) ठीक नहीं देखने की भूल (Mal-observation)

(ख) नहीं देखने की भूल (Non-observation)

§४. प्रयोग (Experiment)

§५. निरीक्षण और प्रयोग (Observation and Experiment)

§६. प्रयोग से विशेष सुविधाएँ (Advantages of Experiment over Observation)

§७. निरीक्षण से विशेष सुविधाएँ (Advantages of Observation over Experiment)

§८. अभ्यास

§१. *निरीक्षण का अर्थ* (**Meaning of Observation**)

निरीक्षण का अर्थ होता है 'देखना'। किसी वस्तु को दो प्रकार से देखा जा सकता है, एक तो विना किसी लक्ष्य के अनियमित दृष्टि से और दूसरा किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए नियमित दृष्टि से। कालेज से लौटने के समय हमारी दृष्टि सड़क पर की बहुत सी वस्तुओं पर अटकती है पर किसी को नियमित रूप से हम नहीं देखते क्योंकि उन चीजों के देखने का उद्देश्य नहीं रहता। पर जब किसी पुस्तक की तलाश में उसी रास्ते पर जाते हैं तो हमारी दृष्टि नियमित हो जाती है। हम देखते जाते हैं कि कौन सी दूकान किताब की है और कहां वह पुस्तक मिलेगी। देखना तो दोनों ही कहलाता है पर एक में कोई लक्ष्य नहीं रहता इसलिए दृष्टि अनियमित रहती है और दूसरे में कोई लक्ष्य रहता है इस लिए दृष्टि नियमित रहती है और हम ध्यानपूर्वक देखते हैं। किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए नियमित दृष्टि को निरीक्षण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, हम

निरीक्षण किसी नियम के आधार पर करते हैं। दिन भर इधर उधर की चीजों को जो हम देखते रहते हैं वह निरीक्षण नहीं कहा जा सकता। जब निरीक्षण करते हैं तो केवल उसी वस्तु को देखते हैं जिससे हमारे लक्ष्य की पूर्ति हो। कालेज में हम पहले पहल आते हैं तो रूटीन में अपने क्लासों का समय देखते हैं। यह निरीक्षण है। इस प्रकार के देखने में कोई लक्ष्य है और हम इधर उधर नहीं देखते, केवल अपने काम की चीज ही पर दृष्टि डालते हैं; इसलिए निरीक्षण का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य रहता है। लक्ष्यहीन दृष्टि निरीक्षण नहीं कही जा सकती। सारांस यह हुआ कि निरीक्षण नियमित होता है और उसका कोई लक्ष्य होता है।

हम उपर कह चुके हैं कि निरीक्षण किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए होता है इसलिए हम वैसी ही वस्तुओं को देखना चाहते हैं जिससे हमारा उद्देश्य पूर्ण हो। किन्तु जब हम किसी खास वस्तु को देखना चाहते हैं तो केवल वही वस्तु हमारे नजरों के सामने नहीं आती अपितु अनेक वस्तुएं दीखने लगती हैं। उनमें से हमें उस वस्तु को चुनना पड़ता है जिससे हमारा काम चलता है। किसी खास पुस्तक को पढने के लिए आलमारी में जब हम देखते हैं तो और पुस्तकें भी नजर आती हैं पर हम उनमें उसी को चुनते हैं जिसे हम ढूंढ रहे हों। इसलिए हम देखते हैं कि निरीक्षण में चुनाव होता है अर्थात् यह एक चयनात्मक क्रिया (selective process) है।

चुनाव से यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिये कि जिस वस्तु को हम देखते हैं उसमें अपने मन के अनुसार हेर-फेर कर देते हैं। जब किसी वस्तु को स्वयं हेर फेर कर देखा जाय तो उसे प्रयोग कहा जाता है। निरीक्षण में वस्तुओं को स्वाभाविक परिस्थितियों में देखा जाता है। जिस दशा (condition) में वह चीज हमारी नजरों के सामने आती है और जब उसकी वैसी ही मानसिक तस्वीर और वैसा ही वर्णन करते हों तब उसे निरीक्षण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, निरीक्षण करने में वस्तुएं प्राकृतिक दशाओं (natural condition) में रहती हैं—जो चीजें जैसी हैं वैसी ही देखी जाती हैं, उसमें स्वयं हेर-फेर नहीं किया जाता।

संसार में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जिनका निरीक्षण विना किसी यंत्र (instr-

ument) के सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में यंत्र का प्रयोग करना ही पड़ता है। यंत्रों द्वारा निरीक्षण को प्रयोग नहीं कहा जा सकता, यद्यपि साधारणतः यही धारणा रहती है। यंत्र के प्रयोग करने में पदार्थ में हेर-फेर नहीं किया जाता, इसलिये इसे हम प्रयोग (Experiment) नहीं कहते हैं।

सारांश :—

(१) निरीक्षण नियमित होता है।

(२) इसमें किसी लक्ष्य की पूर्ति की जाती है।

(३) यह चयनात्मक क्रिया है।

(४) इसमें वस्तुओं में हेर-फेर नहीं किया जाता, उन्हें प्राकृतिक दशाओं में देखा जाता है।

(५) इसमें यंत्रों का भी प्रयोग होता है।

§२. *निरीक्षण* (Observation) *की शर्तें* (Conditions)

निरीक्षण बहुत साधारण सी क्रिया प्रतीत होती है पर वास्तव में इसमें काफी सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता होती है। शुद्ध निरीक्षण के लिए कोई खास नियम नहीं बताया जा सकता है क्योंकि यह अधिकतर अभ्यास और शिक्षा पर निर्भर है। तब भी निरीक्षण के लिए कुछ शर्तों का उल्लेख किया जा सकता है। शुद्ध निरीक्षण के लिए इनका रहना आवश्यक है। ये शर्तें तीन प्रकार की हैं-मानसिक (mental), शारीरिक (physical) और नैतिक (moral)।

मानसिक (Mental) :—निरीक्षण तभी शुद्ध हो सकता है जबकि इसकी इच्छा हो। यदि किसी वैज्ञानिक को यह मानसिक प्रेरणा न हो कि किसी पदार्थ का निरीक्षण करे तो उसका निरीक्षण कभी भी ठीक नहीं हो सकता है। जब तक मनुष्य को भूख नहीं हो तब तक खाना खाने में रुचि नहीं होती, उसी प्रकार किसी पदार्थ को जानने की उत्कंठा नहीं हो तब निरीक्षण शुद्ध नहीं हो सकता। इसलिए शुद्ध निरीक्षण के लिए मानसिक उत्कंठा और इच्छा की आवश्यकता है।

शारीरिक (Physical):—निरीक्षण के लिए निरोग शरीर भी आवश्यक है। निरीक्षण आखों के द्वारा होता है ? यदि किसी मनुष्य की आंखों में कुछ दोष हो या शरीर में किसी प्रकार की खराबी हो तब उसके निरीक्षण में दोष हो जायगा।

नैतिक (Moral):-शुद्ध निरीक्षण के लिए पक्षपातरहित होना आवश्यक है। यदि हममें

पक्षपात हो तब किसी घटना का शुद्ध रूप हमें नहीं मालूम हो सकता। शुद्ध निरीक्षण का अर्थ ही है कि जिस प्रकार का पदार्थ हो उसका उसी रूप में अवलोकन। पर यदि हम अन्धविश्वास या पक्षपात के शिकार हों तब निरीक्षण में अवश्य भूल हो जाती है। इस लिए निरीक्षण में यह नैतिक बल होनी चाहिए कि यदि अपने विचारों के विरुद्ध भी कोई पदार्थ दीख पड़े तो वह उसे वैसा ही निरीक्षण करे।

§३. *निरीक्षण-सम्बन्धी भूलें* (**Fallacies of Observation**)

विना किसी पक्षपात के किसी बात को सिद्ध करने के लिए उसके विभिन्न उदाहरणों का देखना निरीक्षण कहलाता है। देखना तो एक सरल क्रिया प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में इसमें भूल की सम्भावना कम नहीं रहती। मनुष्य निरीक्षण में भी भूल करता है। निरीक्षण-सम्बन्धी भूलें दो कारणों से होती हैं—एक, किसी बात की सिद्धि के लिए जिन पदार्थों को देखना चाहिए उन्हें नहीं देखने से और दूसरी, उन्हें गलत तरीके पर देखने से। पहले में, जिसे देखना चाहिए उसे देखते ही नहीं हैं (Non-observation) और दूसरे में देखते तो अवश्य हैं पर ठीक तरह से नहीं देखते हैं (Mal-observation)। पहली भूल अभावात्मक (Negative) है और दूसरी भावात्मक (Positive)

(१) ठीक नहीं देखने की भूल अर्थात् भ्रम (Mal-Observation)

जिस वस्तु को हम देख रहे हों उसे ठीक तौर पर न देखकर अगर हम उसे कुछ दूसरा वस्तु समझ लें तो वह भ्रम कहलाता है। अँधेरे में हम बहुधा रस्सी को सांप तथा झाड़ी को मनुष्य समझ लेते हैं। मित्र के आने की प्रतीक्षा में कोई दूसरा आता हुआ मनुष्य मित्र ही प्रतीत होता है। ये भ्रम हैं। वास्तव में इन्द्रियों द्वारा ही किसी वस्तु का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। इन इन्द्रियों पर मनुष्य के विचारों की गहरी छाप पड़ती है। इसलिए किसी काम या विचार में लगे हुए मनुष्य को देखने पर कोई भी वस्तु उसे वैसी ही प्रतीत होती है। इन्द्रियों में दोष रहने पर भी देखने में भूल हो जाया करती है। कभी-कभी मनुष्य देखता तो ठीक है पर बताने में भूल कर देता है। कभी वातावरण इस प्रकार का रहता है कि देखने में भूल होना स्वाभाविक हो जाता है। इन्हीं भूलों के कारण हम कहते हैं कि सूर्य्यास्त हुआ है। वास्तव में पृथ्वी घूमती है, सूर्य अस्त और उदय नहीं होता।

(२) नहीं देखने की भूल (Non-Observation)

विभिन्न उदाहरणों को देख कर ही सामान्यीकरण उचित है। एक दो उदाहरणों को देखकर सामान्य रीति से कुछ कह देने से उसमें निश्चयात्मकता नहीं आती। लेकिन कभी कभी दूरी के कारण, अति निकट होने के कारण, इन्द्रिय-दोष से, ध्यान उचट जाने से, बहुत ही सूक्ष्म पदार्थ होने से जिन पदार्थों को किसी नियम स्थापित करने में देखना चाहिए उसे हम नहीं देख पाते हैं। इसलिए नियम दोषपूर्ण हो जाता है। इन दोषों को ध्यान देने से तथा यंत्रों के द्वारा, दूर कर लिया जा सकता है। पर कभी कभी पक्षपात के कारण या अन्य कारणों से भी जिस पदार्थ या उदाहरण का निरीक्षण आवश्यक है उसे हम नहीं देखते हैं। ऐसी भूल दो प्रकार की होती है।

(अ) उदाहरण को न देखना (Non-Observation of Instances)

निरीक्षण के लिए चित्त की एकाग्रता तथा पक्षपातशून्यता आवश्यक है। पर मनुष्य में अहंभावना भी बड़ी प्रबल है। जीत की अभिलाषा और उसके कारण मानसिक दृढ़ता के अभाव से जिन उदाहरणों का निरीक्षण आवश्यक है उस पर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसी भूल अधिकतर अभावात्मक उदाहरणों को न देखने से होती है। यात्रा पर तेल देखने से काम नहीं होता है, ऐसा कहा जाता है। इसे सिद्ध करने के लिए लोग उदाहरण देते हैं कि अमुक अवसर पर यात्रा के समय तेल दिखलाई दिया और अमुक काम में विघ्न हुआ। इसी तरह स्वप्नों की सत्यता की कथा भी प्रचलित है। सबेरे का स्वप्न सत्य होता है। इसे भी सिद्ध करने के लिए लोग दो-तीन उदाहरण दे देते हैं। लेकिन वे लोग ऐसे उदाहरणों को नहीं देखते जब यात्रा के समय तेल देखने पर भी कार्य में कोई विघ्न नहीं होता या जब सबेरे का स्वप्न भी असत्य हो जाता है। यदि एक दो ऐसे उदाहरण भी देखे जांय तो वे कथाएँ असार प्रतीत होने लगती हैं। इसी भूल के कारण लोगों में बहुत से अन्धविश्वास प्रचलित हैं।

मनुष्य की यह प्रवृति है कि किसी पदार्थ के दिखलाई नहीं पड़ने पर शीघ्र ही वह अनुमान करने लगता है कि उसका अस्तित्व ही नहीं है। इस अनुमान में भी 'नहीं देखने' की भूल हो सकती है। गुप्तरूप से काम करनेवाली शक्ति होने से या इन्द्रिय-दोष से अथवा पदार्थ के सूक्ष्म होने से सम्भव है कि कोई वस्तु दीख

न पड़े। इससे इस प्रकार का अनुमान करना भ्रम-मूलक है। पहले यह विश्वास था कि जलने की क्रिया में कुछ पदार्थ नष्ट हो जाता है। लेकिन जलने में जो कार्बन (Carbon) इत्यादि हवा में मिल जाता था, उसको लोग नहीं देखते थे। उनको देखने से पता चला कि जलने में कुछ निकल नहीं जाता अपितु कुछ आकर मिल जाता है।

(ब) आवश्यक स्थिति को न देखना

(Non-Observation of Essential Circumstances)

कभी कभी जिस आवश्यक स्थिति को देखना चाहिए उसे न देख कर हम भूल में पड़ जाते हैं। किसी बात को सिद्ध करने के लिए आवश्यक स्थितियों का निरीक्षण होना चाहिए। लेकिन सारी स्थिति को भी कभी कभी न देखकर हम कोई बात कह देते हैं। बहुधा कहा जाता है कि आजकल नई-नई बिमारियां फैली हैं। वास्तव में इसे हम भूल जाते हैं कि पहले आजकल की तरह प्रत्येक बिमारी का नया नया नाम नहीं था और इस प्रकार की खोज-पड़ताल नहीं थी। ये बिमारियां पहले भी होती थीं।

आवश्यक स्थितियों को नहीं देखने की भूल समस्यायों की जटिलता के कारण होती है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में जटिलता के कारण ऐसी भूल होने की अधिक सम्भावना रहती है।

४§. *प्रयोग* (**Experiment**)

प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन कर उनके विषय में नियम स्थापित करना आगमन का लक्ष्य है। पर प्राकृतिक घटनाएं जो देखने में बहुत सरल प्रतीत होती हैं किसी वैज्ञानिक खोज के लिए उतनी ही जटिल (complex) होती हैं। मच्छड़ों को तो सभी ने देखा था पर कोई यह नहीं जानते थे कि उसी के काटने से मलेरिया होता है। जब एक खास किस्म के मच्छड़ को पकड़ कर कुछ लोगों को कटा कर परीक्षा की गई तो निश्चित रूप से पता चला कि मलेरिया उन्हीं मच्छड़ों के काटने से होता है। इसके अलावा जिस घटना के विषय में जानना होता है उसके साथ मिली हुई कितनी घटनाएँ होती हैं, इसलिए केवल देखने से उनका स्वतंत्र रूप पता नहीं चलता। केवल निरीक्षण द्वारा कुछ जरूरत की और कुछ बेजरूरत की बातें भी नजर आती हैं। आव-

श्यक बातों को अनावश्यक बातों से अलग कर अध्ययन करने के लिए वस्तुओं या घटनाओं में स्वयं हेर-फेर करना पड़ता है। इसे ही प्रयोग (Experiment) कहते हैं। प्रयोग में भी हम निरीक्षण करते हैं पर वस्तुओं में हेर-फेर करके। किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वयं प्रबन्ध किए हुए (arranged by ourselves) अवस्थाओं (conditions) में किसी घटना के निरीक्षण को प्रयोग (Experiment) कहते हैं। संक्षेप में प्रयोग के लक्षण हैं :—

(१) निरीक्षण,

(२) जिस अवस्था में देखना है उसका स्वयं प्रबन्ध,

(३) घटनाओं में हेर-फेर करना।

§५. *निरीक्षण और प्रयोग* **(Observation and Experiment)**

स्वाभाविक रीति से जो घटनाएं हो रही हैं, उन्हें किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए, बिना हेर-फेर किए ध्यानपूर्वक देखने को निरीक्षण कहा जाता है। जब कोई ज्योतिषी आकाश में ताराओं को यंत्रों द्वारा गौर से देखता है तो उस क्रिया को निरीक्षण कहेंगे। निरीक्षण में निम्नलिखित बातें हैं—

(१) घटनाओं को ध्यानपूर्वक देखना, किसी उद्देश्य से।

(२) घटनाएं स्वाभाविक रहती हैं—जिस हालत में घटनाएं सामने आती हैं उन्हें हम वैसे ही देखते हैं, उनमें हेर-फेर नहीं करते। यदि कोई हेर-फेर किया जाय या अपने प्रबन्ध से घटनाओं को उत्पन्न करके देखें तो उसे प्रयोग कहेंगे।

(३) इसलिए निरीक्षण के लिए प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। वह घटना जिसकी हम खोज कर रहे हैं, जब स्वाभाविक रीति से होती हैं तब उसे हम देखते हैं। घटनाएं हमारे शासन के बाहर रहती हैं। उन पर हमारा कोई वश नहीं रहता है। एक प्रकार से निरीक्षण में हम प्रकृति के आश्रित (Slaves of Nature) रहते हैं इसलिए जितनी बार चाहें उतनी बार किसी घटना का निरीक्षण करना सम्भव नहीं है।

(४) जब किसी घटना का निरीक्षण करते हैं तो जिन परिस्थितियों में वह घटना सामने आती है सब को हम देखते हैं। तारों को देखने में ज्योतिषी बादलों को, यदि बादल आ जाएं, हटा नहीं सकता।

प्रयोग करने का अर्थ है अपने मन के अनुसार किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए, पदार्थों में हेर-फेर करके उन्हें ध्यानपूर्वक देखना। जब कोई वैज्ञानिक किसी प्रयोगशाला (laboratory) में यंत्रों द्वारा जल (water) का विश्लेषण कर देखता है कि कौन से वायु (gas) से जल बना है तो उस क्रिया को हम प्रयोग (Experiment) कहेंगे। प्रयोग में निम्नलिखित बातें पाते हैं—

(१) पदार्थों का निरीक्षण किसी उद्देश्य से होता है।

(२) पदार्थ प्राकृतिक नहीं रहते, अर्थात् स्वाभाविक रीति से जो घटनाएं या पदार्थ सामने आते हैं उन्हें नहीं देखते बल्कि उन घटनाओं या पदार्थों में हेर-फेर करते हैं।

(३) प्रयोग के लिए प्रकृति पर निर्भर नहीं रहना पड़ता क्योंकि किस अवस्था में और कैसे पदार्थों को देखेंगे यह प्रबन्ध करना अपने हाथ में रहता है। जिस पर प्रयोग करते हैं उस पर हमारा अधिकार (control) रहता है और हम प्रकृति पर आश्रित नहीं रहते। प्रयोग करने में हम एक प्रकार से घटनाओं का स्वयं निर्माण करते हैं। इसलिए कहा गया है कि निरीक्षण में हम आविष्कार (find a fact) और प्रयोग में सत्य का निर्माण (make a fact) करते हैं। प्रयोग में हम प्रकृति से प्रश्न करते हैं (Interrogate Nature)। इसमें सब बातों का प्रबन्ध करके देखते हैं कि उस प्रयोग का फल क्या होता है ?

(४) प्रयोग में घटनाओं वा पदार्थों को प्राकृतिक परिस्थितियों में नहीं देखते हैं। परिस्थितियों का प्रबन्ध अपने हाथ में रहता है।

कुछ तार्किकों ने निरीक्षण और प्रयोग में भेद बताते हुए कहा है कि पहले में मनुष्य निष्क्रिय (passive) रहता है और दूसरे में सक्रिय (active)। चूंकि निरीक्षण में मनुष्य को घटनाएं जिस प्रकार होती हैं, उन्हें केवल देखना रहता है इसलिए इस क्रिया को निष्क्रिय कहा गया है और प्रयोग में स्वयं प्रबन्ध करना पड़ता है इसलिए इसे सक्रिय कहा गया है। वास्तव में ऐसा भेद करना अनुचित है। केवल देखना भी स्वयं एक क्रिया है। मनुष्य जब देखता है तो उसे आंखों को उस वस्तु की ओर लगाए रहना पड़ता है और ध्यान बराबर उसी ओर रखना पड़ता है इसलिए इसे निष्क्रिय कर्म नहीं कह सकते। यह सत्य है कि

तुलना करने पर एक में कम क्रिया है और दूसरे में अधिक पर इसका यह अर्थ नहीं है कि निरीक्षण को बिल्कुल निष्क्रिय कह दें।

कुछ तार्किकों ने कहा है कि निरीक्षण स्वाभाविक (natural) है और प्रयोग कृत्रिम वा बनावटी (artificial)। निरीक्षण को स्वाभाविक इसलिए कहते हैं कि इसमें घटनाओं को हम प्राकृतिक स्थिति में देखते हैं और प्रयोग कृत्रिम इसलिए है कि अपनी प्रबन्ध की हुई स्थितियों में घटनाओं का निरीक्षण होता है। वास्तव में यह भेद भी अनुचित है। जब किसी वस्तु की बारीकियों को देखना होता है तो हमें यंत्रों की सहायता लेनी पड़ती है। निरीक्षण तो करते हैं पर यंत्रों के द्वारा इसलिए कुछ हद तक इसे भी कृत्रिम कह सकते हैं। इसी प्रकार प्रयोग जो बिल्कुल कृत्रिम दीख पड़ता है वास्तव में वैसा नहीं है। प्रयोग में भी प्राकृतिक शक्तियों से काम लेना पड़ता है। जब प्रयोग करते रहते हैं तो आंख, हाथ इत्यादि अंगों से काम लिया जाता है। मनुष्य के अंग कृत्रिम नहीं हैं इसलिए प्रयोग भी कुछ हद तक स्वाभाविक कहा जा सकता है।

वस्तुतः निरीक्षण और प्रयोग में अन्तर तो अवश्य है पर वे विरोधात्मक (opposite) क्रियाएं नहीं हैं। निरीक्षण और प्रयोग दोनों ही का लक्ष्य एक ही है, कार्य-कारण सम्बन्ध का पता लगाना। दोनों ही में कोई न कोई लक्ष्य रहता है। दोनों ही चयनात्मक (selective) क्रियाएं हैं। इसलिए दोनों को दो किस्म (kind) की क्रिया नहीं कह सकते। यदि निरीक्षण को जाति (Genus) माना जाय तो शुद्ध निरीक्षण अर्थात् विना हेर-फेर किए घटनाओं को देखने को और प्रयोग को उस जाति की छोटी जाति (Species) कहेंगे। दोनों में अंतर केवल इतना ही है कि निरीक्षण में घटनाएं जैसे होती हैं वैसे ही उसे देखते हैं और प्रयोग में घटनाओं में हेर-फेर करके देखते हैं। प्रयोग में भी निरीक्षण होता है। कोई वैज्ञानिक अपने प्रयोगशाला में आंखें मूंद कर प्रयोग नहीं करता। इसलिए प्रयोग एक विशेष प्रकार का निरीक्षण ही है। प्रयोग और निरीक्षण में केवल मात्रा (degrees) का फर्क है किस्म का नहीं।

प्रयोग और निरीक्षण द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित किया जाता है पर दोनों की अपनी अपनी विशेषताएँ हैं, जो एक दूसरे में नहीं पाई जातीं। यहां उन्हीं का उल्लेख करना है।

§६. *प्रयोग से विशेष सुविधाएं* (Advantages of Experiment over observation.)

किसी विषय में जब मनुष्य कोई खोज करना आरम्भ करता है तो उसे उस विषय को बार बार नई परिस्थितियों में देखना पड़ता है। जिस प्रकार हम नित्य दिन किसी पदार्थ को देखा करते हैं, वैसे किसी वैज्ञानिक सत्य का पता नहीं चल सकता। यदि घटनाओं के उत्पन्न होने के लिए हमें प्रकृति पर निर्भर रहना पड़े अर्थात् प्रबन्ध हमारे हाथ में न रहे तो कोई ठीक नहीं है कि कब, किस स्थिति में और कितनी बार हम उस घटना को देख सकेंगे। यदि प्रबन्ध अपने हाथ में हो तो हम जितनी बार किसी विषय का अध्ययन करना चाहें कर सकते हैं। यदि हमें बिजली का अध्ययन करना है और उसके प्राकृतिक रीति से घटने की प्रतीक्षा कर रहे हों तो कब और किस स्थिति में बिजली चमकेगी यह कहना कठिन है। पर किसी प्रयोगशाला में जितनी बार जरुरत हो कृत्रिम रीति (artificial way) से बिजली उत्पन्न किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि जिस विषय का पता लगाना है वह एक ही बार देखने से पता चल जावे। इसलिए प्रयोग से यह विशेष सुविधा है कि एक ही घटना को जितनी बार जरुरत हो उत्पन्न कर सकते हैं। निरीक्षण में प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है इसलिए एक घटना को कई बार देख सकेंगे यह निश्चित नहीं है।

कभी कभी जिस विषय का अध्यन करना होता है वह बड़ा ही जटिल (complex) होता है। किसी भी वस्तु में बहुत से तथ्य होते हैं। अध्ययन की दृष्टि से उसमें कई-एक अनावश्यक तथ्य भी मिले रहते हैं जिनसे उस विषय के अध्ययन में बाधा पड़ती है। ऐसी हालत में उस विषय को अनावश्यक तथ्यों से पृथक कर देने पर ही उसका वास्तविक रुप प्रगट होता है। एक उदाहरण लें-मनुष्य के शरीर में बहुत प्रकार के कीड़े हैं। किसी डाक्टर को क्षयरोग के कीड़े का अध्ययन करना है। जब वह उस कीड़े को और कीड़ों से पृथक करके देखेगा और जांच करेगा तभी उसके विषय में वह कुछ पता लगा सकता है। पर ऐसा तो तभी सम्भव है जब प्रबन्ध अपने हाथ में रहे। इसलिये आवश्यक पदार्थों को अनावश्यक पदार्थों से पृथक (isolate) करके अध्ययन करना प्रयोग द्वारा ही सम्भव है, निरीक्षण द्वारा नहीं।

प्रयोग से सबसे अधिक फायदा तो यह है कि घटनाओं को विविध परिस्थितियों (varied circumstances) में निरीक्षण किया जा सकता है। किसी पदार्थ के वास्तविक गुणों को जानने के लिए उसे नई परिस्थितियों में देखना पड़ता है। यह प्रयोग ही द्वारा सम्भव है क्योंकि उसमें प्रबन्ध अपने हाथ में रहता है। वैज्ञानिकों ने परिस्थितियों को बदल कर ही यह पता लगाया कि Nitric Acid सब धातुओं को, जैसे, पीतल, लोहा, चांदी, इत्यादि को गला सकता है पर सोना को नहीं।

प्रयोग में प्रबन्ध अपने हाथ में रहने से एक और फायदा यह है कि हम सावधान तथा सतर्क होकर विषयों का अध्ययन कर सकते हैं। मान लें कि हमें तूफानों के विषय में कुछ गवेषणा करनी है। तूफान का होना अथवा नहीं होना तथा उसके होने का समय हमारे हाथ में नहीं हैं, इसलिए उसके घटने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है और जब वह उठती है, तो शीघ्रता से सभी कुछ देखना पड़ता है जिसमें वह घटना समाप्त न हो जाय। प्रयोग में इतनी शीघ्रता और प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित कर लेने के बाद उसके सम्बन्ध की सत्यता की जांच करने की आवश्यकता होती है। ऐसी आवश्यकता पड़ने पर उस स्थिति को कृत्रिम रीति से उपस्थित करके यह देखते हैं कि अमुक घटना होती है या नहीं।

§७. *निरीक्षण से विशेष सुविधायें* **(Advantages of observation over Experiment)**

मनुष्य सब प्राणियों से अधिक बुद्धिमान होते हुए भी अभी तक प्रकृति पर अपना पूर्ण अधिकार स्थापित नहीं कर सका है। हर साल जल में तूफान के के कारण और थल पर भूकम्प के कारण हजारों मनुष्य मरते हैं। यदि इन पर अपना अधिकार रहता तो इतने मनुष्य इन कारणों से नहीं मरते। ये घटनायें मनुष्य की पकड़ के बाहर हैं, इसलिए इन पर प्रयोग करना सम्भव नहीं है। इनका केवल निरीक्षण ही सम्भव है। इसके अलावा बहुत से वायु तथा घटनाएं इतनी खतरनाक हैं कि उन पर प्रयोग करना किसी प्राणी के लिए बहुत

ही कठिन है। लेकिन मनुष्य उनका निरीक्षण कर सकता है। इसलिये देखते हैं कि निरीक्षण का क्षेत्र (scope) प्रयोग के क्षेत्र से विस्तृत है। जहां प्रयोग होता है वहां निरीक्षण तो होता ही है, पर बहुत सी घटनायें ऐसी होती हैं जहां प्रयोग सम्भव नहीं है पर इनका निरीक्षण किया जा सकता है।

निरीक्षण में विचारक्रम दोनों ही ओर जा सकता है, कारण से कार्य की ओर या कार्य से कारण की ओर पर प्रयोग में केवल एक ही ओर अर्थात् कारण से कार्य की ओर। प्रयोग में हम स्वयं घटनाओं को उत्पन्न करते हैं इसे लिये जब भी हमारी कुछ क्रिया होती है तो वह घटना उसके फलस्वरूप होती है अर्थात् जब कारण उपस्थित करते हैं तो उसका कार्य भी उपस्थित होता है और उसीका निरीक्षण किया जाता है। निरीक्षण में फल का ज्ञान रहने से उसके कारण की भी कल्पना कर सकते हैं।

निरीक्षण का स्थान प्रयोग से पहले है। जब भी हम प्रयोग करते हैं तो उस घटना या पदार्थ का निरीक्षण पहले कर लेते हैं। मनुष्य आंखों को मूंद कर किसी घटना पर प्रयोग नहीं करता। इसलिए प्रयोग के पहले निरीक्षण आवश्यक होता है।

घटनाओं को स्वाभाविक स्थिति में या उनके सम्बन्धित घटनाओं को तभी देखा जा सकता है जब उनमें कोई हेरफेर न हो। यह निरीक्षण में ही सम्भव है, प्रयोग में नहीं। प्रयोग में तो अपनी उपस्थित की हुई परिस्थितियों में घटनाओं का निरीक्षण करना पड़ता है।

इन सुविधाओं के अलावा निरीक्षण में यह सुविधा है कि इसमें कठिनाइयाँ बहुत ही कम हैं। एक साधारण मनुष्य के लिए तो कोई प्रयोगशाला एक भूल भुलैया के समान है। वहां तो विशेषज्ञों की जरुरत होती है। निरीक्षण करना उससे सरल है। पहले तो निरीक्षण करने पर ही कार्य-कारण सम्बन्ध का संकेत मिलता है, बाद में प्रयोग द्वारा उसे निश्चित किया जाता है।

§८. *अभ्यास*

1. Define Observation and Experiment. How they help in any scientific investigation ?

2. What is the distinction between Observation and

Experiment ? How far is it true to say that they differ only in degrees and not in kind ?

3. In Experiment we 'Interrogate Nature'. Is it true to say that Observation is Genus, Experiment and simple Observation its species ?

4. What are the advantages of Experiment over Observation ? Explain and illustrate.

5. What are the advantages of Observation over Experiment ? Explain and illustrate.

छठवाँ अध्याय

कल्पना (Hypothesis)

§१. कल्पना का अर्थ (Meaning of Hypothesis)
§२. कल्पना की उत्पत्ति (Origin of Hypothesis)
§३. कल्पना के प्रकार (Forms of Hypothesis)
§४. यथार्थ कल्पना की शर्तें
§५. कल्पना के प्रमाण (Proofs of a Hypothesis)
§६. कामचलाऊ कल्पना (Working Hypothesis)
§७. कल्पना, सिद्धान्त, नियम और यथार्थता
(Hypothesis, Theory, Law and Fact)
§८. काल्पनिक प्रतिरूपक (Representative Fiction)
§९. कल्पना का महत्व (Importance of Hypothesis)
§१०. कल्पना से लाभ (Utility of Hypothesis)
§११. अभ्यास

§१. *कल्पना का अर्थ* (**Meaning of Hypothesis**)

कल्पना शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है, एक बिना किसी आधार के हवाई किला बनाने के अर्थ में और दूसरा किसी विषय के तत्व से अनभिज्ञ रहने पर उसके बारे में कोई अन्दाज लगाने में। जब कोई भिखारी सोचता है कि कुछ दिनों में वह राजा हो जायगा और मौज से जिन्दगी बितायेगा तो हम कहते हैं कि यह उसकी केवल कल्पना है, जिसकी वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं। इसी को कहते हैं हवाई कल्पना। परन्तु दूसरे प्रकार की कल्पना तब हुई जब हम किसी मित्र के, वादे के अनुसार, नहीं आने पर यह कयास करते हैं कि परीक्षा की तैयारी में व्यस्त रहने के कारण शायद वह नहीं आ सका। जब हमारे दराज से कोई पुस्तक गुम हो जाती है तो फौरन मस्तिष्क में यह बात आती है कि छोटे भाई ने तस्वीर देखने के लिये उसे लिया

होगा अथवा किसी मित्र ने मेरी अनुपस्थिति में पढ़ने के लिए लिया होगा। या स्वयं मैने ही उसे कहीं रख दिया होगा। इस तरह की कितनी सम्भावनाएं मस्तिष्क में आती हैं और उनमें से किसी एक को मानकर हम पुस्तक को ढूँढ़ने लगते हैं। यदि यह मान लिया है कि छोटे भाई ने पुस्तक ली है तो उससे उसके विषय में पूछते हैं; उसने यदि नहीं लिया है तो अपने मित्रों से पूछते हैं; यदि मित्रों ने भी नहीं लिया है तो इधर-उधर ढूँढ़ते हैं। इस प्रकार पता लगता है कि दूसरी कोठरी मे मैने ही उस किताब को रख दिया था। यह पता लगने के पहले जो अटकल हमने लगाया उसे ही "कल्पना" कहते हैं। यह "कल्पना" शब्द के दूसरे अर्थ का उदाहरण हुआ। किसी घटना के आधार पर उसके विषय में जो पहले पहल अटकल लगाया जाता है वही 'कल्पना' है। यह भिखारी की तरह कोरी कल्पना नहीं अपितु किसी घटना-विशेष के विषय में कल्पना है।

आगमन (Induction) में कल्पना (Hypothesis) का महत्व बहुत है। इसका लक्ष्य है साधारण नियम स्थापित करना, जिन्हें घटनाओं को देख कर उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित करके ही स्थापित किया जाता है। कुछ फलों को जमीन पर टपकते देखकर निश्चित किया गया है कि पृथ्वी में आकर्षण है। पर घटनाओं को एक बार देख लेने ही पर कार्य-कारण सन्बन्ध का ज्ञान फौरन नहीं हो जाता। उनके कारण के विषय में अटकल लगाना पड़ता है। ग्रहों के चाल के विषय में पहले कितनी बातें सोची गई, तब जाकर सही और ठीक बात का पता चला। यदि अटकल परीक्षा के उपरान्त सही उतरता है, तो उसे सिद्ध मान लिया जाता है और यदि गलत साबित होता है तो दूसरा अटकल लगाया जाता है।

कल्पना का प्रयोग मनुष्य नित्य दिन अपने जीवन में भी करता रहता है। यह केवल विज्ञान के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। अनजाने विषयों को जानने की उत्सुकता हर मनुष्य में रहती है। कोई नई घटना घटने पर उसे देख कर ही मनुष्य सन्तुष्ट नहीं हो जाता है अपितु उसका कारण जानना चाहता है। निश्चित कारण के पता लग जाने के पहले कोई न कोई बात मस्तिष्क में उठती ही है। पीछे उसकी परीक्षा होती है। कभी वह सत्य

भी होती है और कभी निर्मूल भी। इस प्रकार साधारण मनुष्य भी कल्पना का प्रयोग करता है।

पर वैज्ञानिक कल्पना और साधारण कल्पना में कुछ अन्तर अवश्य है। साधारण कल्पना वैज्ञानिक कल्पना की तरह नियमित (systematic) नहीं होती। साधारण मनुष्य बहुत शीघ्र ही किसी बात से सन्तुष्ट हो जाता है, पर एक वैज्ञानिक उस विषय में काफी छानबीन करता है। साधारण कल्पना अपने हित के लिए ही की जाती है। यदि आपने कल्पना किया कि मित्र के यहाँ से उसकी बिमारी के कारण चिट्ठी नहीं आई तो उससे और लोगों का सम्बन्ध नहीं है। इससे केवल आपका ही निजी सम्बन्ध है। पर वैज्ञानिक कल्पना सार्वजनिक (general) होती है। एक वैज्ञानिक ज्ञान-राशि को बढ़ाने के लिए ही कल्पना का प्रयोग करता है। साधारण मनुष्यों का यह लक्ष्य नहीं रहता। उनकी कल्पना अधिकतर घटनाओं के आधार पर नहीं होती। पर कोई वैज्ञानिक घटनाओं के निरीक्षण के उपरान्त ही कोई कल्पना करता है। जिस प्रकार चोरी होने पर नौकर के ऊपर शंका करते हैं, उसी प्रकार एक वैज्ञानिक भी कारण ढूंढ़ने में किसी कल्पना की मदद लेता है। पर उसकी कल्पना काफी तर्क और प्रमाण पर अवलम्बित रहती है। इसके विपरीत साधारण मनुष्य की कल्पना अधिकतर बे-सिरपैर की होती है।

तर्कशास्त्र का सम्बन्ध वैज्ञानिक कल्पना से है। वैज्ञानिक कल्पना में तीन क्रम (steps) होते हैं—

(१) घटनाओं का निरीक्षण (Observation of Facts)

(२) उनके विषय में अटकल लगाना (Supposition)

(३) उन अटकलों की परीक्षा करना (Verification); सारांश यह हुआ कि किसी विषय का निश्चित ज्ञान होने के पहले उसके लिए जो अटकल लगाया जाता है उसे "कल्पना" (Hypothesis) कहते हैं।*

*"An Hypothesis is any supposition which we make (either without actual evidence or on evidence avowedly insufficient) in order to endevour to deduce from it conclusions in accordance with facts which are known to be real; under the idea that if the conclusion to which the Hypotheses leads are known truths, the hypothesis itself either must be, or at least is likely to be true"—Mill.

§२. *कल्पना की उत्पत्ति* **(Origin of Hypothesis)**

किसी घटना को देखकर उसके कारण की कल्पना किन नियमों द्वारा की जाय यह कहना कठिन है। कल्पना की उत्पत्ति के कोई नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते। एक ही घटना को देखकर किसी के मस्तिष्क में उसके कारण का आभास मिलने लगता है और दूसरे को उसका पता बिल्कुल ही नहीं चलता। वास्तव में कल्पना की उत्पत्ति अपनी अन्तरदृष्टि (insight) और स्फूर्ति (energy) पर निर्भर है। मनुष्य में जितनी स्फूर्ति और अन्तरदृष्टि रहती है उतनी ही शीघ्रता से वह किसी विषय में कल्पना कर सकता है। कल्पना के लिये काल्पनिक-शक्ति की आवश्यकता होती है। जिस तरह तर्क के सब नियमों को जानते हुए भी एक तार्किक तब तक तर्क सही नहीं कर सकता जब तक उसमें स्फूर्ति न हो उसी प्रकार विज्ञान का पंडित भी बिना अन्तरदृष्टि के निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता कि किसी विषय की कल्पना वह कर ही लेगा। फल को जमीन पर टपकते तो सभी ने देखा होगा पर न्यूटन ही पहले पहल उस घटना से गुरुत्वाकर्षण नियम की कल्पना कर सका।

स्फूर्ति और अन्तरदृष्टि के साथ साथ, कल्पना की उत्पत्ति मनुष्य की निजी बुद्धि पर निर्भर करती है। विद्या और बुद्धि दोनों ही कल्पना की उत्पत्ति में सहायक हैं। ज्ञान का भंडार पूर्ण रहने पर किसी कल्पना के उदय होने की सम्भावना अधिक रहती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि बुद्धिमानों को एक बार में ही सही कल्पना सूझ जाती है। वैज्ञानिक केपलर को ग्रहों के चाल के विषय में १९ कल्पनाओं को त्याग करना पड़ा था और तब २० वीं बार में वह सही कल्पना कर सका था। कल्पना के लिए धैर्य्य भी आवश्यक है। एक बार गलती होती है फिर दूसरी बार कल्पना की जाती है और इस प्रकार निरंतर परि श्रम के बाद किसी तत्व का भेद मिलता है। कभी कभी गलत कल्पना से ही सही कल्पना का संकेत मिलता है ।

कोई स्थापित नियम, गणना, सादृश्यानुमान, इत्यादि भी कल्पना के लिए सहायक हैं। कभी कभी एक स्थापित सत्य से दूसरे सत्य की कल्पना की जाती है।

गणना— यदि दो घटनाएं सदा साथ घटें तो साधारणतः उनमें किसी सम्बन्ध की कल्पना सभी करने लगते हैं।

सादृश्यानुमान—उसी प्रकार जब दो घटनाओं या वस्तुओं में समता होती हैं तो शीघ्र ही उनमें किसी सम्बन्ध की कल्पना मनुष्य कर लेता है। मंगल और पृथ्वी में बहुत अंशों में समता है इसलिए वैज्ञानिकों ने कल्पना की है कि मंगल में भी पृथ्वी की तरह जीव है।

§३. *कल्पना के प्रकार* (**Forms of Hypothesis**)

जब कोई घटना घटती है तो उसमें कोई कर्त्ता (agent) होता है उसकी विशेष परिस्थिति (collocation) होती है जिसके कारण वह घटना घटती है और कर्त्ता के कार्य करने की कोई विधि (mode or law) होती है। मान लें कि हमारे घर में चोरी हुई तो इसके लिए किसी चोर का होना आवश्यक है। यहां चोर कर्त्ता हुआ। चोर घर के लोगों की निद्रावस्था के कारण कार्य में सफल होता है। घर के लोगों की निद्रावस्था तथा और भी सहायक बातें परिस्थिति की गणना में आएंगी। चोर किसी विधि या उपाय से घर में घुसता है। यह एक साधारण उदाहरण हुआ। इसी प्रकार किसी वैज्ञानिक खोज में भी तीन समस्याएं उपस्थित होती हैं।

कभी कभी परिस्थिति और विधि का ज्ञान रहता है और कर्त्ता के विषय में कल्पना करनी पड़ती है। ऐसी कल्पना को कर्त्ता-सम्बन्धी कल्पना (Hypothesis Concerning Agent) कहते हैं। किस परिस्थिति में चोरी हुई और कैसें चोरी हुई यह मालूम रहने पर, किसने चोरी की अगर इसकी कल्पना करें तो वह कल्पना कर्त्ता-सम्बन्धी होगी। नेपचून (एक नक्षत्र) का आविष्कार इसी प्रकार हुआ है। नियम के अनुसार एक ग्रह (Uranus) की गति अपने राह से हट कर होती है। वैज्ञानिकों ने कल्पना किया कि किसी दूसरे नक्षत्र के आकर्षण के कारण ऐसा होता है। उस नक्षत्र की खोज करने पर नेपचून (Neptune) मिला।

कभी कर्त्ता और विधि का ज्ञान रहता है पर परिस्थितियों के विषय में कल्पना की जाती है। ऐसी कल्पना परिस्थिति-सम्बन्धी (Concerning Collocation) कहलाती है। यह पता रहने पर कि किसने चोरी की और कैसे चोरी की, 'किस परिस्थिति में चोरी हुई' अगर इसकी कल्पना करें तो इसे ही परिस्थिति-सम्बन्धी कल्पना कहेंगे।

कभी कर्त्ता और परिस्थिति का तो ज्ञान रहता है पर हम विधि के विषय में कल्पना करते हैं। ऐसी कल्पना विधि-सम्बन्धी (Concerning Laws) कहलाती है। यह मालूम रहने पर कि किसने चोरी की और किस परिस्थिति में चोरी किया 'कैसे चोरी हुई' इसकी कल्पना करें तो इसे ही विधि-सम्बन्धी कल्पना कहेंगे।

किसी वैज्ञानिक अनुसन्धान में यह आवश्यक नहीं है कि कर्त्ता, या परिस्थिति या विधि के विषय में अलग अलग कल्पना किया जाय। कभी कभी तीनों के विषय में हम अनभिज्ञ रहते हैं; इसलिए साथ साथ तीनों की कल्पना करनी पड़ती है।

बहुत से तार्किकों ने कल्पना के इन तीन प्रकारों को नहीं माना है। उनका मत है कि परिस्थिति भी कारण ही का अंग है, इसलिए दो ही प्रकार की कल्पना होती है, कारण-सन्बन्धी और विधि-सम्बन्धी। वास्तव में जब भी कोई समस्या उपस्थित होती है तो दो रूप में ही 'क्यों' और 'कैसे'। 'क्यों' का अर्थ हुआ कारण बतलाना और 'कैसे' का अर्थ हुआ विधि बतलाना। इसलिए वास्तव में कल्पना के ये ही दो रूप हैं-कारण और विधि सम्बन्धी।

कारण-सम्बन्धी कल्पनाओं को व्याख्यात्मक (Explanatory) कल्पना भी कहते हैं। जब हम किसी कारण की कल्पना करते हैं तो उसका अर्थ उस घटना की व्याख्या करना है। विधि-सम्बन्धी कल्पना को वर्णनात्मक (Descriptive) कल्पना कहते हैं। जब हम किसी कार्य की विधि बतलाते हैं तो उसका अर्थ होता है उस घटना का कार्य्यक्रम वर्णन करना।

§४. *यथार्थ कल्पना की शर्तें* **(Conditions of a legitimate Hypothesis)**

यथार्थ और अयथार्थ कल्पना

सभी कल्पनाएं एक कोटि की नहीं होती हैं। साधारण कल्पना तो अनियमित और निराधार होती है। उनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब आकाश में ताराओं के टूटने से चुगलखोरों की सजा की कल्पना करते हैं तो यह केवल कोरी कल्पना ही है। ऐसी कल्पनाएँ अयथार्थ (illegitimate) होती हैं। उनका कोई वैज्ञानिक मूल्य नहीं होता। वैज्ञानिक कल्पनाएँ इस तरह निराधार और अनियमित नहीं होती है। वैज्ञानिक कल्पनाएँ यथार्थ

(legitimate) होती हैं। इसलिए ऐसी कल्पनाओं को कुछ शर्तों का पालन करना पड़ता है। इन शर्तों के कारण ही उन्हें निम्नकोटि की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

(१) कल्पनाओं को यथार्थ होने के लिए उनका स्पष्ट (clear), निश्चित (definite) और विरोधरहित होना आवश्यक है।

अनेकों बार ऐसी कल्पनाएं की जाती हैं जिनमें स्पष्टता का नाम तक नहीं रहता। कल्पनाएँ अज्ञात विषय को स्पष्ट करने के लिए ही की जाती हैं। यदि वे स्पष्ट न हुईं तो उनका कोई लाभ ही नहीं हुआ। पुरानी २ कहानियों में दैत्यों के प्राण किसी जानवर में होने की तथा उनके अकस्मात् गायब या विलीन हो जाने की चर्चा की जाती है। ऐसी कल्पनाएँ स्पष्ट नहीं कही जा सकतीं। उन्हें यथार्थ नहीं माना जा सकता क्योंकि इनसे विषय स्पष्ट होने के बदले पेचीदा हो जाता है।

कोई कल्पना ऐसी नहीं होनी चाहिए जो व्याघातक (self-contradictory) हो। विरोध होने से उस कल्पना को असत्य तथा अयथार्थ ही मानना उचित होगा। यदि यह कल्पना की जाय कि प्रकृति-समरूपता नहीं है अर्थात् एक ही परिस्थिति में पदार्थों का भिन्न आचरण होता है, तब यह व्याघातक सिद्ध होगी।

यथार्थ कल्पनाओं का निश्चित होना भी आवश्यक है। यदि कोई कल्पना द्विविधात्मक हो तो उसे यथार्थ नहीं माना जाता। यदि कल्पना करें कि राम ने या किसी दूसरे मित्र ने हमें धोखा दिया है तो इसमें निश्चयता का अभाव रहता है। किसी कारण की खोज करने में ऐसी कल्पनाओं से कुछ सहायता नहीं मिलती। हम तो "यह और वह" में ही फँसे रह जाते हैं। हमें कोई निश्चित संकेत नहीं मिलता। इसलिए कल्पनाएँ यथार्थ तब कहला सकती हैं जब उनमें निश्चयता हो।

(२) कल्पनाओं के यथार्थ होने की दूसरी शर्त यह है कि उनका किसी निश्चित सिद्धान्त (established truth) से विरोध न रहे। किसी सिद्धान्त को निश्चित तब माना जाता है जब उसको सिद्ध करने के लिए काफी छान-बीन की जाय तथा उसके निश्चित प्रमाण हों। इसलिए जब कोई नई कल्पना की

जाती है और उसका किसी निश्चित सिद्धान्त से विरोध होता है तो नई कल्पना के ही गलत होने की अधिक सम्भावना रहती है। यदि कोई ऐसी कल्पना करे कि बैलून का ऊपर उड़ना हवा में पृथ्वी से अधिक आकर्षणशक्ति के कारण है तब यह कल्पना अयथार्थ होगी।

(३) यथार्थ कल्पनाओं का वास्तविकता से सम्बन्ध होना चाहिए। निराधार कल्पनाएँ हवा में किला बनाने के समान हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है। कल्पनाएँ किसी घटना की व्याख्या के लिए की जाती हैं; इसलिए वे घटनाओं से सम्बन्धित रहें तभी यथार्थ कहला सकती हैं।

इसी सम्बन्ध में न्यूटन(Newton) ने कहा कि कल्पनाएं यथार्थ तब होती हैं जब वे वास्तविक (vera causa) हों। वास्तविक का अर्थ है कि जिस घटना के कारण की कल्पना की जाय वह वास्तविक हो। मान लिया जाय कि कोई मनुष्य कहीं दो दिन के लिए चला गया है तो उसके मृत्यु के कारण की कल्पना कोई करे तब वह कल्पना अयथार्थ होगी। वास्तव में जिस घटना के कारण की कल्पना की गई है वह घटना ही अवास्तविक है। वैसी कल्पना भी अयथार्थ हैं जो अवास्तविक कारण को कारण मान लें। यदि किसी को तपेदिक हो जाय और यह कल्पना की जाय की यह भूत या जादू-टोना के कारण है तो यह अयथार्थ कल्पना होगी। जादू-टोना या भूत यथार्थ वस्तु नहीं हैं।

वास्तविक (vera causa) का यहाँ अर्थ है कि जिसका प्रमाण मिल सके और जिसके विचार करने में असंगति न हो। यूं तो वास्तविक साधारणत: उसेही कहा जाता है जिसका ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा हो। पर विज्ञान में ऐसी सत्ताएं हैं जो इन्द्रियों के परे हैं और वास्तविक हैं, जैसे, अणु, आकाश,इत्यादि। इनका ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा नहीं होता पर वे वास्तविक हैं क्योंकि उनके विचार करने में कोई असंगति नहीं होती। इसलिए न्यूटन ने जब यह कहा है कि यथार्थ कल्पना को वास्तविक (vera causa) होना चाहिए तो इसका अर्थ यह है कि कल्पनाएं ऐसी हों कि उनके विचार में कोई असंगति नहीं हो और उनका प्रमाण मिल सके। वास्तविक होने का यहाँ अर्थ यह नहीं है कि वे इन्द्रिए-जन्य ही हों।

(४) यथार्थ कल्पनाओं का सब से मुख्य लक्षण तो यह है कि वे परीक्षा के योग्य (verifiable) होती हैं। बहुत सी कल्पनाओं की परीक्षा करना असम्भव हो जाता है। बहुधा लोग कहते हैं कि ईश्वर के कोप के कारण महामारी होती है। यह कल्पना सत्य है या असत्य यह तो परीक्षा के उपरांत ही निश्चित रुप से कहा जा सकता है। लेकिन ईश्वर के कोप की परीक्षा कैसे हो ? किस यंत्र या उपाय द्वारा इसे पता लगाएँ ? ऐसी कल्पनाओं की परीक्षा नहीं की जा सकती। जो कल्पना परीक्षा के योग्य हो, अर्थात् जिनकी परीक्षा करना सम्भव हो उसे ही यथार्थ कल्पना कह सकते हैं।

कल्पनाओं में इन लक्षणों (marks) का होना आवश्यक है। इन्हीं के कारण उनकी गणना कोरी कल्पनाओं में नहीं, अपितु यथार्थ कल्पना में होती है और उनका वैज्ञानिक मूल्य भी होता है। लेकिन यथार्थ कल्पना का अर्थ यह नहीं लगा लेना चाहिए कि इन शर्तों के पालन करने से वे सिद्ध हो गईं। यथार्थ कल्पनाएं परीक्षा के उपराँत गलत भी हो सकती हैं। उन्हें सिद्ध करने के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है। इन शर्तों के पालन करने से तोउन्हें केवल उच्च कोटि की कल्पना समझी जाती है।

§५. *कल्पना के प्रमाण* (Proofs of a Hypothesis)

कल्पना तो सम्भावना मात्र है। यह सत्य या असत्य दोनों ही हो सकती है। अब प्रश्न है कि किन युक्तियों द्वारा किसी कल्पना की सत्यता या असत्यता की परीक्षा की जाती है ?

(१) परीक्षा (Verification)—किसी कल्पना को सिद्ध करने के लिये उसकी परीक्षा आवश्यक है। परीक्षा के उपरांत ही हम कह सकते हैं कि कोई कल्पना सत्य है या असत्य। परीक्षा करने का अर्थ होता है जाँच करना। मान लें कि दूर में कोई दौड़ा जा रहा है। मैं उसे पहचान न सका पर कल्पना। किया कि वह राम है। यह कल्पना सिद्ध समझी जायगी, जब वास्तव में हम देख लें कि वह राम ही है।

परीक्षा सीधी (direct) हो सकती है या फेर की (indirect)। सीधी परीक्षा करने का अर्थ है वास्तव में प्रत्यक्ष कर लेना। सीधी परीक्षा निरीक्षण (Observation) द्वारा की जा सकती है या प्रयोग (Experiment) द्वारा। जहाँ

निरीक्षण से काम चल जाता है वहां कल्पना की परीक्षा उसी के द्वारा करते हैं। वैज्ञानिकों ने कल्पना किया कि Uranus की चाल में गड़बड़ी किसी नक्षत्र के कारण होती है। इस प्रकार दूर्बीन से देखने पर नेपचून का पता चला। कहीं कहीं प्रयोग द्वारा भी परीक्षा करने की आवश्यकता आ पड़ती है। रेशम की कीड़ों का पता प्रयोग द्वारा लगाया गया है।

यह आवश्यक नहीं है कि जिन कारणों की या विषयों कि कल्पना की जाय उन पर निरीक्षण और प्रयोग किया ही जा सके। अणुओं का या विद्युत्-शक्तियों का या बहुत दूर स्थित तारों का या ऐसे और विषयों का मनुष्य निरीक्षण नहीं कर सकता है। कुछ पर तो प्रयोग भी सम्भव नहीं है। यदि किसी ऐसे विषयों की कल्पना की जाती है तब उनकी परीक्षा फेर की रीति (Indirect Method) से की जाती है। उनकी स्थिति को सत्य मानकर कोई फल निकाला जाता है। यदि उनके फल यथार्थ होते हैं तो उस कल्पना को भी सत्य मान लिया जाता है। मान लें कोई बाहर से आकर मुझ से कहता है कि मेरा छोटा भाई रात में बिना मेरी आज्ञा के बाहर चला गया है। मैं इसकी परीक्षा करना चाहता हूँ। मैं उसकी कोठरी में जाकर देखता हूँ कि उसका जूता (जो सदा वहीं रहता है) नहीं है इसलिए विश्वास कर लेता हूँ कि वह बाहर अवश्य गया है। यह परीक्षा फेर की रीति से हुई। यदि बाहर जाकर स्वयं उसे बाहर में देखता तो वह सीधी रीति होती।

कभी कभी इन दोनों रीतियों का प्रयोग कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में अप्रत्यक्ष उदाहरणों से उसे प्रमाणित किया जाता है। यदि भावात्मक उदाहरण मिलते हैं तो उसे सत्य माना जाता है और यदि कुछ उदाहरण उसके विरोध में मिलते हैं तो उसे हम असत्य समझ लेते हैं। कल्पनाओं के सिद्ध करने का यह कमजोर प्रमाण है।

(२) केवल परीक्षा ही किसी कल्पना की सत्यता का प्रमाण नहीं है। मान लें कि किसी विद्यार्थी ने आत्महत्या कर ली है। मैंने कल्पना किया कि परीक्षा में असफल होने के कारण उसने ऐसा किया है। स्कूल से पता चलता है कि वास्तव में वह विद्यार्थी असफल हुआ है। इससे यह सिद्ध नहीं हुआ कि उसने असफल होने के कारण ही आत्महत्या की। यह भी सम्भव है कि अपनी निर्धनता के

कारण उसने ऐसा किया हो। इसलिए जिस विषय की कल्पना की जाती है वह जब उसी से पूरा स्पष्ट हो जाय तब उस कल्पना को सिद्ध समझा जाता है। कल्पनाएँ अनजान विषयों की व्याख्या करने के लिए की जाती हैं। यदि उनसे उस विषय की पूरी पूरी व्याख्या हो जाती है तो इससे उनके सत्यता का प्रमाण मिलता है।

(३) किसी कल्पना का सबसे श्रेष्ठ प्रमाण यह है कि केवल उसीसे (एक ही से) विषय कि व्याख्या हो जाय। यदि कोई दूसरी बात से भी उस विषय की व्याख्या होती है तब दोनों को सत्य नहीं माना जा सकता है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक ही विषय में दो कल्पनाएँ एक बार ही उठ खड़ी होती हैं। दोनों से घटना की व्याख्या हो जाती है। उदाहरणार्थ, किसी छोटे स्टेशन पर हम गाड़ी पकड़ने के लिए जाते हैं; दुर्भाग्यवश १० या १५ मिनट देर हो जाती है; गाड़ी स्टेशन पर नहीं मिलती तो दो कल्पनाएँ उठती हैं, गाड़ी चली गई या गाड़ी आई ही नहीं क्योंकि लेट है। दोनों के कारण गाड़ी स्टेशन पर नहीं रह सकती है। किसी स्टेशन के कर्मचारी से पूछने की साहस नहीं है। इस अवस्था में किसी ऐसे उदाहरण (instance) से काम लेते हैं जिससे दोनों कल्पनाओं में से एक गलत सिद्ध होती है। यहां, जिधर से गाड़ी आने वाली है उधर के सिगनल को देखते हैं। सिगनल गिरा हुआ मिलता है इसलिए पिछली कल्पना ठीक मालूम होती है। ऐसे उदाहरणों को निर्णायक उदाहरण (Crucial Instance) कहा जाता है। निर्णायक उदाहरण का अर्थ है वैसा उदाहरण जो यह बता दे कि दो कल्पनाओं में कौन असत्य है। इसीसे सही कल्पना की भी परीक्षा हो जाती है। जिस प्रकार किसी अनजाने चौरस्ते पर साईनबोर्ड में उंगलियों द्वारा सही रास्ते का संकेत मिलता है उसी प्रकार ऐसे उदाहरणों से सही कल्पना का पता चलता है। ऊपर के उदाहरण में सिगनल का गिरा होना, निर्णायक उदाहरण है।

ऐसे निर्णायक उदाहरण निरीक्षण द्वारा प्राप्त होते हैं या प्रयोग द्वारा। पृथ्वी के घूमने के विषय में दो कल्पनाएँ हैं। पहली कल्पना पृथ्वी को स्थिर मानती है और दूसरी उसे घूमती हुई। दोनों ही कल्पनाओं से दिन, रात, ग्रहण मास-परिवर्तन, इत्यादि घटनाओं की व्याख्या हो जाती है। अब प्रश्न है कि

कौन-सी कल्पना माननीय है ? तारागणों के तेज का सिद्ध मार्ग से हटाव (aberration of stars) का केवल पहली कल्पना से व्याख्या होती है। इससे पहली कल्पना सिद्ध हो जाती है। इसे ही (aberration of light) निर्णायक उदाहरण कहेंगे।यह उदाहरण निरीक्षण द्वारा प्राप्त हुआ है।

ऐसे उदाहरण जब प्रयोग द्वारा प्राप्त होते हैं तो उन्हें निर्णायक प्रयोग (Experimentum Crusis) कहते हैं। प्रकाश (light) के विषय में दो कल्पनाएं हैं। एक, प्रकाश को एक प्रकार के तरंगों(waves) का फल बतलाती है और दूसरी प्रकाश को छोटे-छोटे प्रकाश-कणों की गति बतलाते हैं। पहली तरंग-सम्बन्धी कल्पना (Undulatory theory of light) और दूसरी कण-सम्बन्धी कल्पना (Corpuscular theory) कहलाती है। दोनों कल्पनाएं प्रकाश-सम्बन्धी सभी बातों की व्याख्या कर देती हैं। यहां एक निर्णायक उदाहरण की आवश्यकता है। लोगों ने विचार किया कि पहली कल्पना के अनुसार घने माध्यम की अपेक्षा प्रकाश की गति को रुकावट के कारण घट जाना चाहिये और दूसरी कल्पना के अनुसार घने माध्यम में अधिक आकर्षण के कारण कणों अर्थात् प्रकाश की गति बढ जानी चाहिए। जब कांच के लम्बे लम्बे टुकड़ों से प्रकाश की किरणें निकाली गईं, तो देखा गया कि वास्तव में प्रकाश की गति घट गई। इसलिए पहली कल्पना सही निकली। इस उदाहरण (instance) को निर्णायक प्रयोग कहा जाता है।

(४) सिद्ध कल्पनाओं के साथ संगति तथा सम्बन्धी विषयों की व्याख्या भी कल्पना के प्रमाण हैं। संसार में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ से सम्बन्धित हैं। कोई भी सिद्धान्त किसी भी विषय में काफी परीक्षा तथा प्रयोग के बाद ही स्थापित किया जाता है। यदि कोई कल्पना का उन सिद्धान्तों से संगति नहीं हो तो उस कल्पना में दोष मानना चाहिए और यदि संगति हो तो कल्पना की पुष्टि होती है।

इसके अलावा यदि कोई कल्पना ठीक है तो अपने सम्बन्धी-विषयों की भी व्याख्या उससे हो सकती है। किसी कल्पना से जितने अधिक विषय की व्याख्या हो उस कल्पना की उतनी ही अधिक पुष्टि होती है। इसे वेवेल ने विषयों का संयोग (Consilience of Induction) कहा है।

(५) यदि किसी कल्पना के द्वारा आगे की बात बतलाई जाय और वह ठीक

निकले तो यह भी उस कल्पना का एक प्रमाण है। उदाहरणार्थ, किसी नियम की कल्पना की गई और उससे भविष्य के विषय में कोई बात बतलाई गई। यदि वह बात सत्य हो तो इसका अर्थ है कि वह कल्पना भी सत्य है।

(६) कोई कल्पना जितनी व्यापक होती है उतनी ही पुष्ट उसे माना जाता है। यदि यह लक्षण नहीं भी हो तो भी कम से कम व्यापक नियमों से व्युतपन्न होने की सम्भावना ही किसी कल्पना की पुष्टि करती है।

§६. *कामचलाऊ कल्पना* (Working Hypothesis)

किसी कारण की कल्पना कर लेने पर उसकी परीक्षा की जाती है। यदि परीक्षा के बाद वह सही होती है तो उसे सत्य मान लेते हैं पर गलत होने पर दूसरी कल्पना की जाती है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि एक कल्पना के गलती होने पर दूसरी कल्पना फौरन मस्तिष्क में आ ही जाय। जब तक कोई दूसरी कल्पना नहीं प्राप्त होती उसी कल्पना से काम चलता है। ऐसी ही कल्पनाओं को "कामचलाऊ कल्पना" कहते हैं। कामचलाऊ कल्पना का यह अर्थ नहीं कि उल्टी सीधी कल्पना कर ली जाय। ऐसी कल्पनाएं पूर्णरूप से तो नहीं पर भविष्य की गवेषणा के लिए लाभदायक होती हैं और घटनाओं की अपूर्ण व्याख्या करती हैं। किसी पूर्ण अर्थात् सही कल्पना की अनुपस्थिति में कामचलाऊ कल्पना से कुछ काम चलता ही है। इसलिए ऐसी कल्पना जो बिल्कुल सही न हो, पर जिनसे कुछ काम चल रहा हो "कामचलाऊ कल्पना" कहलाती है।

§७. *कल्पना, सिद्धान्त* (Theory), *नियम* (Law) *और यथार्थता* (Fact)

कल्पना तो किसी विषय के निश्चित ज्ञान के पहले जो अटकल लगाया जाता है उसे कहते हैं। यह अटकल जब सिद्ध हो जाती है तो उसे सिद्धान्त कहा जाता है। सिद्धान्त में उतनी निश्चयात्मकता नहीं रहती। उसकी मीमांसा की जाती है और जब वह सही उतरता है तब उसे नियम कहते हैं। नियम जब पूर्ण रूप से मान्य हो जाते हैं तो वे यर्थाथता की दर्जा प्राप्त कर लेते हैं। उसे सहज ही में मनुष्य मान लेता है। उसमें कोई मीन मेख नहीं किया जाता। इस प्रकार देखते हैं कि कल्पना घटनाओं अर्थात् यथार्थता से आरम्भ होकर फिर यथार्थता की ही कोटि में पहुँच जाती है।

§८. *काल्पनिक प्रतिरुपक* (Representative fiction)

कभी कभी विज्ञान में किसी घटना की व्याख्या के लिए ऐसे वस्तुओं की कल्पना की जाती है जो बहुत सूक्ष्म होते हैं। वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें इन्द्रियों के द्वारा देखा नहीं जा सकता है और स्पर्श भी नहीं किया जा सकता है। वे हमारे इन्द्रियों के परे होते हैं, जैसे, अणु, electron,proton, आकाश।

इन्द्रियों के परे होने का अर्थ यह नहीं है कि वे मिथ्या (false) हैं क्योंकि उनके द्वारा बहुत सी घटनाओं की व्याख्या सफलतापूर्वक की जाती है। ऐसी अतीन्द्रिए वस्तुओं को बेन (Bain) ने काल्पनिक प्रतिरुपक(Representative fiction) कहा है। ये काल्पनिक हैं क्योंकि इनका केवल विचार किया जा सकता है पर इन्द्रियों के द्वारा उनका ज्ञान नहीं होता। ये प्रतिरुपक इसलिए कहे जाते हैं कि वे भौतिक पदार्थों के प्रतिरुप (representative) हैं।

§९. *कल्पना का महत्व* **(Importance of Hypothesis)**

किसी वैज्ञानिक अनुसन्धान में कल्पना का क्या महत्व है, इसके विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ तार्किकों ने इसे बहुत ही महत्वपूर्ण बतलाया है पर कुछ ने तो इसे बिलकुल ही बेकार कहा है। यहां उनके मतों की समीक्षा होगी।

सबसे पहले हम बेकन (Bacon) के मत का वर्णन करेंगे। उसके अनुसार विज्ञान में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। पदार्थों के निरीक्षण से ही उनके कारणों का पता लग सकता है। कल्पना करके तो हम पहले से ही उन कारणों को मान लेते हैं। इसलिए उसकी दृष्टि में कल्पना का कोई महत्त्व नहीं है। बेकन का मत उचित नहीं जान पड़ता। किसी पदार्थ के निरीक्षण के उपरांत तो उसके कारण के विषय में कोई न कोई बात मस्तिष्क में उठ ही जाती है। ऐसा होना तो स्वाभाविक है। ऐसा यदि न करें या न हो तो एक बार में ही निश्चित रूप से कारण का पता लग ही कैसे सकता है? बेकन ने स्वयं भी कल्पना का प्रयोग किया है।

न्यूटन ने भी कहा है कि 'मैं कल्पना नहीं करता' (Hypothesis non fingo)। दूसरे शब्दों में उसने भी कल्पना को महत्त्वपूर्ण नहीं बतलाया है।

पर यहां ध्यान रखना चाहिए कि स्वयं न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण नियम के निर्धारित करने में पहले कल्पना से काम लिया था। फल को गिरते देखकर निश्चित रूप से यह नियम उसे नहीं सूझ पड़ा। इसलिए न्यूटन ने कल्पना को बेकार नहीं बतलाया वरन् वे-सिरपैर की कल्पना का उपहास किया है। वैज्ञानिक कल्पना का महत्त्व उसने कम नहीं समझा है।

मिल (Mill) ने कल्पना के विरुद्ध तो कोई मत नहीं प्रगट किया है पर तर्कशास्त्र में उसका पहला स्थान वह नहीं देता है। तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रमाण (proof) से है, आविष्कार (discovery) से नहीं और कल्पना किसी आविष्कार के लिए आवश्यक है।

वैलेस और वेभेल (Whewell) ने कल्पना को बहुत ही महत्त्वपूर्ण बतलाया है। सच तो यह है कि किसी घटना के कारण का पता लगाने में बिना कल्पना के काम नहीं चल सकता। विज्ञान का लक्ष्य है संसार के वस्तुओं की व्याख्या करना। जिस पदार्थ के विषय में मनुष्य अनभिज्ञ रहता है उसकी व्याख्या पहले अन्दाज से ही करता है अर्थात् वह उसका अटकल लगाता है। इसे ही कल्पना कहते हैं। इसलिए कल्पना का विशेष महत्त्व है।

§१०. *कल्पना से लाभ* **(Uses of Hypothesis)**

किन्हीं घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित करने के लिए उसके बहुत से उदाहरणों का निरीक्षण करना पड़ता है। निरीक्षण के उपरांत कोई कल्पना की जाती है। उस कल्पना में, भिन्न उदाहरणों में जो सामान्य गुण है उसी का विचार रहता है। इसलिए कल्पना से यह विशेष लाभ है कि हमारी ज्ञान-दृष्टि जो भिन्न-भिन्न उदाहरणों में फंसी रहती है कल्पना करने के बाद नियमित (systematic) हो जाती है, क्योंकि उसमें केवल सामान्य गुण का विचार रहता है।

कल्पना ही आगमन का आरम्भबिन्दु (starting point) है। कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करना आगमन का लक्ष्य है; पर कार्य-कारण सिद्ध होने के पहले उसका संकेत मिलना आवश्यक है। इस संकेत को ही तो कल्पना कहते हैं। इसलिए आगमन में कल्पना का सबसे पहला स्थान है।

कल्पना ही के द्वारा किसी वैज्ञानिक अनुसन्धान में निरीक्षण और प्रयोग

नियंत्रित होते हैं। निरीक्षण और प्रयोग का अर्थ होता है नियमित रूप से या किसी लक्ष्य से किसी घटना को देखना। लक्ष्य का संकेत पहले से रहना तो आवश्यक है ही। जब तक कारण का संकेत नहीं मिलता निरीक्षण और प्रयोग होगा किसका ? इसलिये इन दोनों क्रियायों के लिए पहले कल्पना का उदय होना आवश्यक है।

बहुत बार वैज्ञानिकों के सामने ऐसा मौका भी आता है जब उनके अनुसन्धान का विषय उनके निरीक्षण या प्रयोग के दायरे के बाहर होता है। यदि किसी वैज्ञानिक को किसी ऐसे नक्षत्र के विषय में अनुसन्धान करना है जो दूर्बीन से भी नहीं देखा जा सकता तो ऐसी दशा में उसे कल्पना से ही काम चलाना पड़ता है। उस नक्षत्र की स्थिति की कल्पना करके उससे वह निगमन निकालता है अर्थात् वह उसकी कल्पना करता है और विचारता है कि यदि वह नक्षत्र वास्तव में है तो उसका क्या फल होगा ? फल निकाल कर वह उसकी परीक्षा करता है। यदि वह सिद्ध हो जाता है तो उसकी कल्पना भी सही है और यदि वह सिद्ध नहीं होता है तो उस कल्पना को वह त्याग देता है। इसलिए ऐसे अवसरों में कल्पना बहुत ही लाभदायक है।

अज्ञात विषयों की व्याख्या केवल कल्पना के ही द्वारा सम्भव है। जब तक हम निश्चित रूप से किसी विषय में ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते तब तक हमारे लिए उसकी व्याख्या अन्दाज या अटकल से ही सम्भव है; इसका कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए प्रकृति की बहुत सी अज्ञात घटनाओं की व्याख्या के लिए कल्पना आवश्यक हो जाती है।

विज्ञान के क्षेत्र में या कला के निर्माण में या साधारण जीवन व्यतीत करने में कल्पना का लाभ स्पष्ट है। अपने जीवन में कल्पना की आवश्यकता कितनी बार होती है कहा नहीं जा सकता। यही कला के क्षेत्र में भी सत्य है और विज्ञान में तो इसके फलस्वरूप प्राकृतिक नियम ही मौजूद हैं। दूसरे शब्दों में मनुष्य जाति के ज्ञान के लिए ही कल्पना आवश्यक है।

§११. *अभ्यास*

1. What is a Hypothesis ? How does it originate ? Explain.

2. What are the different forms of Hypothesis? Explain with examples.

3. Explain the conditions of a legitimate Hypothesis.

4. Point out the uses and importance of a Hypothesis.

5. What is meant by (i) Vera causa (ii) Experimentum crucis (iii) Consilience of Induction ? Explain.

6. What are the proofs of a Hypothesis?

7. What is the distinction between:

(a) 'Theory'and 'Law'.

(b) Working Hypothesis and a Descriptive Hypothesis.

सातवाँ अध्याय

कार्य-कारण सम्बन्ध के निश्चय करने की विधि

(Canons of Direct Induction)

§१. विषय-प्रवेश
§२. निराकरण के नियम (Principles of Elimination)
§३. The Method of Agreement
§४. The Joint Method of Agreement and Difference
§५. The Method of Difference.
§६. The Method of Concomitant Variations.
§७. The Method of Residues.
§८. मिल की 'विधियों' की समीक्षा
§९. मिल की विधियों की आलोचना
§१०. अभ्यास

§१. विषय-प्रवेश

संसार परिवर्तनशील है; इसमें सदा परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों में कुछ ऐसे हैं जिनका एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध है अर्थात् उनका होना या न होना एक दूसरे पर निर्भर रहता है। उनमें कुछ ऐसे भी हैं जिनका एक दूसरे से इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता। घटनाओं के अटूट सम्बन्धों को सिद्ध करना, आगमन का लक्ष्य है। पर किसी घटना के साथ ऐसी कितनी घटनाएं होती हैं जिनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं रहता; इसलिए, असम्बन्धित घटनाओं का निराकरण (elimination) करके ही सम्बन्धित घटनाओं का पता लग सकता है। मान लें कि किसी की मृत्यु हो गई हो। इस घटना के पहले बगल के मन्दिर में घंटा बज रहा था, एक बच्चा रो रहा था, उस सड़क पर लड़के खेल रहे थे, उस व्यक्ति ने विष खाया था, इत्यादि। इन घटनाओं में से सबका सम्बन्ध उसकी मृत्यु से नहीं है। घंटे के बजने या बच्चे के रोने या लड़कों के खेलने से उसकी मृत्यु नहीं हुई। इस घटना का सम्बन्ध उसके विषपान से है। यहां कारण पता लगाने के लिए असम्बन्धित

घटनाओं का निराकरण किया गया है। यह एक साधारण उदाहरण है। पर प्रकृति में इतनी सरलता नहीं है। जटिलता के कारण असम्बन्धित घटनाओं का पता लगाना और उनका निराकरण करना कठिन है। मिल (Mill) ने इसके लिए पांच पद्धतियों का उल्लेख किया है :—

(१) The Method of Agreement,
(२) The Method of Difference,
(३) The Joint Method of Agreement and Difference,
(४) The Method of Concomitant Variations और
(५) The Method of Residues

इन पद्धतियों के द्वारा किसी घटना से असम्बन्धित बातों का पता चलता है। उनके निराकरण में इनसे सहायता मिलती है; इसलिए, मिल ने इन्हें निराकरण-पद्धति (Methods of Elimination) भी कहा है। पर वास्तव में इन रीतियों का मुख्य उद्देश्य केवल निराकरण ही नहीं है। जब किसी घटना की असम्बन्धित बातों का पता चल जाता है तो कौन सी बात उससे सम्बन्धित है यह भी सिद्ध हो जाती है। ऊपर के उदाहरण में यह मालूम हो जाने पर कि घंटे का बजना, लड़कों का खेलना और बच्चों का रोना उस व्यक्ति की मृत्यु से सम्बन्धित नहीं है, यह स्पष्ट हो जाता है कि मृत्यु विषपान के कारण हुई है। निराकरण तो केवल कारण जानने का साधन-मात्र है। इसलिए इन रीतियों का केवल निषेधात्मक ही नहीं अपितु विध्यात्मक (positive) उपयोग भी है। इनका मुख्य लक्ष्य है निराकरण द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करना।

इन पद्धतियों को प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental Method) भी कहा जाता है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि इनमें केवल प्रयोग (Experiment) का ही व्यवहार होता है। इनमें निरीक्षण से भी काम लिया जाता है। वास्तव में अनुभव पर आधारित रहने के कारण इन्हें प्रयोगात्मक कहा गया है।

§२. *निराकरण के नियम* (Principles of Elimination)

निराकरण का अर्थ है हटाना ; मिल की पांचो पद्धतियां किसी जांच की जानेवाली घटना से असम्बन्धित स्थितियों को अलग कर कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करती हैं।

पर असम्बद्ध बातों का निराकरण कार्य-कारण नियम की परिभाषा से ही सम्भव है। कारण नियम की परिभाषा से ही 'जो कारण नहीं हैं' उसका बहिष्कार किया जाता है। उसीसे यह पता चलता है कि जटिल घटनाओं में कौन कारण है और कौन असम्बद्ध; अतः मिल की पद्धतियां, जिनका उद्देश्य कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करना है, कारण की परिभाषा पर ही आश्रित हैं। कारण की परिभाषा से ही पांचों पद्धतियों का नियामक (canons) या सिद्धान्त निकाला जा सकता है। किसी घटना का कारण उसकी नियत, अनौपाधिक पूर्ववर्ती घटना है। यही कारण की गुण-सम्बन्धी परिभाषा है। नियत का अर्थ है जो सदा साथ घटे। कारण की इस परिभाषा से ही निम्नलिखित सिद्धान्त निकलता है।

नियत पूर्ववर्ती घटना ही कारण है अतएव वह जो सदा साथ घटित न हो वह कारण नहीं है। दूसरे शब्दों में, किसी घटना के भाव में भी जिस घटना का अभाव हो वह उसका कारण नहीं हो सकता।

इसी सिद्धान्त पर मिल का Method of Agreement और Joint Method आश्रित हैं।

(i) Method of Agreement में जांच की जानेवाली घटना के दो-तीन उदाहरण लिए जाते हैं। उन उदाहरणों में वह बात जो एक उदाहरण में है और दूसरे में नहीं है पर तौभी जांच की जानेवाली घटना है तब वैसी बातें कारण नहीं हो सकतीं। अतः उनका बहिष्कार किया जाता है और इसलिए जो बात सभी उदाहरण में सामान्य रूप से मिलती है वही कारण सिद्ध होती है।

(ii) Joint Method में दो-तीन ऐसे उदाहरण लिए जाते हैं जिसमें जांच की जानेवाली घटना उपस्थित हो और दो-तीन ऐसे जिसमें जांच की जानेवाली घटना नहीं हो। इन उदाहरणों में वैसी बातें जो उस घटना की अनुपस्थिति में भी उपस्थित हैं कारण नहीं हो सकतीं। इसलिए वैसी बात जो उस घटना के अनुपस्थित रहने पर अनुपस्थित है और उपस्थित रहने पर उपस्थित हो, वही कारण है।

(iii) कारण की उपरोक्त परिभाषा से यह सिद्धान्त भी निकलता है कि वह घटना, जिसका भाव किसी घटना के अभाव में हो, उसका कारण नहीं हो सकता। इसी सिद्धान्त पर मिल का Method of Difference आश्रित है। इसमें दो उदाहरण लिए जाते हैं। एक में जांच की जानेवाली घटना रहती है और दूसरे में वह नहीं रहती और बातें ठीक पहली उदाहरण सी रहती हैं। इसमें वे बातें, जो दूसरे उदाहरण में उपस्थित रहती

है हालांकि जांच की जानेवाली घटना नहीं रहती, कारण नहीं हो सकतीं। अतः वह, जो उस घटना के उपस्थित रहने पर उपस्थित हो और अनुपस्थित रहने पर अनुपस्थित रहे, कारण है।

(iv) कारण के परिमाण-सम्बन्धी परिभाषा से भी निराकरण का सिद्धान्त निकलता है। कारण कार्य के बराबर होता है। इसलिए कारण में कोई परिवर्तन होने से कार्य में भी उसी अनुपात में परिवर्तन होगा। इसी सिद्धान्त पर मिल का Method of Concomitant Variations आश्रित है। उस Method के अनुसार दो घटनाओं में जब निश्चित अनुपात में सहपरिवर्तन हो तब उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध होता है।

(v) कारण की परिभाषा से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि वह घटना जो किसी एक का कारण है दूसरे की कारण नहीं हो सकती क्योंकि उस हालत में उसका एक के साथ नियत सम्बन्ध नहीं रहेगा। इसी पर मिल का पांचवां Method आश्रित है। Method of Residues में यह बतलाया गया है कि यदि किसी उदाहरण में सभी बातों की व्याख्या पूर्ववर्ती बातों से हो जाती है सिवाय एक के तब वही उस घटना का कारण होगी। वे बातें जिनसे दूसरे बातों की व्याख्या होती है उस घटना के कारण नहीं हो सकतीं अतः अवशेष (Residues) स्थिति ही उससे सम्बद्ध होगी।

§३. The Method of Agreement

'यदि किसी जांच की जानेवाली घटना के दो या उससे अधिक उदाहरणों में उस घटना के अतिरिक्त एक और बात सामान्य हो तो वह बात जो सब उदाहरणों में मिलती है, उस घटना के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध रखती है।'*

जिस घटना के कारण या परिणाम की जांच करनी रहती है उसके दो या दो से अधिक उदाहरण लिए जाते हैं। उन उदाहरणों में उस घटना की पूर्वगामिनी बातों को मिलाकर देखा जाता है कि कौन सी बात सब उदाहरणों में है। जो बातें एक उदाहरण में मिलती हैं पर दूसरे में नहीं, वे उस घटना का कारण नहीं हो सकतीं। वह बात जो सभी उदाहरणों में हो, उसे ही उस घटना का कारण माना जाता है। कारण का अर्थ ही है "वह जिसका भाव किसी घटना

*Mill के अनुसार Method of Agreement की परिभाषा :—

'If two or more instances of the phenomenon under investigation have only one circumstance in common, the circumstance in which alone all the instances agree is the cause (or effect) of the given phenomenon.

के भाव में हो"। वे बातें जिनका उक्त घटना के भाव में भी अभाव रहता है, उसका कारण कैसे हो सकती हैं ? एक सांकेतिक उदाहरण लें—

पूर्वगामिनी घटनाएँ	पश्चाद्भाविनी घटनाएँ
ट, स, क	घ, य, प, इत्यादि
र, म, क	घ, च, छ ,,
ल, फ, क	घ, ह, द ,,

इसलिए 'क' 'घ' का कारण है ।

घ एक घटना है, जिसके कारण की गवेषणा करनी है ।

तीन उदाहरण लिए गए हैं जिसमें 'घ' का भाव हो । उदाहरणों में 'घ' की अनेकों पूर्वगामिनी घटनाएँ हैं । पर सब उदाहरणों में 'क' सामान्य है । इस लिए 'क' 'घ' का कारण है । 'ट' और 'स' का पहले उदाहरण में भाव है पर दूसरे उदाहरण में 'घ' का भाव रहने पर भी उनका अभाव है । र, म, ल और फ का भी एक उदाहरण में भाव है पर दूसरे में 'घ' का भाव रहने पर भी उनका अभाव है । इसलिए उनसे 'घ' का कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं हो सकता ।

Method of Agreement निराकरण के नियम पर अवलम्बित है । कारण की परिभाषा से यह नियम व्युत्पन्न (derive) किया जाता है । जिस घटना के भाव में जिसका भाव हो और उस घटना के अभाव में जिसका अभाव हो वही उसका कारण है । दूसरे शब्दों में किसी घटना के भाव में जिसका अभाव हो वह उसका कारण नहीं हो सकता । ट, स, र, म, ल और फ का अभाव घटना के भाव में भी पाया जाता है, अतः 'क' ही 'घ' का कारण हो सकता है ।

इंगलैंड में उत्तरी-पूरबी हवा से लोगों को तकलीफ होती है । इसका कारण क्या है ? हवा कभी तो ठंढा रहती है, कभी गम; कभी तो उसमें झोंका रहता है परन्तु कभी वह मन्द-मन्द बहती है; कभी उससे दर्द होता है, कभी नहीं, यद्यपि उसमें धूल बहुत उड़ता है । इसे इस प्रकार समझो:—

उत्तरी-पूरबी हवा

पूर्वगामिनी	पश्चाद्भाविनी
गर्मी, धूल	कष्ट
ठंढा, धूल	कष्ट
तेज गति, धूल	कष्ट
मन्द गति, धूल	कष्ट, इत्यादि,

सभी उदाहरणों में धूल सामान्य है; इसलिए उस हवा में अधिक धूल उड़ने के कारण ही कष्ट होती है। यदि गर्मी से कष्ट होती तो दूसरे उदाहरण में ऐसा अनुभव नहीं किया जाता, क्योंकि यहाँ हवा ठंढी है। इसी प्रकार हवा की तेज गति या मन्द गति कष्ट के कारण नहीं हो सकते।

दो-तीन बार बरसात के दिनों में शीत में हम सोएं और हर बार दूसरे दिन ज्वर आ जाए, तो शीत में सोना ही ज्वर का कारण माना जाता है। किसी के पूर्ववर्ती होने से ही कोई घटना कारण नहीं कहलाती। सब उदाहरणों में केवल एक ही घटना उपस्थित रहती है इसलिए उसे कारण माना जाता है।

इस रीति द्वारा परिणाम ज्ञात रहने पर उसका कारण और कारण ज्ञात रहने पर उसके परिणाम का भी पता लगाया जा सकता है। यदि किसी घटना का कारण ढूढंना है तब सभी उदाहरणों में जो पूर्ववर्ती घटना सामान्य हो वही कारण सिद्ध होगी और यदि किसी घटना का फल जानना हो तो वह आनुवर्ती घटना जो सभी उदाहरणों में सामान्य हो वही उसका फल सिद्ध होगी।

इस रीति में किसी विशेष प्रकार के उदाहरण की आवश्यकता नहीं होती है; किसी घटना के दो तीन उदाहरणों को ही देखा जाता है। ऐसे उदाहरण निरीक्षण द्वारा मिल जाते हैं। प्रयोग की इसमें विशेष आवश्यकता नहीं होती; जब किसी खास प्रकार के उदाहरण की आवश्यकता होती तब प्रयोग आवश्यक होता क्योंकि प्रकृति में हमारे मन के लायक सभी उदाहरण नहीं मिलते। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रयोग का स्थान इस विधि में नहीं है। प्रयोग का व्यवहार भी इसमें किया जा सकता है पर चूंकि निरीक्षण के द्वारा ही इसमें

काम चल सकता है इसलिये इसे निरीक्षण-प्रधान-विधि (Method of Obser vation) कहा जाता है।

निरीक्षण-प्रधान-विधि होने के कारण इसके निष्कर्ष निश्चित नहीं होते। यदि निरीक्षण द्वारा किन्हीं दो घटनाओं को दो-तीन उदाहरणों में हम साथ पाते हैं तब उनमें कार्य- कारण सम्बन्ध होने की केवल सम्भावना है, निश्चयता नहीं। इसलिये Method of Agreement द्वारा निश्चयतापूर्वक कोई निष्कर्ष सिद्ध नहीं होता। इससे कार्य- कारण सम्बन्ध का संकेत अवश्य ही मिलता है।

(क) इस विधि के प्रयोग में कठिनाइयां और उनके परिहार की रीति

(i) सहचार आकस्मिक होने पर इस रीति के प्रयोग से भूल हो जाती है। सम्भव है कोई गौण बात भी कुछ उदाहरणों में पूर्ववर्तिनी हो जाय, तो उसे कारण नहीं माना जा सकता। जब भी हमारे एक मित्र आते हैं मेरा नौकर बीमार पड़ जाता है, तो मित्र का आना नौकर के ज्वर का कारण नहीं हो सकता क्योंकि यह सहचार आकस्मिक है। पर किसी घटना के उदाहरणों की अधिक संख्या देखने पर इस दोष का परिहार होता है।

(ii) कभी कभी उपाधियों (Conditions) को मुख्य कारण समझ लेने की भूल लोग कर देते हैं। यदि तीन प्रकार का विष अलग अलग पानी के साथ पान किया जाय तो सब का फल मृत्यु होगा। इस रीति के द्वारा विष तो बदलते रहे, पर सब में जल उपस्थित रहा इसलिए मृत्यु का कारण जल हुआ।

Joint Method के प्रयोग से यह दोष दूर होता है।

(iii) बहुकारणवाद (Plurality of Causes) साधारण जीवन में सत्य माना जाता है। इसकी सत्यता मान लेने से Method of Agreement द्वारा कारण का पता लगाना कठिन है। सांकेतिक उदाहरण में यह कहना कठिन है कि घटना 'स' के कारण या 'फ' के कारण या 'क' के कारण घटी। यह सम्भव है कि एक उदाहरण में कारण 'स' हो और दूसरे में 'फ'। बिजली से, आग से अथवा लालटेन से गर्मी होती है। पर इस रीति के अनुसार तीनों में कोई भी गर्मी का कारण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गर्मी रहने पर भी किसी एक का भाव और अभाव रहता है।

इस दोष को निगमन रीति (Deductive Method) द्वारा दूर किया जाता है। Joint Method द्वारा भी बहुत अंशों में यह कठिनाई दूर हो जाती है।

(iv)कभी कभी वास्तविक कारण इतना सूक्ष्म होता है कि उनके नहीं देखने की सम्भावना अधिक रहती है। इस रीति में अधिकतर निरीक्षण का ही प्रयोग किया जाता है, इसलिए कभी कभी मिथ्या कारण को ही वास्तविक कारण समझ लिया जाता है। बहुत दिनों तक इसी भूल से गन्दा पानी पीने के कारण मल पड़ना बतलाया जाता था। प्रयोग के बाद ही पता चला कि वैसे पानी पीने से मल पड़ता है जिसमें Bacillus (एक सूक्ष्म कीड़ा) रहता हो। यह कीड़ा अधिकतर गन्दे पानी में ही रहता है। पर वैज्ञानिक यत्नों का प्रयोग तथा सावधान रहने पर यह दोष नहीं होने पाता।

(v) यदि एक ही कारण के दो सहपरिणाम (co-effects) हों तो उन सहपरिणामों को इस रीति द्वारा कार्य और कारण समझ लेने को भूल की सम्भावना रहती है। प्रत्येक रात के पहले दिन और प्रत्येक दिन के पहले रात होती है, इसलिए इस रीति के द्वारा दिन, रात का और रात, दिन का कारण होगी। इसका परिहार Method of Difference द्वारा किया जा सकता है।

(vi) कभी कभी कारण और बातों के साथ इतना मिला हुआ होता है कि उसको अलग करना कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में इस रीति के प्रयोग में वास्तविक कारण को छोड़ कर दूसरे बातों को कारण मानने की भूल हो जाती है यह दोष निगमन रीति (Deductive Method) द्वारा दूर हो सकता है।

(vii) प्रकृति की घटनाएँ इतनी जटिल होती है कि उनमें पूर्ववर्ती और पश्चात् होनेवाली घटनाओं का पता लगाना कठिन हो जाता है। सांकेतिक निरूपण में अ, ब, स, फ,इत्यादि रख देना सरल है पर कैसे यह कार्य सम्पन्न हो इसकी रीति नहीं बतलाई गई है।

(viii) मिल ने बतलाया है कि वह बात जो सभी उदाहरणों में उपस्थित हो घटना का कारण होती है। जो वैज्ञानिक किसी घटना के कारण की गवेषणा करता है वह स्वयं सभी उदाहरणों में उपस्थित रहता है, इसलिए परिभाषा के अनुसार परीक्षक ही घटना का कारण हुआ।

(ख) *लाभ:*

(i) निरीक्षण का क्षेत्र विस्तृत है। जहां जहां प्रयोग होता है वहां निरीक्षण भी होता है पर जिन जिन घटनाओं का निरीक्षण सम्भव है उन सभी पर प्रयोग सम्भव नहीं है। दूसरे, निरीक्षण में कारण से कार्य और कार्य से कारण का पता चल सकता है पर प्रयोग द्वारा केवल कारण से कार्य का पता चलता है। यह निरीक्षण-प्रधान-विधि है। इसलिए इसका भी क्षेत्र और रीतियों से विस्तृत है।

(ii) लौकिक जीवन में इसका प्रयोग सरल है। हम लोग भी इसका अनेकों बार प्रयोग करते हैं क्योंकि निरीक्षण तो सभी कर सकते हैं।

(iii) यह तो सच है कि इस विधि द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। इसके द्वारा जो प्रमाण मिलते हैं उनसे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अमुक घटना का अमुक कारण है। पर दो-तीन उदाहरणों में जब एक ही बात सामान्य रीति से पाई जाती है तो उससे कार्य-कारण सम्बन्ध का संकेत अवश्य मिलता है। इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि अमुक घटना का अमुक घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीसे उसी घटना के, जो सब उदाहरणों में उपस्थित रहता है, कारण होने की सम्भावना अधिक रहती है। इसलिए कल्पना तथा सादृश्यानुमान की अपेक्षा कार्य-कारण सम्बन्ध का संकेत बतलानेमें इस विधि का अधिक मूल्य है। संकेत मिलने पर दूसरी विधियों से उसे सिद्ध किया जा सकता है। इसलिए सरांश हुआ कि इस विधि में सिद्ध करने की तो नहीं पर संकेत करने की शक्ति है। संकेत मिलने पर ही वैज्ञानिक गवेषणा आरम्भ होती है।

(iv) Method of Agreement और Unscientific Induction

दोनों में ही कुछ उदाहरणों को देख कर कोई नियम स्थापित किया जाता है। दोनों के फलों में केवल सम्भावना रहती है, निश्चयता नहीं। दोनों में संकेत करने की शक्ति है। पर दोनों में अन्तर भी है।

(१) व्यावहारिक आगमन में कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा नहीं की जाती, पर Method of Agreement में इसके लिए प्रयत्न किया जाता है।

(२) एक का व्यवहार केवल लौकिक क्षेत्र में है, दूसरे का उपयोग वैज्ञानिक क्षेत्र में भी होता है।

(३) एक में उदाहरणों की केवल गणना होती है दूसरे में उदाहरणों के वास्तविक गुण से सम्बन्ध रहता है।

(४) एक में केवल सम्भावना है क्योंकि कार्य-कारण सम्बन्ध का ज्ञान नहीं रहता है, दूसरे में भी सम्भावना है पर दूसरे कारण से। दूसरे में कार्य-कारण सम्बन्ध का ज्ञान तो रहता है पर उसके लिए पूर्ण प्रमाण नहीं रहता।

§४. The Joint Method of Agreement and Difference.

किसी घटना के उपस्थित रहने पर कोई दूसरी घटना भी उपस्थित रहे तो यह पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं होता है कि दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध है। निश्चित रूप से इसे सिद्ध करने के लिए अभावात्मक उदाहरण भी देखना आवश्यक है अर्थात् वैसे उदाहरण जिनमें उस घटना का अभाव हो। यदि उसके नहीं उपस्थित रहने पर दूसरी घटना भी अनुपस्थित रहती है तो प्रमाण मजबूत हो जाता है।

'यदि किसी जांच की जानेवाली घटना के दो या उससे अधिक उदाहरणों में कोई एक बात सब में पाई जाय और उस घटना के अभाववाले दो या अधिक उदाहरणों में उस बात की अनुपस्थिति के अतिरिक्त और अन्य बात सब में न पाई जाय तो केवल उसी बात का, जिससे दोनों प्रकार के उदाहरणों में भेद होता है, उस घटना से कार्य-कारण सम्बन्ध रहता है।'*

इसमें दो प्रकार के उदाहरण लिए जाते हैं। कुछ उदाहरण ऐसे होते हैं जिनमें जांच की जानेवाली घटना का भाव रहता है। कुछ ऐसे उदाहरण भी होते हैं जिसमें उस घटना का अभाव रहता है। भावात्मक उदाहरणों में केवल एक बात में समानता मिलती है। अभावात्मक उदाहरणों में भी केवल एक ही बात में समानता मिलती है—उस बात की अनुपस्थिति में; अर्थात् जब घटना उपस्थित रहती है तो किसी एक बात का भाव रहता है और उस घटना के अभाव में वह भी अनुपस्थित रहता है। इसलिए उस बात का, जिसमें दोनों

*"If two or more instances in which the phenomenon under investigation occurs have only one circumstance in common, while two or more instances in which it does not occur have nothing in common save the absence of that circumstance, the circumstance in which alone the two sets of instances differ, is the effect, or the cause, or an indispensable part of the cause, of the phenomenon"—Mill.

प्रकार के उदाहरणों में भेद होता है, उस घटना से अवश्य ही कार्य-कारण सम्बन्ध होगा।

सांकेतिक उदाहरण—

भावात्मक उदाहरण (Positive Instances)	अभावात्मक उदाहरण (Negative Instances)
पूर्वगामिनी-पश्चाद्भाविनी	पूर्वगामिनी-पश्चाद्भाविनी
क, ख, ग— घ, त, थ	ख, ग, ट,—त, थ, ब,
क, घ, ङ— घ, द, ध	ङ, प, ट,—ध, द, ल
क, च, छ— घ, न, य,	च, छ, फ—न, य, म

'क' 'घ' का कारण है।

इसमें दो प्रकार के उदाहरण लिए गए हैं, भावात्मक और अभावात्मक। एक में घटना 'घ' का भाव है, दूसरे में उसका अभाव। जिन उदाहरणों में घ का भाव है केवल 'क' उन सब में उपस्थित है। जिन उदाहरणों में 'घ' का अभाव है केवल 'क' ही का उन सब में अभाव है। इसलिए 'क' 'घ' का कारण सिद्ध होता है।

यह विधि भी कारण की परिभाषा पर ही अवलम्बित है। किसी घटना के भाव में जिसका भाव रहे और उसके अभाव में अभाव, तो वह उस घटना का कारण है अर्थात्, किसी घटना के अभाव में भी जिसका भाव रहे वह उस घटना का कारण नहीं हो सकता।

'घ' के भाव में 'क' का भाव है और उसके अभाव में 'क' का भाव है, अतः 'क' ही 'घ' का कारण है। 'घ' के अभाव में भी ख, ग, ट, प, ठ, च, छ, फ, इत्यादि का भाव रहता है, इसलिए उन्हें 'घ' का कारण नहीं माना जा सकता है। भावात्मक उदाहरणों से 'क' के कारण होने का संकेत मिलता है। उस संकेत की परीक्षा अभावात्मक उदाहरण में हम कर लेते हैं। यदि उस घटना के अभाव में 'क' का भी अभाव हो जाता है, तो अवश्य ही दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध है।

एक उदाहरण—टींडल ने इसी विधि से यह सिद्ध किया है कि कणों (motes) के कारण प्रकाश होता है। उसने दो प्रकार के उदाहरणों परीक्षा की, एक में

वायु में कण (motes) थे और दूसरे में, कणों को ताप द्वारा नष्ट कर दिया गया था। जहां कण थे वहां प्रकाश था, जहां कणों का अभाव था वहां प्रकाश का भी अभाव था; इसलिए कणों को ही उसने प्रकाश का कारण सिद्ध किया है।

Method of Agreement में समानता के आधार पर कारण सिद्ध किया जाता है। Joint Method में भी कारण सिद्ध करने का यही आधार है। इसमें उपस्थिति और अनुपस्थिति, दोनों में समानता है। इसलिए Joint Method को Method of Agreement का ही रूपान्तर माना जाता है।

इस विधि में किसी विशेष प्रकार के उदाहरण की आवश्यकता नहीं होती है। Method of Difference की भाँति इसमें ऐसे उदाहरण नहीं लिए जाते जिसमें केवल जांच की जानेवाली घटना का अभाव हो और बाकी बातें बिल्कुल पहले उदाहरण जैसी हों। ऐसे उदाहरण निरीक्षण द्वारा भी प्राप्त हो सकते हैं; इसलिए इस विधि को निरीक्षण-प्रधान-विधि कहा जाता है। कभी कभी इसमें प्रयोग द्वारा भी उदाहरण लिए जाते हैं। उस अवस्था में यह Method of Difference का रुपान्तर(modification) हो जाता है, क्योंकि जिन उदाहरणों में घटना-विशेष का अभाव रहता है उनमें और बातें बिल्कुल भावात्मक उदाहरण जैसी ही रहती हैं।

(क) कठिनाइयाँ

(१) सहचार को कार्य-कारण सम्बन्ध समझने की भूल की सम्भावना इस विधि में है। वास्तव में दो घटनाओं में यदि केवल सहचार सम्बन्ध हो तो इससे वे कार्य-कारण सी प्रतीत होती हैं। मानलें कि दो-तीन उदाहरणों में बिजली बादल की गरज के साथ देखी गई और दो-तीन उदाहरणों में दोनों घटनाएँ अनुपस्थित मिलीं तब इस विधि द्वारा दोनो में कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध होता है। पर वास्तव में दोनो घटनाओं में केवल सहचार का सम्बन्ध है।

(२) यदि एक ही कारण के दो सहपरिणाम हों तो इस विधि द्वारा उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध समझ लिया जायगा। सहपरिणाम होने के कारण एक के भाव और अभाव में दूसरे का भाव और अभाव होगा, इसलिए सहज में उन्हें कार्य-कारण समझ लिया जा सकता है।

(३) निरीक्षण-प्रधान विधि होने के कारण इसमें अज्ञात कारणों को न

देखने की भूल हो सकती है। यदि कोई सूक्ष्म कारण काम कर रहा हो तो वह निरीक्षण में छूट भी जा सकता है।

(४) किसी एक बात को पूर्ण कारण समझ लेने की सम्भावना इसमें बिल्कुल ही दूर नहीं होती। दो-तीन उदाहरणों में बन्दूक से आवाज निकलने के साथ-साथ गोली का भाव मिला और दो-तीन उदाहरणों में जब आवाज नहीं निकली तब गोली भी नहीं मिली। अतः इस विधि द्वारा यह सिद्ध होता है कि बन्दूक से आवाज निकलने का कारण है गोली। पर यह तो ज्ञात है कि गोली केवल एक उपाधि (condition) है सम्पूर्ण कारण नहीं।

(५) बहुकारणवाद से यह विधि बिल्कुल निवृत नहीं है। यह सच है कि अभावात्मक उदाहरणों के द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि 'क' 'घ' का कारण है और ख, ग, प, च, छ, इत्यादि घ के कारण नहीं हैं; पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि 'घ' का और कोई दूसरा कारण नहीं है।

(६) इस विधि में निरीक्षण का प्रयोग होने के कारण कार्य-कारण पूर्णतया सिद्ध नहीं होता। पर इससे कारण का संकेत अवश्य मिलता है।

(ख) गुण:—

(१) इस विधि का प्रयोग व्यावहारिक जीवन में आसानी से होता है। देखने से तो यह विधि कठिन प्रतीत होती है, पर वास्तव में इसका प्रयोग सरल है। दो-तीन बार चाय पीने से सर्दी सूख जाती है और सर्दी में चाय नहीं पीने से सर्दी सूखती नहीं है, तो यह सिद्ध होता है कि चाय के कारण सर्दी सूखती है।

(२) निरीक्षण-प्रधान विधि होने के कारण इसका क्षेत्र विस्तृत है।

(३) बहुकारणवाद के दोष से यह बहुत अंशों में निवृत्त हो जाता है।

भावात्मक उदाहरण से यह संकेत मिलता है कि 'क' 'घ' का कारण है पर ख, ग, च इत्यादि के भी कारण होने की सम्भावना उसमें रहती है। अभावात्मक उदाहरण से यह सिद्ध हो जाता है कि ख, ग, घ, इत्यादि कारण नहीं हो सकते क्योंकि उनके उपस्थित रहने पर भी 'घ' अनुपस्थित रहता है। इसलिए उन्हें कारण किसी भी हालत में नहीं माना जाता। इस प्रकार Method of Agreement का दोष इस विधि द्वारा बहुत अंशों में दूर हो जाती है।

(४) कार्य-कारण सम्बन्ध पूर्णतया नहीं सिद्ध होने पर भी इसके निष्कर्ष के

सत्य होने की सम्भावना बहुत अधिक रहती है।

Method of Agreement का रूपान्तर होने पर भी इस विधि की अन्तिम दो विशेषताएँ उससे अधिक हैं। बहुकारणवाद को मान लेने पर Method of Agreement का प्रयोग विफल हो जाता है और उस विधि के फलों के सत्य होने की सम्भावना कम रहती है। Joint Method में ये दोष नहीं आ पाते।

§५. Method of Difference

Method of Agreement के द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध का संकेत तो मिलता है पर उसका प्रमाण नहीं मिलता। वैसे संकेतों को सिद्ध करने के लिए Method of Difference की सहायता ली जाती है।

Method of Difference की परिभाषा—

'यदि कोई एक उदाहरण में, जिसमें जांच की जानेवाली घटना हो और दूसरे उदाहरण में, जिसमें वह घटना नहीं हो केवल यही भेद पाया जाय कि प्रथम उदाहरण में किसी एक बात का भाव हो और केवल उसीका दूसरे में अभाव, तो उस बात का उस घटना से कार्य-कारण सम्बन्ध रहता है।'*

इसमें दो उदाहरण लिए जाते हैं, एक अभावात्मक (positive) और दूसरा भावात्मक (negative)। भावात्मक उदाहरण में किसी घटना का भाव रहता है और उसी का अभाव अभावात्मक उदाहरण में रहता है। दोनों उदाहरण में सभी बातें एक-सी रहती हैं सिवाय एक के। उनमें अन्तर केवल यही रहता है कि पहली उदाहरण की पूर्वगामिनी बातों में से एक का दूसरे उदाहरण में अभाव रहता है। वह पूर्वगामिनी घटना जिससे दोनों उदाहरणों में भेद होता है उस घटना का कारण है।

एक सांकेतिक निरूपण

पूर्वगामिनी—	पश्चाद्भाविनी
भावात्मक उदाहरण—क, ख, ग	घ, च, छ
अभावात्मक उदाहरण—ख, ग	च, छ

इसलिए 'क' 'घ' का कारण है।

* 'If an instance in which the phenomenon under investigation occurs, and an instance in which it does not occur, have every circumstance in common save one, that one occurring only in the former; the circumstance in which alone the two instances differ is the effect, or the cause, or an indispensable part of the cause, of the phenomenon'— Mill.

मान लें कि 'घ' घटना का कारण सिद्ध करना है। एक भावात्मक उदाहरण लिया गया और एक अभावात्मक। दोनों उदाहरणों में केवल 'क' का अन्तर है। उस घटना के भावात्मक उदाहरण में 'क' का भाव है पर अभावात्मक उदाहरण में 'क' का अभाव है। और सब बातें एक-सी हैं। दोनों उदाहरणों में च और छ तथा पूर्वगामिनी घटनाएँ ख और ग हैं। 'घ' के अभाव में 'क' का भी अभाव है, अतः वही उस घटना का कारण है।

कारण की परिभाषा ही इस विधि का मूल सिद्धान्त है। किसी घटना के भाव में जिसका भाव हो और उसके अभाव में जिसका अभाव हो, उसे उस घटना का कारण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी घटना के अभाव में भी जिसका भाव हो वह उसका कारण नहीं माना जा सकता।

'घ' के भाव में 'क' का भाव है और उसके अभाव में उसका अभाव है। इसलिए 'क' ही 'घ' का कारण है। ख और ग का भाव 'घ' के अभाव में भी है, इसलिए उन्हें 'घ' का कारण नहीं माना जा सकता है।

इस विधि का दो तरीकों से प्रयोग हो सकता है—(१) पहले जांच की जानेवाली घटना का भावात्मक उदाहरण लें और दूसरे उदाहरण में उसे हटा लें। ऊपर का उदाहरण इसीका है। (२) पहले जांच की जानेवाली घटना का अभावात्मक उदाहरण लें और दूसरे उदाहरण में उसका भाव रखें। जैसे,

अभावात्मक उदाहरण—ख, ग	च, छ
भावात्मक उदाहरण—क, ख, ग	घ, च, छ

अतः 'क' 'घ' का कारण है।

उदाहरण—(१) यदि कोई एक दिन चाय पी ले और उसे नींद न आए, फिर दूसरे दिन वह चाय न पीए और उसे नींद आ जाय तो इस विधि से चाय ही निद्रा के अभाव का कारण है। (२) यदि कोई बच्चा रो रहा है और उसे चुप कराने का उपक्रम किया जा रहा हो पर वह चुप नहीं होता हो तो हम लेमनचूस दे देते हैं और वह चुप हो जाता है। इस विधि द्वारा लेमनचूस देना ही उसके चुप होने का कारण होगा। (३) यदि किसी पात्र में घंटी बजाई जाय तो उसका शब्द सुनाई पड़ता है। पर यदि उस पात्र की हवा निकाल कर उसमें घंटी बजाई

जाय तो उसका शब्द सुनाई नहीं पड़ता। अतः Method of Difference से सिद्ध किया जाता है कि वायु ही शब्द के संचार का कारण है।

Method of Agreement में समानता से 'कारण' सिद्ध किया जाता है। Method of Difference में केवल एक बात का भेद होता है और सब बातें समान रहती हैं। इसलिए इसमें दो ही उदाहरण लिया जाता है। एक ही बात में भेद होना उसके 'कारण' होने का प्रमाण है। अभावात्मक उदाहरण में केवल उस घटना का अभाव रहने से ही यह विधि सफल हो सकती है। सब बातों में पूर्ण समानता होनी चाहिए। मान लें कि किसी दूसरी घटना का भी अभाव हो गया तो उसके कारण भी किसी पूर्वगामिनी घटना का अभाव हो जा सकता है। वैसी दशा में जांच की जानेवाली घटना का कारण वह पूर्वगामिनी घटना नहीं भी हो सकती है। Method of Difference का व्यवहार करने में एक खास प्रकार के उदाहरण की आवश्यकता होती है। एक उदाहरण ऐसा हो जिसमें जांच की जानेवाली घटना उपस्थित हो और दूसरा ऐसा कि केवल जांच की जानेवाली घटना न हो और बाकी बातें बिल्कुल पहले जैसी हों। ऐसा तो तभी सम्भव है जब प्रबन्ध हमारे हाथ में हो। इसलिए इस प्रकार के उदाहरण प्रयोग द्वारा ही मिल सकते हैं, जिसमें यन्त्रों द्वारा परीक्षा करने की सम्भावना हो। अतः इस विधि को प्रयोग-प्रधान विधि (Method of Experiment) कहा जाता है। इसमें निरीक्षण द्वारा भी उदाहरण इकट्ठा किए जाते हैं पर उसका फल निश्चयात्मक नहीं होता।

(क) *कठिनाइयां*—

(१) कारण का संकेत मिलने पर ही इस विधि द्वारा उसे सिद्ध किया जा सकता है। किसी घटना का कारण ज्ञात नहीं रहने पर उसकी कल्पना द्वारा इस विधि का प्रयोग सम्भव होता है।

(२) इसमें केवल दो उदाहरणों की आवश्यकता है, जिनमें सिवा एक बात के सब बातें एक सी हों। ऐसा उदाहरण मिलना कठिन है। आज हमें कल से ज्यादा भूख है। देखने से तो यही मालूम होता है कि हमने दवा खाया है, केवल यही फर्क है पर अन्य भेद भी हो सकते हैं। कल से आज हमारा पेट साफ हो, यह भी फर्क हो सकता है। इसलिए इस विधि में प्रयोग से काम लिया जाता है।

(३) प्रयोग में यह ध्यान रहना चाहिये कि एक ही नई स्थिति बढाई जाय या घटाई जाय। एक से अधिक हो जाने पर फल दोषपूर्ण हो जाता है।

(४) बहुत सी घटनाओं पर प्रयोग सम्भव नहीं है; इसलिए उनपर यह विधि लागू नहीं है। इसका क्षेत्र सीमित है। सामाजिक या राजनैतिक घटनाएँ बड़ी जटिल होती हैं। उन क्षेत्रों में यह विधि काम नहीं करती।

(५) इसमें किसी घटना के शर्त को पूर्ण कारण समझ लेने की सम्भावना रहती है।किसी घटना के अभाव में उसकी शर्तों का भी अभाव हो जाता है। इसलिए इस विधि के अनुसार उस शर्त को उस घटना का पूर्ण कारण मान ले सकते हैं।

(६) प्रयोग में यह ध्यान रखना चाहिये कि कोई गुप्त कारण काम नहीं कर रहा हो। मान लें कि किसी मनुष्य को ज्वर हो और उसने औषधि का सेवन किया हो। यदि उसका ज्वर, दवा खाने के बाद उतर जाय तो यह आवश्यक नहीं है कि दवा के कारण ही ऐसा हुआ। ज्वर स्वयं भी उतर सकता है।

(७) इस विधि द्वारा यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अमुक घटना का अमुक कारण है; पर उस घटना का वही एक कारण है यह नहीं कहा जा सकता। नस से सर्दी छूट जाती है यह इससे सिद्ध होगा पर केवल नस से ही ऐसा होगा, तुलसी के चाय से नहीं यह सिद्ध नहीं होता। इसलिए बहुकारणवाद से इस विधि में भी कठिनाई होती है।

(८) ध्यानपूर्वक इसका प्रयोग नहीं होने से यदनन्तर तत्कारणकं दोष (Post hoc ergo propter hoc) होने की सम्भावना रहती है। नये घर में जाने पर यदि तत्काल घर में किसी की मृत्यु हो जाती है तो नए घर को ही मृत्यु का कारण लोग मानने लग जाते हैं। हमारे बहुत से अन्धविश्वासों का यही सूत्र है।

(ख) गुण—

(१) इस विधि के फल में निश्चयता होती है, क्योंकि इसमें प्रयोग से काम लिया जाता है। विज्ञानों में इस विधि के प्रयोग के अनेक उदाहरण हैं।

(२) दूसरी विधियों से कारण का केवल संकेत मिलता है, पर यह उसे सिद्ध करती है। इसलिए मिल ने इसे सबसे उत्तम विधि (Method of proof par excellence) माना है।

(३) इसमें केवल दो ही उदाहरणों की आवश्यकता होती है, इसलिए इससे समय की बचत होती है।

(४) व्यावहारिक क्षेत्र में इसका अधिक प्रयोग होता है। बच्चा रोता है तो मिठाई दी जाती है। वह बच्चा रोने को मिठाई मिलने का कारण समझ लेता है। अचानक गिर जाने से कहीं खून बहने लगती है। खून बहने का कारण गिरना ही बतलाया जाता है।

§६. The Method of Concomitant Variations.

जिस क्षेत्र में घटनाओं के परिमाण की माप हो सकती है, वहां Method of Agreement और Method of Difference का एक दूसरी रीति से प्रयोग होता है। इस रीति को Method of Concomitant Variations कहा जाता है।

'जब कोई घटना किसी दूसरी घटना के साथ किसी विशेष नियम से घटती या बढ़ती हो तो उन दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध माना जाता है।' *

इस विधि में जिस घटना की जांच होती है उसके कुछ घटने या बढ़नेवाले उदाहरण लिए जाते हैं। उस घटना के घटने या बढ़ने के साथ जब किसी नियम से कोई दूसरी घटना भी घटती या बढ़ती है, तो वही उसका कारण सिद्ध होती है। इसमें ऐसे उदाहरण नहीं लिए जाते जिसमें घटनाविशेष का अभाव हो। सब उदाहरणों में घटना भिन्न मात्रा में उपस्थित रहती है।

सांकेतिक उदाहरण :—

	पूर्वगामिनी	पश्चाद्भाविनी
(१)	क, ख, ग	घ, च, छ
(२)	$क^1$, ख, ग	$घ^1$, च, छ
(३)	$क^2$, ख, ग	$घ^2$, च, छ

इसलिए 'क' और 'घ' में कार्य-कारण सम्बन्ध है।

---

* 'Whatever phenomenon varies in any manner whenever another phenomenon varies in some particular manner, is either a cause or an effect of that phenomenon, or is connected with it through some fact of causation'.—Mill.

	पूर्वगामिनी	पश्चाद्भाविनी
(२)	क, ख, ग	घ, च, छ
	$क^1$, प, फ	$घ^1$, व, भ
	$क^2$, य, र	$घ^2$, ल, व

इसलिए 'क' 'घ' का कारण है।

ऊपर के उदाहरणों में क और घ में किसी नियम से परिवर्तन हो रहा है। जब 'क' बढ़ता है, तब 'घ' भी बढ़ता है। इसलिए दोनों में कार्य-कारण सम्बन्ध है।

यह विधि कारण की पारिमाणिक परिभाषा से निकाली गई है। कारण कार्य के बराबर होता है इसलिए कारण जब बढ़ता या घटता है तब कार्य भी उसी अनुपात में घटता या बढ़ता है। जब घटना के परिमाण के बढ़ने या घटने से दूसरी घटनाओं में कोई परिवर्तन न हो, तब वे उसका कारण नहीं हो सकतीं। इन उदाहरणों में 'घ' के घटने या बढ़ने से 'क' को छोड़ दूसरी घटनाओं में कोई परिवर्तन नहीं आता इसलिए 'क' को ही 'घ' का कारण माना जाता है।

इस विधि का प्रयोग दो प्रकार से हो सकता है।

(१) यदि कुछ उदाहरणों में, जिस घटना की जांच हो रही हो, वह और केवल एक बात और घटे या बढ़े और जितनी बातें हैं सब एक सी रहें, तब यह विधि Method of Difference का रूपान्तर होती है। पहला उदाहरण इसीका है। उनमें 'क' और 'घ' को छोड़कर सभी बातें बिल्कुल एक सी रहती हैं। ऐसे उदाहरण प्रयोग द्वारा ही मिल सकते हैं। इसलिए इस रूप में यह प्रयोग-प्रधान विधि हो जाती है।

(२) यदि कुछ उदाहरण लिए जांए, जिनमें सब बातों में भेद हो, लेकिन घटना-विशेष और केवल एक बात के घटने या बढ़ने में समानता हो, तब यह विधि Method of Agreement का रूपान्तर होती है। दूसरा उदाहरण इसी का है। उनमें 'क' और 'घ' के बढ़ने या घटने को छोड़कर सभी बातों में भेद है। ऐसे उदाहरण निरीक्षण द्वारा भी मिल सकते हैं क्योंकि इनमें किसी विशेष-प्रकार के उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। इसलिए इस रूप में यह निरीक्षण-प्रधान विधि हो जाती है।

सारांश यह हुआ कि साथ की घटनाएँ जब बिल्कुल एक सी रहती हैं तब यह M. of Difference का रूपान्तर होती है और जब साथ की घटनाएँ भिन्न रहती हैं तब यह M. of Agreement का रूपान्तर होती है।

यह भी आवश्यक नहीं है कि घटनाओं में परिवर्तन एक ही दिशा में हो अर्थात् जब एक बढ़ती हो तो दूसरी भी बढ़े और एक घटती हो तो दूसरी भी घटे। एक घटना का परिमाण बढ़ता हो तो दूसरी का निश्चित अनुपात में घट भी सकता है। खाद्य पदार्थों की जितनी कमी होती है उतना ही उसका दाम बढ़ता है। इसमें परिवर्तन उल्टी रीति से हुई है।

उदाहरण—(१) पानी में जितनी चीनी दी जाती है उसी ही मात्रा में मिठास बढ़ती है, इसलिए चीनी ही मिठास का कारण है।

(२) जितनी गर्मी बढ़ती है उतनी ही मात्रा में ताप-मापक यंत्र (Thermometer) का पारा उसमें ऊपर जाता है। इसलिए गर्मी के कारण पारा बढ़ता है। जब यह विधि M. of Difference का रूपान्तर होती है, तब उसीके दोष और गुण इसमें भी आ जाते हैं। इसी तरह M. of Agreement का रूपान्तर रहने पर उसके दोष-गुण इसके होते हैं।

(क) *विशेष गुण*—

(१) जहां घटनाओं के वेग और परिमाण की माप हो सकती है वहां यह रीति M. of Agreement तथा M. of Difference से अधिक लाभदायक है। माप करने से अधिक निश्चयता आती है और वैज्ञानिक महत्त्व बढ़ जाता है। इसमें कारण और कार्य की मात्रा का भी पता चलता है। उन विधियों की भाँति इससे केवल यही नहीं सिद्ध होता है कि किसी घटना का क्या कारण है अपितु कितने कार्य (effect) का कितना कारण है यह भी ज्ञात होता है। इसलिए उन विधियों के रूपान्तर रहने पर भी यह उनसे अधिक वैज्ञानिक है।

(२) प्रकृति में ऐसे अनेकों पदार्थ हैं जिनका बिल्कुल अभाव होना सम्भव नहीं है, जैसे, हवा, ताप, शक्ति, अणु इत्यादि। किसी पदार्थ से ताप का बिल्कुल अभाव होना सम्भव ही नहीं है; उनके मात्रा में फर्क हो सकता है, जैसे ताप कहीं कम या कहीं अधिक रह सकता है। इन्हें स्थायी कारण (Permanent cause) कहा जाता है। स्थायी कारणों में M. of Difference का प्रयोग नहीं

हो सकता, क्योंकि उनका बिल्कुल अभाव सम्भव नहीं है। M. of Difference में तो एक ऐसा उदाहरण चाहिए जिसमें उनका बिल्कुल अभाव हो। इस क्षेत्र में M. of Concomitant variations का प्रयोग ही सम्भव है, क्योंकि इसमें केवल उन्हें घटाने-बढ़ाने की आवश्यकता है और ऐसा सम्भव भी है।

(३) सामाजिक क्षेत्र में भी इसका प्रयोग होता है, क्योंकि वहाँ सभी घटनाओं की परीक्षा की अपेक्षा उनके मात्रा को देखना सरल है, जैसे, अधिक जनसंख्या होने से मृत्यु की संख्या भी बढ़ती है।

(ख) दोष:—

(१) जहां परिमाण में भेद होता है केवल वहीं इस विधि का प्रयोग हो सकता है; गुण के बढ़ने और घटने से इसका सम्बन्ध नहीं है। गुण का परिवर्तन मापा नहीं जा सकता। लाल रंग अधिक लाल होने से दूसरे किस्म का हो जाता है। इसलिए उस क्षेत्र में यह विधि लागू नहीं होती।

(२) किसी नियम से घटने और बढ़ने की एक सीमा होती है। उस सीमा के बाद घटने और बढ़ने का नियम बदल जाता है। जितनी गर्मी बढ़ती है, उतना फैलाव होता है और जितनी ठंडक होती है उतना सिकुड़न होता है। पर इसकी भी एक सीमा है। ३९·४° से कम ताप होने पर जल का विस्तार होने लगता है। नियम के अनुसार जल को और सिकुड़ना चाहिए था, पर ऐसा नहीं होता। अतः इस विधि का उस सीमा के अन्दर ही प्रयोग सम्भव है।

(३) अकस्मात् किसी कारण से किसी घटना का परिमाण बढ़ने या घटने लगे तो वहां इस विधि का प्रयोग नहीं हो सकता है। कभी-कभी कारण कार्य में फौरन परिणत नहीं हो जाता। कारण की शक्ति संचित होकर अकस्मात् किसी परिणाम को उत्पन्न कर देती है। ये इस विधि के क्षेत्र से बाहर हैं।

(४) यदि घटनाओं के घटने-बढ़ने का दो भिन्न क्रम है अर्थात् जब किसी घटना का परिमाण घटता-बढ़ता है तो दूसरी घटना का गुण बदलता है तब इस विधि का प्रयोग नहीं हो सकता। गुण बदलने से किस्म बदल जाता है और उनका माप करना सम्भव नहीं होता, इसलिए वहां यह विधि काम नहीं कर सकती। उदाहरणार्थ, कितनी वायु की कँपकपी से ध्वनि की कितनी ऊँचाई होगी इस विधि द्वारा यह पता नहीं चल सकता है।

(५) कभी-कभी दो बातें एक साथ घटती या बढ़ती हैं, पर वे कार्य और कारण नहीं रहतीं जैसे, जाड़ा और रात का बढ़ना, जितनी जाड़ा बढ़ती है, रात उतनी ही बड़ी होती है। क्योंकि जाड़े के दिनों में रात बड़ी होती है, अतः इस विधि द्वारा यह सिद्ध करना कि जाड़ा के कारण रात बड़ी होती है गलत होगा। वास्तव में दोनों घटनाएँ एक ही कारण के सह-परिणाम है।

§७. The Method of Residues

प्रकृति में प्रायः कई कारण मिलकर किसी कार्य की उत्पत्ति करते हैं। यदि ऐसी घटनाओं में बहुत सी बातों का कारण मालूम रहे तो शेष बातों का कारण इस विधि द्वारा सिद्ध होता है। इस विधि की परिभाषा :—

'यदि किसी घटना की कुछ बातों की व्याख्या कुछ पूर्वगामिनी बातों से हो जाय तो उस घटना की बाकी बातों की व्याख्या शेष पूर्वगामिनी घटना से हो जाती है।' *

किसी घटना में कुछ बातों का कारण ज्ञात रहता है तब बाकी बात को शेष पूर्वगामिनी घटना के कारण मान लिया जाता है।

सांकेतिक उदाहरण:—

पूर्वगामिनी		पश्चाद्भाविनी
क, ख, ग, फ		घ, च, छ, ज
ख—च का कारण है ग—छ का कारण है फ—ज का कारण है		(यह पूर्व अनुभव द्वारा ज्ञात रहता है।)

इसलिए 'क' 'घ' का कारण है।

इस विधि में पूर्व अनुभव द्वारा यह मालूम रहना आवश्यक है कि 'च' का कारण 'ख', 'छ' का 'ग' और 'ज' का 'फ' है। शेष एक ही बात बच जाती है, 'क'; इसलिए 'क' ही 'घ' का कारण है।

कारण-नियम ही पर यह विधि भी आधारित है। कोई घटना जो एक का कारण है, दूसरे का कारण नहीं हो सकती। इसलिए, 'ख', 'ग' या 'फ', 'घ' के कारण नहीं हो सकते। केवल 'क' ही 'घ' का कारण हो सकता है।

---

*'Subduct from any given phenomenon such part as is known by previous inductions to be the effect of certain antecedents, and the residue of the phenomenon is the effect of the remaining antecedents'—Mill

एक उदाहरण—एक दूकानदार पहले बर्तन को तौल लेता है; फिर बर्तन और तेल को एक साथ तौलता है। कुल तौल में से बर्तन के तौल को घटाकर वह तेल का वजन निकाल लेता है। इसमें उसने Method of Residues का प्रयोग किया है।

बर्तन+तेल.....१० सेर

बर्तन.....५ सेर

इसलिए तेल—५ सेर।

यदि इस विधि का वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग किया जाय तो यह M. of Difference का रूपान्तर होती है। दोनों ही में दो उदाहरण लिए जाते हैं। दोनों उदाहरणों में एक ही बात में भेद रहता है, पर और बातों में बिल्कुल समानता। पर M. of Residues पूर्व अनुभव पर आधारित रहती है।

(क) गुण:—

(१) किसी भी घटना की वैज्ञानिक व्याख्या में सभी बातें एक बार ही स्पष्ट नहीं हो जातीं। उस घटना में कुछ न कुछ व्याख्या करने के लिए शेष रह ही जाती है। इन शेष बातों (residual factors) का साधारण दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है पर वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या तभी पूर्ण होती है जब किसी घटना की सभी बातें उससे स्पष्ट हो जायँ। किसी घटना की बहुत-सी बातों के मालूम रहने पर शेष बातों का कारण ज्ञात करने में यह विधि ही सहायक है।

शेष बातों के कारण का पता लगाने के सिलसिले में ही कितने बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं। नेपचून तथा आरगन का आविष्कार इसी विधि का परिणाम है। यूरेनस नामक ग्रह के मार्ग का हिसाब लगाया गया है। देखने पर वह पूर्णतया उस नियम का पालन करते नहीं पाया गया। अपने हिसाब के अनुसार मार्ग से थोड़े से हटने का कारण लोगों ने किसी ग्रह की आकर्षण-शक्ति बतलाया। दूर्बीन से देखने पर यूरेनस को विचलित करनेवाला ग्रह नेपचून मिला। इस प्रकार बड़े-बड़े आविष्कारों का संकेत इसी विधि द्वारा मिला है। इसलिए इसे आविष्कार-पद्धति कहना अच्छा होगा।

(२) जब अनेकों कारण मिलकर किसी कार्य की उत्पत्ति करते हैं और उसके

निरीक्षण में कोई विशेष कठिनाई आ पड़ती है तो यह विधि शेष बातों की व्याख्या करने में सहायक होती है।

(ख) दोष:—

(१) इस विधि द्वारा कारण सिद्ध नहीं होता। कारण का संकेत तो अवश्य मिलता है पर बाद में उसकी परीक्षा की आवश्यकता होती है। 'क' 'घ' का कारण है, यह परीक्षा करके ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

(२) यह विधि निगमनात्मक है। पूर्व अनुभव के ज्ञान से इसमें फल का अनुमान किया जाता है। यह ज्ञात रहने पर कि च का कारण ख है, छ का ग और ज का फ, निगमन रीति से निष्कर्ष निकलता है कि 'क' 'घ' का कारण होगा।

§८. *मिल की विधियों की समीक्षा*

(१) विधियों में सम्बन्ध

मिल ने कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करने के लिए पांच नियमों का उल्लेख किया है। वे सभी एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। वास्तव में उनमें दो ही मूल हैं, Method of Agreement और Method of Difference। बाकी विधियां उन्हीं दोनों के रूपान्तर हैं।

Joint Method तो M. of Agreement का रूपान्तर है। M. of Agreement से कारण का केवल संकेत मिलता है तथा बहुकारणवाद से दूषित हो जाने की सम्भावना रहती है। अत: उस दोष से निवृत्त होने के लिए अभावात्मक उदाहरण इकट्ठा किया जाता है। जब एक ही घटना का भाव पहले उदाहरण में मिलता है और केवल उसी का अभाव दूसरे उदाहरणों में, तब उसके कारण होने का प्रमाण निश्चित होता है।

M. of Concomitant Variations दोनों विधियों, M. of Agreement और M. of Difference, का रूपान्तर हो सकता है। यदि दो-तीन उदाहरणों में सभी बातें एक सी रहती हैं सिवाय एक के तब तो यह M. of Difference का रूपान्तर होता है और यदि और बातें भिन्न रहती हैं तब M. of Agreement का। M. of Residues, M. of Difference का रूपान्तर है। दोनोंमें एक ही प्रकारके उदाहरण लिए जाते हैं। उनमें अन्तर केवल यही है कि एक में अभावात्मक

उदाहरण (negative instances) प्रयोग द्वारा प्राप्त होता है और दूसरे में पूर्व अनुभव द्वारा।

दोनों मूल विधियों में M. of Agreement से कारण का केवल संकेत मिलता है। यह निश्चित रूप से सिद्ध होता है M. of Difference से। अत: पीछली को ही प्रमाण मूलक माना जाता है।

तार्किकों ने M. of Agreement और M. of Difference को भी आपस में एक दूसरे का रूपान्तर बतलाया है। पहली वधि में केवल एक घटना सभी उदाहरणों में सामान्य है और बाकी भिन्न। दूसरे में, दो उदाहरणों में सभी बातें समान रहती हैं केवल एक में भेद होता है। इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध घटनाओं के भाव और अभाव से है। पर इससे यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि उनमें से कोई एक ही मूल है और दूसरा उसका रूपान्तर। बात यह है कि समानता और भेद एक ही पदार्थ के दो पहलू हैं। जब दो उदाहरणों में कुछ बातों में समानता होगी तब दूसरी बातों में भेद होगा ही और यदि भेद होगी तो उनमें कुछ समानता अवश्य ही होगी। अत: दोनों विधियां सम्बन्धित तो अवश्य हैं पर दोनों मूल हैं।

(२) Method of Agreement *और* Method of Difference *में भेद*

M. of Agreement	M. of Difference
(क) उदाहरणों में एक घटना की समानता के अतिरिक्त सभी बातों में भिन्नता रहती है।	(क) उदाहरणों में एक घटना की भिन्नता को छोड़कर सभी बातों में समानता रहती है।
(ख) यह आविष्कार-पद्धति है।	(ख) यह प्रमाण-पद्धति है।
(ग) यह निरीक्षण-प्रधान पद्धति है।	(ग) यह प्रयोग-प्रधान पद्धति है।
(घ) इससे कारण का संकेत मिलता है।	(घ) इससे कारण का प्रमाण प्राप्त होता है।
(ङ) इसका क्षेत्र विस्तृत है।	(ङ) उसके समान इसका क्षेत्र विस्तृत नहीं है।

(३) M. of Difference *और* M. Residues *में भेद*

M. of Difference	M. of Residues
(क) दो उदाहरणों की आवश्यकता होती है पर वे प्रयोग द्वारा प्राप्त होते हैं।	(क) दो उदाहरणों की आवश्यकता होती है पर वे पूर्व अनुभव पर आधारित रहते हैं।

(ख) वैज्ञानिक मूल्य अधिक है।	(ख) इनका उतना वैज्ञानिक मूल्य नहीं है।
(ग) यह मूल पद्धति है।	(ग) यह M. of difference का ही रूपान्तर है।
(घ) यह निगमनात्मक नहीं है।	(घ) यह निगमनात्मक है।

(४) *निरीक्षण-प्रधान विधि या प्रयोग-प्रधान विधि?*

Methods of Observation or of Experiment ?

मिल की विधियों में निरीक्षण और प्रयोग दोनों की आवश्यकता होती है। वास्तव में दोनों क्रियाएँ विरोधात्मक भी नहीं हैं। जहां प्रयोग होता है वहां निरीक्षण तो आवश्यक ही है। तब भी दोनों में भेद है। विशेष प्रकार के उदाहरण प्रयोग द्वारा ही लभ्य हैं। 'विशेष प्रकार' का अर्थ होता है 'अपने मन के लायक' और मन लायक उदाहरणों की उपलब्धि तभी हो सकती है जब प्रबन्ध अपने हाथ में हो अर्थात् प्रयोग द्वारा। इसलिए उन विधियों को, जिनमें किसी खास प्रकार के उदाहरण की आवश्यकता होती है हम प्रयोग-प्रधान विधि कहते हैं। जिनमें किसी विशेष प्रकार के उदाहरण की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, उन्हें निरीक्षण-प्रधान विधि कहा जाता है। इस दृष्टि से (i) M. of Agreement, (ii) Joint Method और (iii) M. of Concomitant Variations (जब यह M. of Agreement का रुपान्तर होता है) निरीक्षण-प्रधान विधि हैं और (i) M. of Difference, (ii)M. of Concomitant Variations (जब यह M. of Difference का रूपान्तर होता है) तथा (iii) M. of Residues (वैज्ञानिक प्रयोगों में) प्रयोग-प्रधान विधि हैं।

(५) *प्रमाण-विधि या आविष्कार-विधि* (Methods of Proof orDiscovery)?

किसी नई बात का संकेत मिलने पर उसे आविष्कार कहा जाता है। आविष्कार होने पर उसके लिए प्रमाण देने से वह बात सिद्ध होती है। वास्तव में आविष्कार और प्रमाण सम्बन्धित हैं। किसी पदार्थ का आविष्कार होने पर ही उसके लिए प्रमाण दिया जाता है और प्रमाण रहने पर ही कहा जाता है कि उसका आविष्कार हुआ।

मिल की विधियों का उद्देश्य तो है कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करना पर प्रत्येक विधि यह पूरा पूरा सिद्ध नहीं कर पाती। कुछ विधियों द्वारा पूरा पूरा प्रमाण नहीं, केवल संकेत भर मिलता है। ऐसी विधियों को, जिनसे कार्य-कारण सम्बन्ध का केवल संकेत

मिले पूर्ण प्रमाण नहीं, आविष्कार-विधि कहा जाता है। उन विधियों को जिनसे कार्य कारण सम्बन्ध का पूर्ण प्रमाण मिले अर्थात् यह सम्बन्ध सिद्ध हो, प्रमाण-विधि कहा जाता है। इस दृष्टि से, निरीक्षण-प्रधान विधियां आविष्कार सूचक हैं क्योंकि उनसे कारण-सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता है और प्रयोग-प्रधान विधियाँ प्रमाण सूचक हैं, क्योंकि उनसे कारण-सम्बन्ध सिद्ध होता है। M. of Difference को मिल ने सबसे उत्तम प्रमाण-विधि माना है। इसी कोटि में M.of C. Variations (जब यह M.of Difference का रूपान्तर होता है) भी है। बाकी सब आविष्कार विधि की कोटि में हैं।

§६. *विधियों की आलोचना*

मिल ने कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चय करने की पांच विधियां बतलाई है। गणना के लिए मिल ने विधियां तो पांच बतलाई है पर वास्तव में उनका मूल रूप दो ही है। उसने स्वयं M. of Agreement और M. of Difference को ही मूल बतलाया है। उनमें भी पहली विधि से कारण-सम्बन्ध का केवल संकेत मिलता है और यह सिद्ध होता है दूसरी विधि से। इनके प्रयोग में अनेक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं।

(i) सभी विधियों में उदाहरणों के विश्लेषण के उपरांत पूर्ववर्ती घटनाओं की परीक्षा करके कारण-सम्बन्ध का प्रमाण दिया गया है। उदाहरणों का विश्लेषण कैसे हो, इसकी रीति नहीं बतलाई गई है। प्रकृति में ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं, जिनका विश्लेषण करके कह दिया जाय कि अमुक घटना पूर्ववर्ती है। मिल ने तो अपने उदाहरणों में सांकेतिक अक्षरों (A, B, C, D, etc) द्वारा आसानी से जटिलता को दूर कर दिया है। वास्तव में प्राकृतिक घटनाएँ बड़ी जटिल होती हैं। इसलिए कारण-सम्बन्ध सिद्ध करने में जो सबसे कठिन क्रिया है अर्थात् उदाहरणों का विश्लेषण, उसीके लिए मिल ने कोई रीति नहीं बतलाई है।

(ii) वास्तव में ये विधियां निगमनात्मक हैं। मैंने पहले ही बतला दिया है कि कारण की परिभाषा से इन्हें उत्पादित किया जा सकता है। कारण की परिभाषा को आधार-वाक्य मानकर किसी भी विधि का प्रयोग हो सकता है।

उदाहरण:—जिसके भाव में किसी घटना का अभाव रहे तो वह उसका कारण नहीं हो सकता अर्थात् जिसके भाव में किसी घटना का भाव हो तब पहली और दूसरी घटना में कार्य, कारण सम्बन्ध रहता है। अमुक घटना के भाव में दूसरे घटना का भाव रहता है—

इसलिए दोनों घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध है। इसी प्रकार सभी विधियां कारण की परिभाषा से ही derive की जा सकती है। Method of Residues को तो स्वयं उसने निगमनात्मक माना है।

(iii) मिल ने 'विधियों' की ऐसी व्याख्या की है जिसमें कारण और कार्य अलग-अलग पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, क, ख, ग से आनुषर्ती ध, य, र उत्पन्न होता है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि 'क' एक कारण है जो अकेले 'घ' को उत्पन्न करता है। अन्य 'विधियां' भी इसी तरह की हैं। इसलिए ये विधियां वैसे ही घटनाओं का कारण सिद्ध करती हैं जो सरल हैं और एक ही कारण से उत्पन्न होती हैं। पर प्राकृतिक घटनाएं इतनी सरल नहीं होतीं। अनेक कारणों के संयोग (Conjunction of Causes) से मिश्रित कार्य (Joint Effect) उत्पन्न होता है। सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य घटनाएं ऐसी ही होती हैं। वैसी दशा में मिल की विधियां काम नहीं कर सकतीं। इसके लिए मिल ने निगमन विधि (Deductive Method) का व्यवहार उपयुक्त माना है। अत: कारणों के संयोग तथा कार्यों के समिश्रण में मिल की 'विधियों' का व्यवहार नहीं हो सकता। उसमें निगमन-विधि का व्यवहार होता है।

(v) सभी 'विधियां' बहुकारणवाद से दूषित हो जाती हैं। यदि एक ही प्रकार के घटने का अनेक कारण हो तो किसी समय उस घटना का कोई निश्चित कारण पता लगाना कठिन है। पांचों विधियों में दो ही मूल हैं। उन्हीं पर अन्य आश्रित हैं। अत: उन दोनों के दोष और गुण बहुत अंशों में उनके भी हैं। उन दोनों में M. of Agreement बहुकारणवाद से दूषित है ही। M. of Diffrence भी उससे निवृत नहीं हैं। अत: मिल के Experimental Methods, जहां कोई घटना के अनेक कारण हों, कारण सिद्ध करने में असमर्थ हैं। इस दशा में सम्भावना-सिद्धान्त (Theory of Probability) और संख्यात्मक-विधि (Statistical Method) का व्यवहार किया जाता है।

इन आलोचनाओं का यह अर्थ नहीं है कि इन विधियों का ज्ञान के क्षेत्र में कोई मूल्य नहीं है। वास्तव में आगमन का सम्बन्ध आविष्कार से नहीं, प्रमाण से है। कारण-सम्बन्ध सिद्ध करने में इनसे सहायता मिलती है। वैज्ञानिक गवेषणाओं में इनका प्रयोग होता है।

§१०. *अभ्यास*

1. What do you understand by the Experimental Methods ? Are they merely the Weapons of Elimination ?

2. Are the Experimental Methods merely canons of Elimination ? Explain the canons.

3. Explain and illustrate the Method of Agreement. How is it frustrated ? What is the remedy ?

4. Explain the Method of Difference and point out its advantages over the Method of Agreement.

5. 'The Method of Agreement is a Method of Discovery and the Method of Difference, a Method of Proof.' Explain this.

6. Method of Agreement suggests the cause while the Method of Difference proves it. Is it true ? Show how the Method of Agreement is frustrated by the Plurality of causes?

7. Enunciate and explain the Joint Method and show its advantages over the Method of Agreement.

8. Point out the advantages and the disadvantages of the Method of Agreement and the Method of Difference.

9. Explain and illustrate the Method of Concomitant Variations. Show how it can be the modification of both, the Method of Agreement and the Method of Difference ?

10. What are the different forms of the Method of Concomitant Variations ? What are its special advantages ?

11. What are the advantages and disadvantages of the Method of Concomitant Variations ? Show its relation with the Method of Agreement and the Method of Difference.

12. State and explain the Method of Residues pointing out its merits and demerits.

13. 'Mill has formulated not five Experimental Methods but only one'. Discuss. Show the interrelation of the Methods.

14. What are the underlying principles of the Experimental Methods. ? Explain.

15. 'The so called Experimental Methods are really deductive in character' Discuss.

16. Give a critical estimate of Mill's Inductive Methods.

आठवाँ अध्याय

निगमनयुक्त आगमन (Deduction in Induction) या निगमन रीति (Deductive Method)

§१. विषय-प्रवेश
§२. निगमन-रीति के प्रभेद (Kinds)
§३. गुण-सम्बन्धी निगमन रीति (Abstract Deductive Method)
§४. वस्तु-सम्बन्धी निगमन रीति (Concrete Deductive Method)
(क) अव्यवहित रीति (Direct D. Method)
(ख) व्यवहित रीति (Indirect D. Method)
(ग) दोनों में भेद (Distinction)
§५. *अभ्यास*

§१. *विषय-प्रवेश*

मिल की विधियां सभी क्षेत्रों में सफल नहीं होतीं। इनके द्वारा ऐसी घटनाओं का, जिनमें कार्यों का सम्मिश्रण है, कारण सिद्ध करना कठिन है। किसी-किसी घटना की उत्पत्ति के तो इतने कारण होते हैं कि इन विधियों का प्रयोग असम्भव हो जाता है। भूगर्भविद्या, इतिहास, रसायनशास्त्र और भौतिक विज्ञान के क्षेत्रों में ऐसी कठिनाइयां बहुत मिलती हैं। उदाहरणार्थ, किसी ऐतिहासिक क्रान्ति के अनेक संयुक्त कारण होते हैं। यदि मिल की विधियों द्वारा कारण का ज्ञान प्राप्त करना हो तो किसी क्रान्ति के दो-तीन उदाहरणों का निरीक्षण करना होगा और उसकी पूर्ववर्ती बातों में कारण ढूँढ़ना होगा। पर उस घटना को उत्पन्न करने में इतनी शक्तियां काम कर रहीं हैं कि सभी का पता पाना कठिन है। यदि उसका कोई एक कारण होता तो उसके अनेक उदाहरणों में उसका पता चल जाता पर ऐसा सम्भव नहीं होता है। रसायन-शास्त्र इत्यादि में तो कारणों के ज्ञान रहने पर प्रयोग द्वारा उनके परिणाम का पता चल जाता है, पर सामाजिक या ऐतिहासिक क्षेत्रों में घटना का ज्ञान रहने

पर उनके कारणों का पता लगाना मुश्किल हो जाता है। मिल की विधियों द्वारा किसी ऐतिहासिक क्रान्ति का निश्चयपूर्वक पूर्ण कारण जानना सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में निगमन-विधि (Deductive Method) का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

अणु, विद्युत् इत्यादि अनेक पदार्थ बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। न उनका निरीक्षण ही सम्भव है न उनपर प्रयोग ही हो सकता है। मिल की विधियों से उन पदार्थों की गवेषणा में काम नहीं चलता। इन बातों के सम्बन्ध में जो कल्पनाएँ की जाती हैं उनसे निगमन निकाल कर उन निगमनों की सत्यता देखी जाती है। यदि वे निगमन सत्य होते हैं तो उन कल्पनाओं को भी सत्य मान लिया जाता है। इस प्रकार निगमन-विधि (Deductive Method) का प्रयोग यहां भी आवश्यक हो जाता है।

आगमन में जब निगमन (Deduction) का प्रयोग होता है तब उसे, मिल ने, निगमन-रीति (Deductive Method) कहा है। सारांश यह हुआ कि जहां मिल की विधियां काम नहीं करतीं वहां आगमन और निगमन दोनों का प्रयोग किया जाता है। ऐसी विधि को निगमन-रीति कहा गया है। निगमन-रीति में निम्नलिखित steps हैं :—

(१) आगमन (Induction)—निरीक्षण, विश्लेषण और प्रयोग द्वारा कार्य-कारण-सम्बन्धी कल्पनाएं स्थापित करना।

(२) निगमन(Deduction)—निगमनात्मक तर्क द्वारा उन कल्पनाओं का फल निश्चित करना।

(३) अनुभवसिद्ध करना (Verification)—कल्पनाओं के फल की परीक्षा करना।

§२. *निगमन-रीति के प्रभेद* (**Kinds of Deductive Method**)

जेवन ने दो प्रकार की निगमन रीति बतलाया है।

(i) गुण-सम्बन्धी निगमन रीति (Abstract Deductive Method).

(ii) वस्तु-सम्बन्धी निगमन रीति (Concrete Deductive Method).

फिर वस्तु-सम्बन्धी निगमन रीति दो प्रकार की होती है—

(i) अव्यवहित निगमन रीति (Direct Deductive Method).

(ii) व्यवहित निगमन रीति (Indirect Deductive Method).

§३. (i) *गुण-सम्बन्धी निगमन रीति* (**Abstract Deductive Method**)

आरम्भ में ही वस्तु-सम्बन्धी और गुण-सम्बन्धी रीतियों में जेवन ने भेद किया है। वस्तुओं या वास्तविक घटनाओं के अतिरिक्त ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनमें केवल गुण-सम्बन्धी विचार होते हैं। ऐसे क्षेत्रों में वस्तु-सम्बन्धी निगमन-रीति (Concrete D. Method) नहीं लग सकती है। गुण-सम्बन्धी तथ्यों का न निरीक्षण हो सकता है न उनकी परीक्षा ही सम्भव है। ऐसी दशा में निरीक्षण, प्रयोग, परीक्षा इत्यादि आगमनात्मक क्रियाओं का प्रयोग कैसे हो सकता है? इसलिए ऐसे क्षेत्रों में उदाहरणों को देखकर कल्पना के आधार पर कोई नियम स्थापित नहीं किया जाता। यहां स्वयंसिद्ध सिद्धान्तों से निगमन निकाला जाता है और वे ही नियम के रूप में आते हैं। रेखागणित में इसका उदाहरण मिलता है। इसलिए गुण-सम्बन्धी रीति को रेखागणित की पद्धति (Geometrical Method) भी कहा जाता है। रेखा, वृत्त, वर्ग, त्रिभुज इत्यादि रेखागणित के विषय हैं। वे वस्तुवाचक (concrete) नहीं हैं। उनका निरीक्षण और उनकी परीक्षा करना सम्भव नहीं है। इसलिए उस विषय के स्वयंसिद्ध सिद्धान्तों से हम निगमन निकालते हैं और वे ही साध्यों के रूप में आते हैं। त्रिभुज की परिभाषा से ही १६ वां साध्य निकाला गया है। अनुभव के आधार पर वह नियम नहीं स्थापित किया गया है। इसी प्रकार की रीति को गुण-सम्बन्धी निगमन रीति (Abstract D. Method) कहा जाता है।

वास्तव में यह निगमन-रीति नहीं प्रतीत होता। निगमन-रीति में आगमन का भी प्रयोग होता है पर यहां तो शुद्ध निगमन-विधि (Deduction) ही लगाया गया है। जब राजनीति, दर्शन इत्यादि क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है तब फलों की परीक्षा इत्यादि भी सम्भव होती है। वैसी दशा में इसे निगमन-रीति कहना उचित होगा।

§ ४. (ii) *वस्तु-सम्बन्धी निगमन-रीति* (**Concrete Deductive Method**)

वस्तु-सम्बन्धी रीतियां वास्तविक निगमन-रीति हैं क्योंकि उनमें घटनाओं की परीक्षा इत्यादि भी सम्भव है। उनका दो प्रकार बतलाया गया है (i) अव्यवहित (direct) और (ii) व्यवहित (indirect)।

(क) *अव्यवहित रीति* **(Direct Deductive Method)**

जटिल समस्यायों के विश्लेषण हो जाने पर उनकी जटिलता दूर हो जाती है। इसलिए, जब किसी जटिल घटना के कारण की गवेषणा करनी रहती है तब सबसे पहले उस घटना का विश्लेषण कर दिया जाता है। विश्लेषण करने पर वह घटना छोटे-छोटे अंगों में बँट जाती है। ये छोटे-छोटे अंग छोटी तथा सरल घटनाएँ हैं। अब इन सरल घटनाओं का अलग-अलग कारण बतलाना सरल होता है। कारण का ज्ञान होने पर उनके नियमों का भी ज्ञान होता है। कारण तथा नियम निरीक्षण द्वारा तय होते हैं। जब निरीक्षण सम्भव नहीं रहता तब उनकी कल्पना की जाती है।

भिन्न कारणों के नियमों का ज्ञान हो जाने पर उससे हम निगमन निकालते हैं। नियमों को जोड़कर भिन्न कारणों का संयुक्त परिणाम निकाला जाता है। यहीं निगमन (Deduction) का प्रयोग होता है।

संयुक्त परिणाम वास्तविक हैं या नहीं यह अनुभव-सिद्ध (verification) करना आवश्यक है, नहीं तो उनका कोई प्रमाण नहीं होता। निरीक्षण या प्रयोग द्वारा उसकी परीक्षा की जाती है। यदि वह अनुभवसिद्ध होता है तब उसे सत्य मान लिया जाता है। यहां आगमन (Induction) का प्रयोग हुआ है।

मान लें कि हमें वायु में फेंके हुए पदार्थ का मार्ग क्या होता है, यह निकालना है। सबसे पहले तो पूर्व अनुभव के द्वारा हम यह स्थिर करते हैं कि उसमें तीन शक्तियां काम करती हैं, गुरुत्वाकर्षण नियम, जिसके कारण पृथ्वी की ओर फेंका हुआ पदार्थ आकर्षित होता है, फेंके हुए पदार्थ की गति और वायु की रुकावट। इसके बाद उन तीनों शक्तियों के संयुक्त फल की हम गणना करते हैं और इस फल पर पहुंचते हैं कि फेंके हुए पदार्थ का मार्ग अनुवृत्त (parabola) होगा। बाद में किसी पदार्थ को फेंक कर इसे अनुभव-सिद्ध किया जाता है।

इस प्रकार इस रीति में तीन क्रम हैं :—

(१) भिन्न कारणों को तथा उनके नियमों का पता लगाना। इसका अनुभव पहले से रहता है।

(२) उन कारणों के संयुक्त परिणाम की गणना करना—अनुपातीकरण (Ratiocination)। यह निगमन-विधि द्वारा किया जाता है।

(३) निगमन को अनुभवसिद्ध करना (Verification)—यह निरीक्षण तथा प्रयोग द्वारा होता है।

परीक्षा के उपरांत यदि निगमन गलत साबित होता है तो हम समझ जाते हैं कि कहीं भूल हुई है। भूल भी हो सकती है नीचे लिखे कारण से :—

(i) भिन्न कारण तथा उनके नियमों को तय करने में या तो कोई प्रभावशालिनी शक्ति ही छूट जा सकती है या उनके नियमों का वास्तविक ज्ञान ही नहीं रह सकता है।

(ii) गणना में—जिस परिस्थिति में शक्तियां मिलकर परिणाम उत्पन्न करती हैं, उसका ज्ञान न रहने पर गणना में भूल हो जा सकती है।

(iii) किसी ऐसी शक्ति की गणना करें जिसकी वास्तविक स्थिति वहां नहीं है तब भी भूल हो जायगी। भूलों को सुधार कर सही फल पर हम पहुंच जाते हैं।

इस रीति में निगमन का स्थान निरीक्षण इत्यादि से पहले है। निगमनों की, निरीक्षण तथा प्रयोग द्वारा परीक्षा की जाती है। इसलिए इसे अव्यवहित (Direct) रीति कहा जाता है।

भौतिकविज्ञान, यंत्रविज्ञान (Mechanics) इत्यादि में इस रीति का अधिक प्रयोग होता है। इन क्षेत्रों में शक्तियों की गणना करना सम्भव है इसलिए यह रीति अधिक व्यवहार होती है। इसी कारण इसे भौतिकविज्ञान की रीति (Physical Method) भी कहा जाता है।

(ख) *व्यवहित निगमन रीति* **(Indirect Deductive Method)**

यह रीति अत्यन्त जटिल घटनाओं के कारणों की गवेषणा में प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग प्रायः समाजशास्त्र में होता है। इस क्षेत्र में किसी घटना में इतने कारण का प्रभाव देखा जाता है कि उनका विश्लेषण करना सम्भव ही नहीं है। इसलिए वैसी एक दो घटनाओं का निरीक्षण करके अनुभव के आधार पर उनका कोई कारण या नियम की कल्पना कर लिया जाता है। यहां आगमन का प्रयोग होता है।

इसके बाद उन नियमों की उच्च नियमों से हम अनुकूलता देखते हैं। यदि वे किसी उच्च नियम से व्युत्पन्न किए गए तब तो उन्हें सत्य ही माना जाता है। यहां निगमन-विधि का प्रयोग होता है।

मान लें कि युद्धों का कारण जानना है। इस घटना पर केवल एक दो ही कारण का नहीं अनेक कारणों का प्रभाव है। इसलिए एक दो या कुछ अधिक युद्ध के उदाहरण को देखकर हम अनुभव के आधार पर कोई नियम निकालते हैं। उदाहरण को देखने से पता चलता है कि युद्ध किसी प्रकार के अभाव के कारण होती है। निगमन-विधि द्वारा भी यह सिद्ध होता है। यह नियम है कि मनुष्य किसी पदार्थ की कमी पसन्द नहीं करता। इसलिए जब कमी होती है, असन्तोष फैलता है और युद्ध की तैयारी होती है।

इसलिए इस रीति में तीन क्रम होते हैं :—

(i) उदाहरणों का निरीक्षण (observation of the instances of the phenomenon)

(ii) अनुभव के आधार पर नियम की कल्पना (empirical generalisation)

(iii) किसी उच्च नियम से व्युत्पन्न करके इनकी परीक्षा—
(verification by deduction from some higher law)

इस रीति को व्यवहित कहा जाता है क्योंकि इसमें निगमन-विधि की आवश्यकता नियमों की परीक्षा के समय में होती है। आगमन द्वारा निकाले गए नियम की परीक्षा निगमन-रीति से होती है।

इतिहास, समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में इस रीति का अधिक प्रयोग होता है क्योंकि इनमें किसी घटना पर प्रभाव डालनेवाले कारणों की गणना करना संभव नहीं है। इसलिए इसे ऐतिहासिक रीति (Historical Method) भी कहा जाता है।

(ग) दोनों में अन्तर—अव्यवहित रीति (Direct D. Method) का प्रयोग भौतिक विज्ञान में अधिक होता है इसलिए इसे भौतिक विज्ञान की रीति कहा जाता है। व्यवहित-रीति (Indirect D. Method) का प्रयोग प्रायः इतिहास में होता है इसलिए इसे ऐतिहासिक रीति कहा जाता है। अव्यवहित

रीति में निगमन रीति का पहला स्थान है। निगमनों की परीक्षा निरीक्षण अथवा प्रयोग द्वारा किया जाता है। व्यवहित रीति में निगमन रीति का स्थान बाद में आता है। अनुभव द्वारा निकाले गए नियमों की परीक्षा निगमन रीति से होती है। यही दोनों रीतियों में अन्तर है। पर मिल का मत है कि दोनों में मौलिक अन्तर स्थान का या क्षेत्र का नहीं है। कभी-कभी सुभीते के अनुसार निगमन और आगमन का प्रयोग होता है। भौतिक विज्ञान में व्यवहित रीति का और इतिहास में अव्यवहित रीति का भी प्रयोग होता है। दोनों में मौलिक भेद यह है कि एक में (अव्यवहित रीति में) निगमन-विधि के व्यवहार के बाद उसका प्रदर्शन भी सम्भव हो जाता है पर दूसरे में (व्यवहित रीति में) निगमन-विधि द्वारा जो फल निकाले जाते हैं उनमें केवल सम्भावना रहती है।

उदाहरणार्थ, जब यह गणना कर ली गई कि फेंके हुए ढ़ेले का रास्ता अनुवृत (Parabola) होगा तब उसका प्रदर्शन भी किया जा सकता है पर व्यवहित रीति (Indirect Method) में यह सम्भव नहीं हैं। अनुभव द्वारा यह सामान्यीकरण करने पर कि युद्ध का कारण अभाव है और इसकी सिद्धि निगमन द्वारा करने पर भी 'अभाव के द्वारा युद्ध' का प्रदर्शन करना सम्भव नहीं है। अतः अव्यवहित-रीति (Direct Method) के फल निश्चित होते हैं पर व्यवहित-रीति के फलों में उतनी निश्चयात्मकता नहीं रहती।

§५. *अभ्यास*

1. What do you understand by Deductive Methods? Why are they so called? What is their utility? Explain.

2. Explain and illustrate the Physical Method. Point out its fundamental difference with the Historical Method.

3. Point out the distinction between Concrete Deductive Method and Abstract Deductive Method and explain them.

नवाँ अध्याय

आकस्मिकता (Chance) और संभावना (Probability)

§१. विषय-प्रवेश
§२. आकस्मिकता (Chance) क्या है ?
§३. आकस्मिकता (Chance) का निराकरण (Elimination)
§४. संभावना (Probability)
§५. संभावना का आधार (Ground)
§६. कारण की गवेषणा में संभावना-सिद्धान्त
§७. संभावना की निर्धारण-विधि (Calculation)
§८. सम्भावना का प्रयोग (Use)
§९. सम्भावना और आगमन (Probability&Induction)
§१० सम्भावित अनुमान (Probable arguments)
§११. अभ्यास

§१. *विषय-प्रवेश*

आगमन का लक्ष्य है कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित करना। किसी घटना का कारण का पता चला कर ही घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। Mill ने कारण-सम्बन्ध सिद्ध करने के लिए पांच रीतियों का उल्लेख किया है पर जहां कोई घटना बहुत से सम्मिलित कारण से होती है या जहां अनेक कारण कोई घटना की उत्पत्ति करते हैं वहां Mill की रीतियां कारण सिद्ध करने में सफलीभूत नहीं होतीं। अनेक कारणों के योग से जो घटना होती है और उसके कारणों को सिद्ध करने में जो कठिनाई होती है वह निगमन-विधि (Deductive Method) द्वारा दूर किया जाता है। पर जहां अनेक कारण एक ही घटना की उत्पत्ति करते हैं वहां भी कारण का ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाई होती है। यह संभावना-सिद्धान्त से दूर होती है। बहुकारणवाद के अनुसार

एक ही घटना भिन्न समय में भिन्न कारणों से हो सकती है, जैसे, मृत्यु, रोग से, ज्वर से, हैजे से और अन्य कारणों से।

अब यह सिद्ध करना कि किसी की मृत्यु किस कारण से होगी बहुत ही कठिन है पर हम इस बात की, कि किसी कारण से मरने की कितनी संभावना है, गणना कर सकते हैं। मान लें कि कोई हैजा से घिरे हुए स्थान में रहता है तो हम उसके हैजा से मरने की सम्भावना की गणना कर सकते हैं। इसी प्रकार मान लिया जाय कि 'क' की उत्पत्ति 'ख' 'ब' 'य' या 'घ' से हो सकती है। इस दशा में संभावना-सिद्धान्त के द्वारा हम यह निश्चित करने का प्रयत्न करते हैं कि 'ख' के 'क' का कारण होने की संभावना अधिक है या 'ग' या 'घ' की। यदि क और ख अधिकतर साथ घटें तो हम अनुमान कर सकते-हैं कि उनमें कुछ सम्बन्ध है। अधिकतर उनके एक साथ घटने पर ऐसा मालूम होता है कि उनका सम्बन्ध आकस्मिक (Chance) नहीं है अपितु उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध होने की सम्भावना है। उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध होने की सम्भावना कितनी है इसकी गणना संभावना-सिद्धान्त द्वारा होती है। अतः हमें सम्भावना और आकस्मिकता का अर्थ जान लेना चाहिये और तब हम देखेंगे की सम्भावना की गणना कैसे होती है।

§२. *आकस्मिकता* (Chance) *क्या है ?*

प्रकृति में ऐसी बहुत सी घटनाएँ होती है जिनका कारण बतलाना कठिन मालूम होता है। आज रात को बिजली सात बजे ही क्यों खराब हुई या सिनेमा घर में एक पुराने मित्र से बहुत दिन के बाद क्यों मुलाकात हो गई या घर से निकलते वक्त एक कुत्ते को हमने क्यों देख लिया, इनका कारण बतलाना मुश्किल है। ये घटनाएँ अचानक होती हैं और इनकी हम आशा नहीं किए रहते। ऐसी घटनाएँ आकस्मिक (Accidental) कहलाती हैं। घर से निलकते वक्त कुत्ते पर दृष्टि पड़ जाना आकस्मिक है या सिनेमा घर में पुराने मित्र से भेंट हो जाना भी आकस्मिक ही कहा जाता है। इसी प्रकार जब दो घटनाएँ एक साथ घटें और उनमें कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं मालूम हो तो उन्हें आकस्मिक कहा जाता है। दोनों घटनाओं के घटने का अपना अपना कारण है। हमारे घर से निकलने का कारण है और कुत्ते के उधर से गुजरने का भी कारण है पर

दोनों के एक साथ घटने का अर्थात् हमारे घर से निकलते ही वस्त उस कुत्ते का उधर से गुजरने का संयोग या साथ होना आकस्मिक है। अतः जब दो या दो से अधिक घटनाएं एक साथ घटित हों पर जब हम उनके एक साथ घटित होने का कोई कारण नहीं जानें तो हम उन्हें आकस्मिक * कहते हैं।

इसी प्रकार कुछ ऐसी घटनाएं होती हैं जो अनियमित तथा अनिश्चित मालूम होती हैं इनके कारणों का भी ज्ञान हमें नहीं होता। यदि आठ कौड़ी जमीन पर फेंकी जाय तो पांच क्यों चित्त गिरी और तीन पट या चार क्यों चित्त और चार पट यह जानना संभव नहीं है। हम निश्चित रूप नहीं कह सकते हैं कि इस बार फेंकने पर चार चित्त गिरेगी और चार पट। ऐसी घटनाएँ अनियमित और अनिश्चित हैं। इन्हें भी आकस्मिक कहा जाता है।

आकस्मिकता का अर्थ यह नहीं है कि कुछ घटनाएं जो आकस्मिक कही जाती हैं वे विना कारण के होती हैं। वास्तव में संसार की प्रत्येक घटना का कारण होता है। दो या दो से अधिक घटनाओं के एक साथ घटित होने का भी कारण है या आठ कौड़ियों को फेंकने पर चार चित्त और चार पट गिरने का भी, पर मनुष्य का ज्ञान सीमित होने के कारण जितनी शक्तियां वहां काम कर रही हैं उनका पता लगाना सम्भव नहीं है। यदि कोई ईश्वर के तरह सर्वज्ञानी हो जाय तो उसे इन घटनाओं का भी कारण मालूम हो जाय। पर चूंकि हमारी बुद्धि सीमित है इसलिए किसी विशेष समय या स्थान में दो घटनाओ के साथ हम कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं जोड़ पाते हैं। ऐसी ही घटनाओं को आकस्मिक कहा जाता है। ❀

आकस्मिकता को कुछ तार्किकों ने आत्मगत (subjective) विचार बतलाया है। उनके अनुसार आकस्मिकता हमारे अज्ञान के कारण है। वास्तव में प्रकृति की कोई भी घटना आकस्मिक नहीं है पर हम अपनी अज्ञान को छिपाने के लिए उन्हें आकस्मिक कह देते हैं। इसलिए आकस्मिकता वास्तविक नहीं आत्मगत (subjective) है। पर यह मत उचित नहीं प्रतीत होता है। यह ठीक है कि कोई घटनाएं इसलिए आकस्मिक मालूम होती हैं कि हम उन्हें कार्य-कारण के सूत्र में बांधने में असमर्थ हैं पर यह असमर्थता विश्व की विशालता के कारण

* 'Chance is the Coincidence giving no ground to infer uniformity'—Mill

है। विश्व इतना विशाल है और प्रकृति में इतनी शक्तियाँ काम करती हैं कि इन्हें हम पूर्ण रूप से जान नहीं पाते हैं। दो घटनाओं को एक साथ घटित होने में इतनी शक्तियाँ काम करती हैं कि उनका विश्लेषण करना सम्भव नहीं हैं। इसी कारण हम कार्य-कारण सम्बन्ध जानने में असमर्थ हो जाते हैं। इसलिए आकस्मिकता हमारे अज्ञान के कारण तो है ही पर यह अज्ञानता विश्व की विशालता के कारण है। अत: आकस्मिकता अंशत: आत्मगत (subjective) है और अंशत: विषयगत (objective) भी।

§३. *आकस्मिकता का निराकरण* (Elimination of Chance)

आकस्मिकता के निराकरण का अर्थ है कि जिन घटनाओं के सहचार अर्थात् साथ घटित होने को हम आकस्मिक कहते हैं उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करना। जहां दो घटनाओं का साहचर्य्य आकस्मिक होता है वहां हमारी यह जानने की प्रयत्न रहती है कि क्यों वे एक साथ घटित हुईं अर्थात् उनके सम्बन्ध को आकस्मिक नहीं, अपितु, किसी सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया जाता है। इसी तरीके को जिससे दो घटनाओं के बीच, जहां आकस्मिक सम्बन्ध प्रतीत हो वहां कार्य-कारण सम्बन्ध पता लगाने का प्रयत्न किया जाय आकस्मिकता का निराकरण कहा जाता है। अब यह समस्या है कि वह तरीका कौन सा है? यदि दो घटनाएं यदा-कदा साथ घटित हों तब तो उनका सम्बन्ध आकस्मिक ही माना जाता है पर यदि अधिकतर वे साथ-साथ घटित होती हैं तब उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध की सम्भावना (Probability) मानी जाती है। इसी आधार पर आकस्मिकता (Chance) का निराकरण (Elimination) किया जाता हैं। बेन (Bain) ने बतलाया है कि दो घटनाएं यदि एक साथ घटित हों और उनका सम्बन्ध आकस्मिक प्रतीत हो तब हम पहले यह विचार कर लें कि वे स्वयं अलग-अलग कई बार घटित होते हैं और उसीसे यह गुणन करें कि वे एक साथ कई बार घटित होंगे, यदि उनमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं भी हो। यदि, ऐसा विचार करने से जो फल हो, उससे ज्यादा बार वे साथ घटित होते हैं तब तो उनमें सम्बन्ध है और यदि उससे कम तब उनमें सम्बन्ध नहीं है। मान लें कि लाल आकाश और वृष्टि में सम्बन्ध क्या है यह विचार किया जा रहा है। पहले हमने यह विचार किया कि आकाश लाल कितनी बार होता है। हमने देखा कि चार दिन में एक दिन आकाश अवश्य लाल हो जाता है। फिर हमने यह देखा कि पानी दस दिन में एक बार अवश्य बरसता है। अत: इसीसे हमने

गुणन किया कि (१०×४) चालीस दिन में दोनों घटनाएं अर्थात् लाल आकाश और पानी का बरसना एक बार अवश्य साथ घटित होगीं। अगर दोनों का सम्बन्ध आकस्मिक है तब यही फल होगा। पर यदि इससे अधिक बार दोनो साथ हों तब उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध होने की सम्भावना (Probability) है।

§४. *संभावना* (Probability)

बहुत सी घटनाएं ऐसी होती हैं कि उनका किसी विशेष काल में घटित होना निश्चित नहीं रहता और साथ साथ यह भी नहीं कहा जा सकता है कि उनका उस काल में घटित होना असम्भव या नामुमकीन है। ऐसी ही घटनाओं को संभावित (Probable) कहा जाता है। मान लें कि हमने ५२ तास के पत्तों से एक तास खींच लिया तब उसका लाल पान की बीबी होना सम्भव है। यह निश्चित नहीं है कि वह लाल पान की बीबी होऔर उस पत्ते का वही तास होना असम्भव भी नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार वैसी घटनाएं जो न निश्चित हों और न असम्भव, संभावित (Probable) कही जाती हैं। अत: संभावना का स्थान निश्चय और असम्भव के बीच है। पर संभावना की मात्रा (degrees) होती है। किसी घटने का होना अधिक सम्भव हो सकता है और किसी का कम सम्भव। यदि हम परीक्षा के लिए खूब तैयारी करें तो हमारे पास करने की सम्भावना अधिक होगी पर यदि कुछ हिस्सों को चुन कर हमने पढ़ा है तब पास करने की सम्भावना कम होगी। अत: सम्भावन (Probability) कम या अधिक मात्रा में होती है।

संभावित घटनाएँ समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र इत्यादि के क्षेत्र में अधिक मिलते हैं क्योंकि ये सब समाज से सम्बन्ध रखनेवाली शास्त्र हैं और सामाजिक घटनाएं असंख्य स्थितियों पर निर्भर रहती हैं, इसलिए निश्चयपूर्वक उनके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है। पर कुछ दार्शनिकों ने (रसेल, जेवन्स इत्यादि) सभी घटनाओं को संभव कहा है। उनके अनुसार कोई भी ज्ञान निश्चित नहीं है। ज्ञान अनुभव के आधार पर होता है और अनुभव तो वर्तमान तक ही सीमित रहता है। भविष्य में क्या होगा यह निश्चित रूप से कैसे कहा जा सकता है क्योंकि उसका ज्ञान तो हुआ नहीं है। विज्ञान के नियम भी बदलते ही रहते हैं। यह सम्भव है कि कुछ दिनों के बाद जिन्हें हम अटल

समझते हैं वह भी असत्य हो जाय। पर यह दार्शनिक दृष्टिकोण है; तार्किक दृष्टिकोण से यह सत्य नहीं हैं। वैज्ञानिक आगमन कार्य-कारण सम्बन्ध पर आश्रित है। यह केवल गणना के आधार पर नहीं स्थापित किया जाता। इसलिए मानव दृष्टिकोण से इसे निश्चित ही मानना चाहिये। तार्किक दृष्टि से कुछ घटनाएं निश्चित भी होती हैं और कुछ संभावित(Probable)और कुछ असम्भव।

तार्किक सम्भावना तीन दृष्टिकोणों से देखी जा सकती है —

(i) अनुभूत सम्भावना (Enumerative Probability)—कुछ घटनाओं की संभावना अनुभव के आधार पर गणना करके निकाली जाती है। ऐसी घटना में देखा जाता है कि वे कितनी बार उपस्थित रहती है और कितनी बार उनका अभाव होता है। जितनी बार वे उपस्थित रहती हैं उसे जितनी बार उनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति होती है, दोनों को मिला कर भाग देते हैं। इसीसे उस घटना के सम्भावना की मात्रा पता लगाई जाती है। मान लें की लाल आकाश रहने पर बीस दिन में १२ बार पानी बरसा और ८ बार नहीं बरसा तब लाल आकाश रहने पर पानी बरसने की सम्भावना $\frac{१२}{२०}$ होगी। यहां गणना के आधार पर सम्भावना निकाली गई है।

(ii) औपपत्तिक सम्भावना (Theoretical Probability) - कहीं-कहीं घटनाओं की प्रकृति पर ही सम्भावना स्थिर किया जाता है। मान लें कि ५२ तास में से यदि एक पत्ता खिंचा गया तब उस तास के काला पान का दहला होने की सम्भावना $\frac{१}{५२}$ है। यदि दस बार एक-एक तास खींचा जाय और काला पान का दहला नहीं मिले तौभी ग्यारहवां बार एक तास खींचने पर उस तास के निकलने की वही सम्भावना रहेगी अर्थात् $\frac{१}{५२}$। इसलिए यहां अनुभव के आधार पर गणना से कोई लाभ नहीं है।, यहां उस घटना की प्रकृति या स्वरूप पर ही सम्भावना आश्रित है।

(iii) सामूहिक सम्भावना (Probability of Aggregate)—यहां सम्भावना पदार्थों के समूह में लगाई जाती है। कुछ उदाहरणों के निरीक्षण से एक औसत निकाला जाता है। वह औसत (Average) समूह के ही लिए सत्य हो सकता है व्यक्ति-विशेष के लिए नहीं। भारतीयों की उम्र २२ साल कीहै। अब इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि 'क' २२ साल के उम्र में ही मर जायगा,

पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि अधिक लोग इसी उम्र के लगभग मरते हैं। बीमा कम्पनियों की गणना इसी पर निर्भर है।

किसी घटना के घटित होने की कितनी सम्भावना है यह दो रूप से व्यक्त किया जाता है—भिन्नांक (fraction) द्वारा या अनुपात (proportion) द्वारा। भिन्नांक द्वारा संभावना (Probability) व्यक्त करने में १ अर्थात् पूर्णांक को निश्चय माना जाता है और O शून्य को असम्भव। बीच अंक जैसे $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{10}$, $\frac{1}{10}$ इत्यादि सम्भावना की मात्राएं हैं। ५२ तास में से एक तास खींचने पर किसी खास ताश के निकलने की सम्भावना को $\frac{1}{52}$ से संकेत किया जाता है। $\frac{1}{52}$ का अर्थ है ५२ बार तास खींचने पर उस तास के निकलने की सम्भावना एक बार होगी। इसी को अनुपात (proportion) द्वारा व्यक्त करने में लिखा जायगा १: ५१। इसका अर्थ हुआ कि उस तास के निकलने की सम्भावना १ है और नहीं निकलने की ५१।

§५. *संभावना का आधार* (Grounds of Probability)

इसके विषय में दो मत हैं। कुछ तार्किकों ने (जेवन्स) कहा है कि सम्भावना आत्म गत विश्वास है। किसी घटना के घटित होने का जितना हमें विश्वास रहता है उस घटना की उतनी ही सम्भावना हम बतलाते हैं। जब हम कहते हैं कि हमारे पास करने की सम्भावना अधिक है या नौकरी मिलने की अधिक है तो इसका अर्थ है कि पास करने या नौकरी मिलने का विश्वास हमारे मस्तिस्क में अधिक मात्रा में है। इसलिए सम्भावना व्यक्तिगत है।

पर यह विचार उचित नहीं है। यदि सम्भावना केवल विश्वास पर ही आश्रित है तो उसकी गणना कैसे होती है? विश्वास की गणना सम्भव नहीं है। पर सम्भावना अंको द्वारा व्यक्त होता है।

विश्वास मनुष्य के चरित्र, विद्या, बुद्धि तथा आशाओं पर निर्भर हैं न कि अनुभव पर। दो मनुष्य को एक ही प्रकार का अनुभव होता है पर दो प्रकार का विश्वास होता है। यदि रात में घर आते वख्त एक रस्सी रास्ते में मिला तो एक उसे सोच समझ कर घर पर कहता है कि हमने सांप देखा। दूसरा उसे रस्सी ही समझता है।

इसके अतिरिक्त आगमन केवल विश्वास ही पर आश्रित नहीं है और यदि सम्भावना का सम्बन्ध आगमन से है तब इसका आधार अनुभव होना चाहिए न कि विश्वास।

समझते हैं वह भी असत्य हो जाय। पर यह दार्शनिक दृष्टिकोण है; तार्किक दृष्टिकोण से यह सत्य नहीं हैं। वैज्ञानिक आगमन कार्य-कारण सम्बन्ध पर आश्रित है। यह केवल गणना के आधार पर नहीं स्थापित किया जाता। इसलिए मानव दृष्टिकोण से इसे निश्चित ही मानना चाहिये। तार्किक दृष्टि से कुछ घटनाएं निश्चित भी होती हैं और कुछ संभावित(Probable)और कुछ असम्भव।

तार्किक सम्भावना तीन दृष्टिकोणों से देखी जा सकती है —

(i) अनुभूत सम्भावना (Enumerative Probability)—कुछ घटनाओं की संभावना अनुभव के आधार पर गणना करके निकाली जाती है। ऐसी घटना में देखा जाता है कि वे कितनी बार उपस्थित रहती है और कितनी बार उनका अभाव होता है। जितनी बार वे उपस्थित रहती हैं उसे जितनी बार उनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति होती है, दोनों को मिला कर भाग देते हैं। इसीसे उस घटना के सम्भावना की मात्रा पता लगाई जाती है। मान लें की लाल आकाश रहने पर बीस दिन में १२ बार पानी बरसा और ८ बार नहीं बरसा तब लाल आकाश रहने पर पानी बरसने की सम्भावना $\frac{१२}{२०}$ होगी। यहां गणना के आधार पर सम्भावना निकाली गई है।

(ii) औपपत्तिक सम्भावना (Theoretical Probability) - कहीं-कहीं घटनाओं की प्रकृति पर ही सम्भावना स्थिर किया जाता है। मान लें कि ५२ तास में से यदि एक पत्ता खिंचा गया तब उस तास के काला पान का दहला होने की सम्भावना $\frac{१}{५२}$ है। यदि दस बार एक-एक तास खींचा जाय और काला पान का दहला नहीं मिले तौभी ग्यारहवां बार एक तास खींचने पर उस तास के निकलने की वही सम्भावना रहेगी अर्थात् $\frac{१}{५२}$। इसलिए यहां अनुभव के आधार पर गणना से कोई लाभ नहीं है।, यहां उस घटना की प्रकृति या स्वरूप पर ही सम्भावना आश्रित है।

(iii) सामूहिक सम्भावना (Probability of Aggregate)—यहां सम्भावना पदार्थों के समूह में लगाई जाती है। कुछ उदाहरणों के निरीक्षण से एक औसत निकाला जाता है। वह औसत (Average) समूह के ही लिए सत्य हो सकता है व्यक्ति-विशेष के लिए नहीं। भारतीयों की उम्र २२ साल कीहै। अब इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि 'क' २२ साल के उम्र में ही मर जायगा,

पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि अधिक लोग इसी उम्र के लगभग मरते हैं। बीमा कम्पनियों की गणना इसी पर निर्भर है।

किसी घटना के घटित होने की कितनी सम्भावना है यह दो रूप से व्यक्त किया जाता है—भिन्नांक (fraction) द्वारा या अनुपात (proportion) द्वारा। भिन्नांक द्वारा संभावना (Probability) व्यक्त करने में १ अर्थात् पूर्णांक को निश्चय माना जाता है और O शून्य को असम्भव। बीच अंक जैसे $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{100}$, $\frac{1}{10}$ इत्यादि सम्भावना की मात्राएं हैं। ५२ तास में से एक तास खींचने पर किसी खास ताश के निकलने की सम्भावना को $\frac{1}{52}$ से संकेत किया जाता है। $\frac{1}{52}$ का अर्थ है ५२ बार तास खींचने पर उस तास के निकलने की सम्भावना एक बार होगी। इसी को अनुपात (proportion) द्वारा व्यक्त करने में लिखा जायगा १: ५१। इसका अर्थ हुआ कि उस तास के निकलने की सम्भावना १ है और नहीं निकलने की ५१।

§५. *संभावना का आधार* (Grounds of Probability)

इसके विषय में दो मत हैं। कुछ तार्किकों ने (जेवन्स) कहा है कि सम्भावना आत्म गत विश्वास है। किसी घटना के घटित होने का जितना हमें विश्वास रहता है उस घटना की उतनी ही सम्भावना हम बतलाते हैं। जब हम कहते हैं कि हमारे पास करने की सम्भावना अधिक है या नौकरी मिलने की अधिक है तो इसका अर्थ है कि पास करने या नौकरी मिलने का विश्वास हमारे मस्तिस्क में अधिक मात्रा में है। इसलिए सम्भावना व्यक्तिगत है।

पर यह विचार उचित नहीं है। यदि सम्भावना केवल विश्वास पर ही आश्रित है तो उसकी गणना कैसे होती है? विश्वास की गणना सम्भव नहीं है। पर सम्भावना अंको द्वारा व्यक्त होता है।

विश्वास मनुष्य के चरित्र, विद्या, बुद्धि तथा आशाओं पर निर्भर हैं न कि अनुभव पर। दो मनुष्य को एक ही प्रकार का अनुभव होता है पर दो प्रकार का विश्वास होता है। यदि रात में घर आते वख्त एक रस्सी रास्ते में मिला तो एक उसे सोच समझ कर घर पर कहता है कि हमने सांप देखा। दूसरा उसे रस्सी ही समझता है।

इसके अतिरिक्त आगमन केवल विश्वास ही पर आश्रित नहीं है और यदि सम्भावना का सम्बन्ध आगमन से है तब इसका आधार अनुभव होना चाहिए न कि विश्वास।

आत्मगत विश्वास के आधार पर नियम नहीं रचे जा सकते हैं। उनके लिए अनुभूति की आवश्यकता है।

इसलिए सम्भावना विषयगत भी है और आत्मगत भी। जब हम कहते हैं कि आज पानी बरसने की सम्भावना है तब उसका अर्थ है कि पानी बरसने के पक्ष में कुछ प्रमाण हैं और कुछ उसके विपक्ष में भी प्रमाण हैं। पक्ष और विपक्ष में प्रमाण विषयगत (objective) हैं। यदि यह कहा जाय कि पानी आज बरसेगा क्योंकि हमें विश्वास है तब यह अन्धविश्वास कहा जायगा। यह आत्मगत हो सकता है। जब उसके लिए प्रमाण दिए जाते हैं तब वह आत्मगत नहीं कहा जा सकता है। अत: सम्भावना विषयगत भी है। जब उस प्रमाण के आधार पर हम कहते हैं कि आज पानी बरसेगा ऐसा हमें विश्वास है तब यह आत्मगत हुआ। अत: यह आत्मगत भी है। इसलिए सम्भावना का आधार आत्मगत विश्वास (subjective belief) और विषयगत अनुभव है।

अनुभव द्वारा सम्भावना की गणना होती है। इसकी तीन विधियां हैं। एक तो संख्यात् विधि (Statistical Method) द्वारा, दूसरी भिन्न शक्तियों का जो किसी घटना की उत्पत्ति के पक्ष में और विपक्ष में काम कर रही हैं उनकी फलों की गणना करके और तीसरी दोनों को मिला कर और संख्यात-विधि द्वारा प्राप्त फल की परीक्षा करके। पहली विधि उतनी निश्चयात्मक नहीं है। विज्ञान में तीसरी का ही प्रयोग होता है और उसीसे सम्भावना की गणना होती है।

§६. *सम्भावना-सिद्धान्त के आधार पर कारण का निश्चय* (Determination of causes on the Theory of Probability)

सम्भावना-सिद्धान्त का प्रयोग वहां होता है जहां कोई घटना कई एक कारणों से हो सकती है। ऐसे उदाहरणों में मिल की विधियां कारण को सिद्ध करने में सफलीभूत नहीं होती हैं। अत: सम्भावना सिद्धान्त का प्रयोग होता है। यदि A (कोई घटना) की उत्पत्ति x या y या z तीनों में से किसी से सम्भव है तब किसी समय इन तीनों में से किससे उसकी उत्पत्ति हुई यह सम्भावना-सिद्धान्त द्वारा ही पता चल सकता है। उनमें से किसी एक के कारण होने की सम्भावना उतनी ही है जितना कि, उसकी कार्य-शक्ति (efficiency) और जितनी बार (frequency) वह घटित होती है उसका गुणनफल हो। इसके तीन उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(क) मान लें कि A का कारण M या N है और जितनी बार M घटित होता है

उतनी ही बार N भी घटित होता हो और M की कार्य-शक्ति N से तीगुनी हो तब किसी समय M से A की उत्पत्ति होने की सम्भावना तीगुनी होगी। यहां दोनों कितनी बार घटित होती हैं यह बराबर है पर कार्य-शक्ति भिन्न है; इसलिए जितनी कार्य-शक्ति जिसकी भिन्न है उतनी ही उसके कारण होने की सम्भावना दूसरे से अधिक है। मान लें कि हैजा और प्लेग से मृत्यु हो सकती है। दोनों कहीं बहुत जोर फैले हुए हैं पर प्लेग हैजा से अधिक शक्तिशाली है इसलिए वहां प्लेग से मृत्यु होने की सम्भावना अधिक है।

(ख) यदि दोनो की कार्य-शक्ति (efficiency) बराबर हो पर एक अधिक बार घटित होता है तो उतना ही अधिक उसके कारण होने की सम्भावना है। मान लें कि हैजा और प्लेग की कार्य-शक्ति बराबर है पर हैजा दोबारा अधिक घटित होता है तब उसका मृत्यु का कारण होना दुगुना अधिक सम्भव है।

(ग) यदि दोनों में से एक की कार्य-शक्ति और बार (frequency) दोनों अधिक हैं तब उसके कारण होने की सम्भावना दोनों (कार्य-शक्ति और बार) का गुणनफल होगा। हैजा की कार्य-शक्ति प्लेग से दुगुना है और साथ-साथ दुगुना बार अधिक घटित होता है तब उसके कारण होने की सम्भावना चौगुनी (२×२) है।

इसी प्रकार जहां दो या तीन या अधिक कारणों से किसी कार्य की उत्पत्ति हो सकती है वहां कारण होने की सम्भावना किसकी अधिक है यह जाना जा सकता है। पर सम्भावना की मात्रा होती है। यदि X के A का कारण होने की सम्भावना है तब यह कैसे निश्चित किया जा सकता है कि उसकी मात्रा कितनी है अर्थात् कितना सम्भव है? यह सम्भावना की निर्धारण-विधि द्वारा ठीक किया जा सकता है।

§७. *संभावना की निर्धारण-विधि* (Calculation of Probability or Elimination of Chance)

किसी घटना के स्वतंत्र रूप से या दो घटनाओं के एक साथ घटित होने की कितनी सम्भावना है यह निम्नलिखित तरिकों से निकाला जा सकता है। यह याद रखना चाहिए कि सम्भावना की मात्रा भिन्नाकों द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(i) किसी साधारण घटना के घटित होने की सम्भावना कितनी है यह उसके घटित होने की सम्भावना को सम्पूर्ण संख्या से भाग देकर बताया जाता है। उसके घटित होने की जितनी सम्भावना है उसे हर (numerator) और सम्पूर्ण संख्या को उसका भाज्य बनाया जाता है। मान लें कि ५२ तास हो और

यदि एक को खींचा जाय तो लाल पान की दूग्गी निकलने की सम्भावना १ है और नहीं निकलने की ५१। इसलिए सम्भावना की मात्रा होगी $\frac{1}{52}$। यदि किसी दूग्गी के निकलने की सम्भावना देखी जाय तब वह होगी $\frac{4}{52}=\frac{1}{13}$ क्योंकि दूग्गी चार होती है।

(ii) इसीसे यह भी जाना जा सकता है कि लाल पान की दूग्गी नहीं निकलने की सम्भावना होगी $\frac{51}{52}$।

(ii) दो स्वतंत्र घटनाओं के एक साथ घटित होने की सम्भावना उनकी पृथक घटित होने की सम्भावनाओं का गुणनफल होता है। मान लें कि रमेश ७ दिन में एक दिन बाजार घूमने जाता है और बाजार में दूकानें ७ दिन में एक दिन बन्द रहती है। दोनों घटनाओं के साथ घटित होने की अर्थात् किसी दिन रमेश का बाजार जाना और दूकानों का बन्द रहने की सम्भावना होगी $\frac{1}{7}\times\frac{1}{7}=\frac{1}{49}$। रमेश के किसी एक दिन बाजार जाने की सम्भावना $\frac{1}{7}$ है और दूकानों के बन्द रहने की $\frac{1}{7}$ इसलिए इनके गुणनफल $(\frac{1}{7}\times\frac{1}{7})$ से एक ही दिन दोनों के घटित होने की सम्भावना का पता चलता है। इसीसे दो स्वतंत्र घटनाओं के एक साथ नहीं घटित होने की सम्भावना उसके नहीं घटित होने की पृथक सम्भावनाओं का गुणनफल होता है। किसी एक दिन रमेश के बाजार नहीं जाने की सम्भावन $\frac{6}{7}$ है और दूकानों के बन्द रहने की $\frac{6}{7}$। इसलिए दोनों के एक साथ नहीं घटित होने की सम्भावना $\frac{6}{7}\times\frac{6}{7}=\frac{36}{49}$ होगी।

(iii) ऐसी घटनाएं जो एक साथ नहीं घटित हो सकती हैं उनमें से किसी एक के घटित होने की सम्भावना उनके पृथक घटित होने की सम्भावनाओं का योगफल होता है। मान लें कि ५२ तास हैं और उनमें से एक निकाला जाय तो वह कालापान का बादशाह और लाल पान का एक्का दोनों एक साथ नहीं हो सकता है। इस दशा में वह ताश उनमें से एक ही होगा। कालापान का बादशाह निकलने की सम्भावना $\frac{1}{52}$ है और लालपान का एक्का निकलने की भी $\frac{1}{52}$। इसलिए दोनों में से कोई एक के निकलने की सम्भावना होगी $\frac{1}{52}+\frac{1}{52}$ (दोनों का योगफल)$=\frac{2}{52}=\frac{1}{26}$। इसी प्रकार यदि चार ताश में से किसी एक की सम्भावना निकालें तब उसकी संख्या होगी $\frac{1}{52}+\frac{1}{52}+\frac{1}{52}+\frac{1}{52}=\frac{4}{52}=\frac{1}{13}$।

(iv) ऐसी घटनाएं जो एक साथ घटित हो सकती हैं उनमें से एक समय

में केवल किसी एक के घटित होने की सम्भावना उनके पृथक-पृथक घटित होने की और नहीं घटित होने की सम्भावनाओं का योगफल होता है। मान लें कि लूडो के छः पासे हैं और दोनों को एक साथ फेंका जाय तो उन दोनों में से किसी एक में छः निकलने की सम्भावना क्या होगी? एक में छः निकलने की सम्भावना है $\frac{१}{६}$ और नहीं निकलने की सम्भावना $\frac{५}{६}$। इसलिए छः निकलने और नहीं निकलने की सम्भावनाओं का गुणनफल हुआ $\frac{१}{६}\times\frac{५}{६}=\frac{५}{३६}$। इसी तरह दूसरे पासे में भी छः के निकलने और नहीं निकलने की सम्भावनाओं का गुणनफल हुआ $\frac{१}{६}\times\frac{५}{६}=\frac{५}{३६}$। इसलिए दोनों में से केवल किसी एक में छः निकलने की सम्भावना होगी $\frac{५}{३६}+\frac{५}{३६}=\frac{१०}{३६}=\frac{५}{१८}$।

(v) ऐसी घटनाएं जो एक साथ घटित हो सकती हैं उनमें से एक समय में कम से कम एक के घटित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। दो लूडो के पासे को ही ले लें। उनमें से एक में कम से कम छः आने की सम्भावना होगी जब दोनों में छः आए, एक में छः आए या दूसरे में छः आए। इसलिए केवल एक में आने के अतिरिक्त यदि दोनो में आए तो उतनी सम्भावना और बढ़ जाती है। केवल किसी एक में छः आने की सम्भावना है $\frac{१}{३६}=\frac{५}{१८}$ और दोनों में एक साथ आने की $\frac{१}{६}\times\frac{१}{६}=\frac{१}{३६}$ इसलिए कमसे कम एक में छः आने की सम्भावना होगी $\frac{५}{१८}+(\frac{१}{६}\times\frac{१}{६})=\frac{५}{१८}+\frac{१}{३६}=\frac{११}{३६}$

(vi) संचित (Cumulative) गवाही के सत्यता की सम्भावना को जानने के लिए १ में से उनके पृथक असत्य होने की सम्भावना के गुणनफल को घटा दिया जाता है। मान लें कि रमेश किसी घटना का $\frac{३}{५}$ ठीक बताता है और नरेश घटना का $\frac{३}{४}$ सही बताता है। इस दशा में दोनो की गवाही से उस घटना के घटित होने की सम्भावना क्या होगी? रमेश घटना का $\frac{३}{५}$ बताता है, इसलिए वह $\frac{२}{५}$ नहीं ठीक बताता है और नरेश $\frac{१}{४}$ नहीं ठीक बताता है। इसलिए उन दोनों के नहीं ठीक बताने की सम्भावना हुई $\frac{२}{५}\times\frac{१}{४}=\frac{२}{२०}$। इसलिए दोनों के गवाही की सत्यता की सम्भावना हुई $१-\frac{२}{२०}=\frac{१८}{२०}$।

(iiv)एक कान से दूसरे कान में जानेवाली बात के सत्य होनेकी सम्भावना उनके पृथक सत्यता की सम्भावनाओं का गुणनफल होता है। मान लें कि महेश किसी घटना का $\frac{५}{६}$ भाग ठीक बताता है और जदू उसका $\frac{६}{७}$ भाग सही बताता है।

यदि महेश की बात सुनकर जहू उसके विषय में बतलाए तो उसकी सत्यता में कमी हो जाती है। उसके सत्य होने की सम्भावना होगी $\frac{४}{५} \times \frac{६}{७} = \frac{२४}{३५}$। इसी प्रकार किसी घटना के विषय में जब एक आदमी से सुनकर दूसरा फिर उससे तीसरा और उससे सुनकर चौथा, उसके बारे में कुछ कहता है तब उसका कम ही अंश सत्य होता है। इसलिए अफवाह अधिकतर असत्य होते हैं।

§८. *संभावना का प्रयोग* (Use of Probability)

इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करने से ही इसका वैज्ञानिक महत्व हो सकता है। वकील, वक्ता तथा इस तरह के लोग इसका दुर्व्यवहार करते हैं। जहां सम्भावना की मात्रा कम है और उसके विपरीत अन्य बाते हैं वहां विपरीत बातों को दबा कर कम सम्भावना वाली बात को ही मुख्य बना दिया जाता है। विज्ञान में संख्या की सतर्कता से विवरण देकर ही सम्भावना की मात्रा निकाली जाती है। इसलिए हमें ध्यान रखना चाहिए कि जहां संख्या की गणना पूर्ण रूप से नहीं हुई हो वहां सम्भावना के मात्रा की संख्या पर अनावश्यक जोर नहीं देना चाहिए। जहां संख्या उपलब्ध हो वहां अपने मन से सम्भावना निश्चय नहीं कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह याद रखना चाहिए कि सम्भावना द्वारा प्राप्त फल औसत के लिए ही सत्य होते हैं। यदि किसी घटना के घटित होने की सम्भावना $\frac{१}{३}$ है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि ३ बार में वह एक बार अवश्य ही होगी। ऐसा सम्भव है तीनो बार में वह एक बार भी घटित नहीं हो। पर यदि उसके अधिक उदाहरण लिए जांय तो करीब-करीब यही हिसाब बैठेगा। मान लें कि पैसे को उछाला जाय तो चित्त गिरने की सम्भावना $\frac{१}{२}$ है अर्थात् दो बार में एक बार पर यह सम्भव है कि चार बार पैसा उछालने पर भी चित्त वह एक बार भी नहीं गिरे। पर यदि १००० बार पैसा उछाला जाय तो करीब-करीब ५०० बार वह चित्त गिरेगा। इसलिए इस बार या उस बार वह चित्त गिरेगा या पट यह नहीं कहा जा सकता है पर औसत (Average) के लिए सम्भावना की मात्रा ठीक होगी। अतः अब औसत का अर्थ जान लेना चाहिए और औसत निकलने की विधि भी। औसत निकालने की विधि संख्यात-विधि (Statistical Method) के द्वारा मिलती है। अतः इसका विवरण वहीं मिलेगा।

§९. *सम्भावना और आगमन* (Probability and Induction)

इसके विषय में दो मत हैं। एक मत के अनुसार आगमन संभावना पर आश्रित है और दूसरे मत के अनुसार सम्भावना आगमन पर निर्भर है। पहले मत का अर्थ है

कि आगमन के कोई भी निष्कर्ष निश्चयात्मक नहीं होते हैं। उनमें बहुत अधिक मात्रा में सम्भावना हो सकती है पर वे निश्चित नहीं माने जा सकते हैं।

पहले मत के समर्थक जेवन्स (Jevons), रसेल इत्यादि तार्किक हैं। जेवन्स ने बतलाया है कि आगमन के निष्कर्षों में निश्चयता (certainty) दो बातों पर निर्भर है, (i) जिस विषय में निष्कर्ष हो उसका पूर्ण रूप से तथा शुद्ध निरीक्षण हुई हो और (ii) प्रकृति में समरूपता हो। पहली शर्त तो कभी पूरी हो ही नहीं सकती क्योंकि विश्व इतना विशाल है कि किसी विषय के सभी उपाधियों (conditions) का पूर्णरूपेण निरीक्षण सम्भव नहीं है। कोई घटना इतनी उपाधियों पर आश्रित रहती है कि सब का निरीक्षण नहीं किया जा सकता है। दूसरे, निरीक्षण में भूल हो जाने की सम्भावना अत्याधिक रहती है। यदि निरीक्षण करने में भूल नहीं भी हो तब भी भिन्न मनुष्यों का या एक ही मनुष्य का भिन्न समय में एक ही घटना के निरीक्षण में भेद हो जाता है। ऐसा अधिकतर व्यक्तिगत विकारों (Personal factors) के कारण होता है।

दूसरी शर्त तो हमारे विश्वास पर निर्भर हैं। प्रकृति सदा समरूप रहेगी ऐसा तो केवल विश्वास ही किया जा सकता है, सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि भविष्य में क्या होगी इसकी केवल सम्भावना ही की जा सकती है। भविष्य का अनुभव मनुष्य को नहीं होता है अतः पूर्ण निश्चयता के साथ कोई बात कैसे कही जा सकती है? इन दोनों कारणों से यह सिद्ध होता है कि आगमन के निष्कर्ष में निश्चयता (absolute certainty) नहीं हो सकती है। अतः आगमन सम्भावना पर आश्रित है।

जेवन्स का मत उचित नहीं है। दार्शनिक अर्थ में तो कोई ज्ञान निश्चित नहीं है क्योंकि भविष्य में प्रकृति का व्यवहार किस प्रकार का होगा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। पर विज्ञान में इस प्रकार की निश्चयता नहीं ढूँढ़ी जाती है। विज्ञान में किसी नियम को निश्चयात्मक इसी शर्त पर माना जा सकता है कि जब प्रकृति की बनावट जैसी आज है वैसी ही भविष्य में रहे। यदि प्रकृति ऐसी बदल जाय की आग में ठण्ढक हो जाय और पानी से ताप निकले तब उस दशा में विज्ञान के नियम सत्य नहीं होंगे। पर वे नियम इसी शर्त पर निश्चयात्मक माने गए हैं कि प्रकृति समरूप रहेगी। इस अर्थ में वे नियम जो कार्य-कारण सम्बन्ध पर आश्रित हैं, निश्चयात्मक माने जाते है। पर वैसे आगमन जो कार्य-कारण नियम पर आश्रित नहीं हैं, जैसे, व्यावहारिक आगमन, सादृश्यानुमान इत्यादि, सम्भावित (probable) हैं। इसलिए आगमन सम्भावना पर आश्रित नहीं है,

सम्भावना ही आगमन पर आश्रित है। हमारे वैसे निष्कर्ष जो सम्भव हैं निरीक्षण के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। यदि हमने अनुभव किया कि किसी जमीन में उपज अधिक होती है तो और साल भी उपज वैसी ही होगी इसकी सम्भावना बतलाते हैं। ऐसा सम्भव निष्कर्ष अनुभव के आधार पर ही स्थापित किया गया है। अत: सम्भावना आगमन पर ही आश्रित है क्योंकि ऐसे निष्कर्ष अनुभव पर निर्भर हैं।

§१०. *संभव अनुमान* (Probable Arguments)

अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान निश्चयात्मक तथा सम्भव दोनों हो सकता है। सम्भव अनुमान उसे कहा जाता है जिसमें अनुभव कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं सिद्ध करता हो। ऐसे अनुमान वे हैं जिनमें कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं सिद्ध किया गया हो।

व्यावहारिक आगमन (Induction per simple Enumeration) के निष्कर्ष सम्भव ही होते हैं, निश्चयात्मक नहीं। सादृश्यानुमान तथा असिद्ध कल्पनाएं भी अनिश्चित ही होती हैं। व्यावहारिक आगमन के सत्य होने की कितनी सम्भावना है यह उदाहरणों के निरीक्षण करने पर निर्भर है। जितना अधिक उदाहरण का निरीक्षण किया जाता है उसके सत्य होने की सम्भावना उतनी ही अधिक है। सादृश्यानुमान के सत्य होने की कितनी सम्भावना है यह सादृश्यता पर आश्रित है। जितना अधिक और महत्वपूर्ण बातों में दो पदार्थों में सादृश्यता होती है उतनी ही अधिक मात्रा में उस अनुमान के सत्य होने की सम्भावना है। असिद्ध कल्पनाएं सिद्ध हो जाने पर तो नियम ही हो जाती हैं।

निकटतम सामान्यीकरण (Approximate Generalisations) भी सम्भव अनुमान ही है। अधिकांश को देखकर जब कहा जाता है कि अधिकांश A , B हैं तो इसे निकटतम सामान्यीकरण कहा जाता है। लोकोक्तियां इसी प्रकार की होती हैं। व्यावहारिक क्षेत्र में इसका बहुत महत्व है। विज्ञान में इसका महत्व उतना अधिक नहीं है। पर निकटतम सामान्यीकरण भी दो प्रकार के हैं। एक में विपरीत उदाहरणों का ज्ञान रहता है पर वे थोड़ी संख्या में मिलते हैं इसलिए कहा जाता है अधिकांश A B हैं। दूसरे में विपरीत उदाहरण का ज्ञान नहीं रहता। ऐसी दशा में यह सम्भव है कि सभी A, B हों। अत: वे कार्य-कारण सम्बन्ध का संकेत करती हैं। जहां गणना सम्भव है वहां इस प्रकार के अनुमान में निश्चयात्मकता लाई जा सकती है। यदि गणना के द्वारा यह पता लगा लिया जाय कि कितने A, B नहीं हैं तब अपवाद का ज्ञान हो जाता है और अधिकांश A, B है, यह निश्चयात्मक हो जाता है। पर निकटतम सामान्यीकरण

के आधार पर निगमन सम्भव नहीं है। यह ज्ञान रहने पर की अधिकांश मनुष्य चोर हैं किसी विशेष मनुष्य के बारे में कुछ निश्चित निष्कर्ष नहीं निकल सकता। यदि कोई निष्कर्ष भी निकाला जाय तब उसके सत्य होने की सम्भावना ही रहेगी, निश्चयता नहीं।

§११. *अभ्यास*

1. Is there anything as Chance ? Is it Subjective or Objective ?
2. What is the relation between Chance and causal connection ? How can we eliminate Chance ?
3. What do we understand by Probability ? How is it related to Induction ?
4. Is Induction based upon the theory of Probability ? How far do you agree in maintaining that all knowledge is probable ?
5. What are the grounds of Probability ? Discuss.
6. What are the ways of calculating Probability ? Explain.
7. What is the use of the theory of Probability ? Point out the relation between Probability and Belief.
8. "Every argument in favour of a conclusion, however flimsy and slight, adds probability to it." Examine this statement.
9. Explain the various Probable arguments. What is their importance in a scientific inquiry ?
10. *X* Speaks truth 3 times out of 4, and *Y* 7 times out of 10; they both assert that a mango has been taken out from a bag; find the Probability of the truth of the assertion.
11. From 20 tickets marked with the first 20 numerals, one is drawn at random; find the chance that it is a multiple of 3 or of 7.
12. Calculate the Probability of throwing two sixes with a pair of dice.
13. How does the theory of Probability meet the difficulty arising from Intermixture of Effects ? Explain.

दसवाँ अध्याय

संख्यात-विधि (Statistical Method)

§१. संख्यात-विधि की आवश्यकता
§२. संख्यात-विधि क्या है ?
§३. संख्यात्मक अन्वेषण की सामान्य विधि (General Method)
§४. A. घटना-विशेषों का इकट्ठा करना (Collection of Data)
B. घटना-विशेषों को अंकित करना (Tabulation)
C. औसत (Average)— Mean, median and mode
D. सम्बन्धन (Correlation)
§५. व्यक्तिगत विकार (Personal Equation)
§६. अभ्यास

§१. *संख्यात-विधि* (Statistical Method) *की आवश्यकता*

अपने-अपने क्षेत्रों में पदार्थों का नियम स्थापित करना ही प्रत्येक विज्ञान का लक्ष्य है। कार्य-कारण सिद्ध करने पर ही नियमों की स्थापना होती है। अतः पदार्थों के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करना आवश्यक है। पर प्रकृति की घटनाएं बड़ी जटिल होती हैं। जहां घटनाएं सरल होती हैं मिल की विधियों द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। जहां अनेक कारण मिलकर कार्योत्पादन करते हैं वहां निगमनयुक्त आगमन (Deductive Method) का प्रयोग किया जाता है। पर कभी-कभी अनेक कारण भिन्न समय में एक ही कार्य उत्पन्न करते हैं। यहां निश्चित कारण का पता लगाना कठिन होता है। ऐसी दशा में सम्भावना-सिद्धान्त का व्यवहार किया जाता है। पर सम्भावना-सिद्धान्त द्वारा प्राप्त निष्कर्ष औसत (Average) के लिए ही सत्य होते हैं। यदि कोई पासा फेंकी जाय तो छक्के के निकलने की सम्भावना $\frac{1}{6}$ होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि छः बार पासा फेंकने पर छक्का एक बार अवश्य ही आयगा। पर यदि अधिक बार पासा फेंकी जाय तो लगभग यही फल होगा। किसी घटना के होने की कितनी सम्भावना है और औसत (Average) इत्यादि की गणना

संख्यात्मक-विधि द्वारा होती है। कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने में प्रकृति की जटिलता के कारण और भी कठिनाई होती है। ऐसा अधिकतर समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों में होता है। सामाजिक घटनाओं में इतने अधिक और इतनी सूक्ष्म स्थितियां होती हैं कि यह जानना कि किसी घटना के घटित होने में कौन से सहायक हैं, कठिन है। इसके अतिरिक्त उनमें नियत सम्बन्ध भी नहीं दीखता है। उदाहरणार्थ, आमदनी और स्वास्थ्य में, लम्बाई और शरीर के वजन में, मस्तिष्क और बुद्धि में, इत्यादि। इन सबों में इतनी स्थितियां काम करती हैं कि उनका विश्लेषण करना साधारणतः सम्भव नहीं है संख्यात-विधि के द्वारा इन विषय घटनाओं को स्पष्ट अंशों में खण्डित करके हम उनके बीच सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अतः इन क्षेत्रों में कोई नियम स्थापित करने के लिए यह विधि आधार (data) तैयार करती है।

इसके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी घटनाएं होती हैं जो साधारणतः असम्बन्धित प्रतीत होती हैं पर वास्तव में कुछ अंशों में एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। इसलिए जब एक में घटती-बढ़ती होती है तो दूसरे में भी नियमानुसार घटती-बढ़ती होती है। उनके बीच कारण-सम्बन्ध नहीं, क्रियात्मक (functional) सम्बन्ध होता है। उदाहरणार्थ, आमदनी और खुराक, घर का वातावरण और किराया, इत्यादि। यहां एक दूसरे से कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है पर एक में भेद होने से दूसरे में भी किसी नियमानुसार परिवर्तन होता है। इसलिए उनमें क्रियात्मक सम्बन्ध है। दो पदार्थों में क्रियात्मक सम्बन्ध होता है जब कि एक में परिवर्तन होने से दूसरे में भी नियमानुसार परिवर्तन हो। ऐसी दशा में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं अपितु उन पदार्थों के बीच संख्यात्मक (numerical) सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की जाती है। संख्यात-विधि द्वारा गणना करके यह बतलाया जाता है कि 'A' की कितनी संख्या या परिमाण से 'B' की कितनी संख्या या परिमाण का सम्बन्ध है। इस प्रकार दो पदार्थों या घटनाओं के बीच, जिनमें क्रियात्मक सम्बन्ध है, संख्यात-विधि संख्यात्मक संबंध स्थापित करती है।

आधुनिक काल में विज्ञान केवल इतना ही जान कर सन्तुष्ट नहीं होता कि 'B' का कारण 'A' है। कितना 'A' कितने 'B' की उत्पत्ति करेगा, यह जानने की

चेष्टा रहती है। इस प्रकार का सम्बन्ध संख्यात-विधि द्वारा ही जाना जा सकता है। अत: आजकल सभी विज्ञान में इस विधि का प्रयोग होता है।

सारांश यह हुआ कि संख्यात विधि का प्रयोग और उसकी आवश्यकता निम्नलिखित क्षेत्रों में होती है :—

(i) जहां अनेक कारण काम करते हैं वहां सम्भावना-सिद्धान्त द्वारा फल निकालने में और औसत (Average) निकालने में।

(ii) जहां विषय-घटना जटिल हो वहां उसे सरल अंशों में खण्डित करनेमें।

(iii) दो घटनाओं के बीच संख्यात्मक (numerical) सम्बन्ध बतलाने में।

§२. *संख्यात-विधि क्या है ?*

संख्यातशास्त्र (Statistics) उस विज्ञान को कहा जाता है जिसमें वैज्ञानिक ढंग से गिनती करने की विधि बताई जाती है। यूं तो गणितशास्त्र में भी गिनती से ही सम्बन्ध है पर संख्याशास्त्र उससे भिन्न है। इसमें अधिक से अधिक संख्या की गिनती होती है और इसका फल औसत के लिए ही सत्य होता है। अत: इसके फल निश्चित (exact) नहीं होते।

संख्याशास्त्र में जो गिनती की विधि बताई जाती है उसे ही संख्यात-विधि कहा जाता है। जहां विषयों को संख्या द्वारा व्यक्त किया जा सकता है या गणना सम्भव है वहां गणना के आधार पर उनके बीच संख्यात्मक सम्बन्ध इसी विधि द्वारा स्थापित किया जाता है। इसमें गणना वैज्ञानिक ढंग से की जाती है। किसी स्थान की जनसंख्या कितनी है, मनुष्य की लम्बाई और वजन में क्या सम्बन्ध है, किसी देश में कितने उम्र में अधिक लोगों की मृत्यु होती है, स्मरण-शक्ति और बुद्धि में क्या सम्बन्ध है, इत्यादि समस्याएँ संख्यात-विधि द्वारा ही निश्चय की जाती है। इस विधि का प्रयोग प्रत्येक विज्ञान में होने लगा है।*

संख्यात्मक अन्वेषण दो क्षेत्रों में लागू हो सकता है, स्थिर (constant) तथा अस्थिर (variable) राशियों में। बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जहां घटाव-बढ़ाव का प्रश्न नहीं उठता है —जैसे, यदि हम मनुष्यों में किसी गुण का भाव या अभाव

* It is a science of the measurment of the social organism regarded as a whole, in all its manifestations.....It may also be called the science of Averages.—Bowley

किसी काम के लिए कोई आंकड़ा तैयार किया जाता है तो उसे भी Statistic कहा जाता है। इस अर्थ में Statistic नामवाचक है।

जानना चाहते हैं तब यहां उसके घटती-बढ़ती की समस्या नहीं है। उदाहरणार्थ, हम संख्यात-विधि द्वारा गणना करके जान सकते हैं कि कितने मनुष्य अन्धे हैं। गणना के ही आधार पर युद्ध-काल में हर शहर की आबादी ली गई थी। यहां गुणों की गणना (Statistics of Attributes) हुई है। बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जिनमें घटती-बढ़ती होती रहती है, जैसे, समय, उम्र, गति, इत्यादि में। ये अस्थित राशियां(variables) हैं। जिसके मूल्य में परिवर्तन हो उन्हें ही Variable कहा जाता है। ऐसे Variables जिनमें घटाव-बढ़ाव होने से दूसरे में भी घटाव-बढ़ाव होता है, एक दूसरे से सम्बन्धित माने जाते हैं और एक को दूसरे का function कहा जाता है। A को B का function कहा जायगा यदि A में परिवर्तन होने से B में भी परिवर्तन हो। इस दशा में A को independent variable कहा जायगा और B को dependent variable। इसी प्रकार प्यास को गर्मी का function कहा जा सकता है।

संख्यातविधि द्वारा ऐसे variables के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह variables की गणना (Statistics of Variables) हुआ।

§३. *संख्यात्मक अन्वेषण की सामान्य विधि* (General Method of Statistical Investigation)

संख्यातमक-विधि का प्रयोग भिन्न तरीकों से होता है पर तौभी सामान्य रूप से उनमें चार मुख्य steps होते हैं।

(i) घटना विशेषों का इकट्ठा करना (Collection of Data)—इसमें अनुभव और बुद्धि ही सहायक है। इसके लिए कोई विशेष नियम नहीं बताया जा सकता है। पर, अधिकतर, प्रश्नावली तैयार करके ही उसका 'हां' या 'ना' में उत्तर मागां जाता है और data इकट्ठा किया जाता है।

(ii) संख्या,जो प्राप्त की गई है, उन्हें अंकित करना (Tabulation) भी वैज्ञानिक विधि से ही होती है।

(iii) इस प्रकार जब अंक तैयार हो जाते हैं तब उनमें से जो मुख्य और सांकेतिक संख्या है उन्हें निकाला जाता है। ऐसा औसत (Average) निकालने से ही होता है। इस प्रकार आधार का सारांश (summary) निकाल जाता है।

(iv) पर औसत निकालना ही संख्यात-विधि का लक्ष्य नहीं है। औसत

से भ्रंश (Deviation) कितना होता है यह भी जानना आवश्यक है। अन्त में इन्हीं आधार पर दो घटनाओं के बीच सम्बन्ध (Correlation) स्थापित किया जाता है। सारांश यह हुआ कि,

(i) घटना-विशेषों का इकट्ठा करना (Collection of Data),

(ii) उन्हें अंकित करना (Tabulation),

(iii) उनका सारांश (Summary) और

(iv) सम्बन्धन (Correlation), यही संख्यात-विधि के steps हैं।

§४. (A) *घटना-विशेषों का इकट्ठा करना* (Collection of Data)

यद्यपि इस क्रिया में किसी विशेष नियम का पालन नहीं करना पड़ता पर दो तीन बातें यहां भी आवश्यक हैं।

(a) अणुपरिमाण (units) के अर्थ को निश्चित करना—जिस विषय का अन्वेषण किया जाता है उसकी परिभाषा अच्छी तरह जान लेनी चाहिए। मान लें कि यह पता लगाना है कि जनसंख्या का कितना भाग विद्यार्थी है तब यहां विद्यार्थी का अर्थ अच्छी तरह स्पष्ट कर देना चाहिए। विद्यार्थी से कालेज, स्कूल, पाठशाला और घर पर अध्ययन करनेवाले सभी पढ़नेवालों का संकेत किया गया है या कोई खास किस्म के पढ़नेवाले का यह निश्चित कर लेना चाहिए अन्यथा निष्कर्ष दूषित हो जाने की सम्भावना रहती है। गणना करने के पहले यह जान लेना चाहिए कि क्या गिनना है और गिन लेने के बाद यह भी कि क्य गिना गया है।

(b) गणना के आधार पर जो निष्कर्ष निकाला जाता है उसके सत्य होने की सम्भावना तभी अधिक होगी जब संख्या अधिक हो। मान लें कि लम्बाई और वजन में सम्बन्ध निकालना है तब यदि दस या पन्द्रह उदाहरणों के आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाय तब उसके सत्य होने की सम्भावना बहुत ही कम होगी। इसलिए अधिक से अधिक संख्या की गणना करना ही उत्तम है।

(c) गणना करने में शुद्ध उदाहरण (Samples) का ध्यान रखना चाहिए। मान लें कि दो देशों के १० वर्षीय बच्चों की बुद्धि को मापना है तब ऐसे बच्चों का निरीक्षण करना चाहिए जो एक समान हों। एक देश के अमीर घराने के दस वर्षीय बालकों की बुद्धि और दूसरे देश के गरीब घरों के दस वर्षीय बालकों की

बुद्धि मापी जाय तो फल दूषित होगा क्योंकि एक समान नमूना (Sample) नहीं लिया गया है। अतः नमूना या उदाहार चुनने में सावधानी की आवश्यकता है। उदाहार किसी विशेष परिस्थिति से नहीं लेना चाहिए, यह जहां तहां (randon) से होना चाहिए।

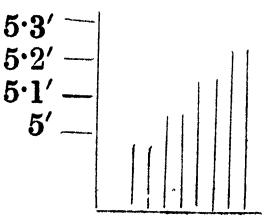
इन्हीं शर्तों को ध्यान में रख कर जिस विषय का अन्वेषण करना हो उसकी प्रश्नावली की सूची तैयार करके data इकट्ठा किया जाता है।

(B) घटना-विशेषों को अंकित करना (Tabulation and Classification)

Data इकट्ठा कर लेने पर उन्हें अंकित करने का प्रश्न होता है। अंकित करने का वा वर्गीकरण का अर्थ है व्यवस्थित रूप में रखना। मान लें कि किसी स्कूल के लड़कों की परीक्षाफल की तुलना करनी हो तब हम उनका नम्बर पता लगाते हैं। ये नम्बर इस प्रकार हैं—(क) १०, ७५, ६०, ३५, २०, २५, ५, १५, ४५, ४०, और (ख) ४५, २५, २२, ५८, २७, ३५, ४०, ६०, ११, ७। इन्हें अंकित करने के लिए श्रेणीवद्ध कर लेना चाहिए। अब उन्हें इस प्रकार लिखा जायगा—पहला (च) ७५, ६०, ४५, ४०, ३५, २५, २०, १५, १०, ५, और दूसरा (छ) ६०, ५८, ४५, ४०, ३५, २७, २५, २२, ११, ७। (क) और (ख) श्रेणी अनियमित (ungrouped) हैं और (च) और (छ) श्रेणी नियमित (grouped)। (च) श्रेणी में सबसे ऊंचा नम्बर ७५ है और सबसे कम ५,(छ) में ६० और ७। सबसे ऊंचे गुणांक और सबसे छोटे गुणांक के अन्तर को विस्तार (Range) कहा जाता है। अतः (च) श्रेणी का विस्तार (range) ७० और (छ) का ५३ है।

इसी प्रकार मापों measurments को रेखाओं द्वारा भी अंकित किया जा सकता है। मान लें कि कुछ मनुष्यों की लम्बाई की माप ली गई है तब उन मापों को सीधी रेखा द्वारा भी हम संकेत कर सकते हैं। प्रत्येक रेखा कोई निश्चित लम्बाई को संकेत करेगी। इस प्रकार की व्यवस्था को Array कहा जाता है।

उदाहरणार्थ,



ऊपर बताए हुए तरीके वहीं लागू होते हैं जहां मापों की संख्या कम है। जहां बहुत अधिक मापें ली गई हैं वहां टेबुल बना कर ही गुणांकों को अंकित किया जाता है। टेबुल बनाने में Single Tabulation, Double Tabulation या Treble Tabulation की विधि प्रयोग में लाई जाती है। जब गुणांकों की संख्या ज्यादा रहती है और एक ही गुणांक कई बार आते हैं तो उन्हें बार (Frequency) के अनुसार अंकित किया जाता है।

मान लिजिए कि ४० लड़कों का नम्बर दिया हुआ है —

(प) ३१, ४४, ३४, ३२, ४३, ४७, ३६, १८, ३८, ३६, ४६, ५४, २७, २४, ४२, ३६, १७, ३६, ६७, ५०, ३१, ५७, ५५, ४१, १६, १०, ३२, २५, २२, १६, ५५, ६५, ३१, ४५, ४१, ३६, ३६, ४०, ३०, ५४। अब इन गुणांकों को बार के अनुसार इस प्रकार वर्गीकरण करेंगे।

नम्बर	Tabulation	बार (Frequency)
०-९		
१०-१९	XXXXX	५
२०-२९	XXXX	४
३०-३९	XXXXXXXXXXXXX	१३
४०-४९	XXXXXXXXX	९
५०-५९	XXXXXX	६
६०-६९	XX	२
७० ७९		
८०-८९		
९०-९९		

Frequency का अर्थ है बार--जितनी बार जो गुणांक आती है वही उसकी frequency होती है। Frequency जानने के लिए नम्बर को वर्गों में बांटना पड़ता है। यहाँ दस नम्बरों का एक-एक वर्ग (class) बनाया गया है। इस प्रकार ० से ९ तक, १० से १९ तक के बीच जितने नम्बर होंगे सब उसी वर्ग के माने जायँगे। यदि १५ नम्बर है तब वह१०-१९ के वर्गमें आयगा और ४३ तब४०-४९ के वर्ग में।

इस प्रकार वर्गों में विभाजित करके जितने का वर्ग होता है उसे Class interval कहा जाता है। इस प्रकार यदि data का वर्गीकरण किया जाय तब उसे ही Frequency distribution कहा जाता है।

इन्हीं विधियों से इकट्ठा किए हुए data का प्रयोग होता है।

(C) औसत (Average):—

वैज्ञानिक अन्वेषणों में अनेक उदाहरणों का निरीक्षण करना पड़ता है और उनसे अनेक माप मिलते हैं। इस प्रकार जितने माप या गुणांक इकट्ठा किए जाते हैं उनमें से मुख्य गुणांक निकालना आवश्यक हो जाता है। उदाहरणार्थ, १०, ११, १२, १३ और १४में '१२' मध्यवर्ती अंक है और उससे सामान्य प्रवृति (general tendency) का पता चलता है क्योंकि सभी अंक उसी के लगभग हैं। सामान्य प्रवृति औसत(Average)निकाल कर जानी जाती है। मान लें कि एक गाड़ी ६० मील तीन घंटे में चली है तब गाड़ी की औसत चाल २० मील एक घंटे में होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह गाड़ी २० मील से कम या ज्यादा नहीं चली होगी। औसत केवल सामान्य प्रवृति को बतलाता है। वह गाड़ी कभी १० मील की चाल से चली होगी या कभी ३० मील की चाल से पर २० मील ही औसत है। औसत के द्वारा बहुत से अंक थोड़े में ही व्यक्त हो जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि औसत यथार्थ ही हो। हो सकता है वह गाड़ी २० मील की चाल से कभी नहीं चली हो।

औसत निकालने की विधि:—साधारणत: औसत का तीन रूप बताया जाता है—Mean, Median और Mode.

(a) Mean (Arithmetic)—औसत निकालने का यह सबसे प्रचलित रूप है। साधारणत: Mean और Average एक ही माना जाता है। पर Average के और भी रूप हैं। Mean Average का केवल एक रुप है। ❀

Mean निकालने का तरीका:— सभी गुणाकों के योगफल को गुणाकों की जितनी संख्या हो उससे भाग देने से जो गुणांक प्राप्त हो वही Mean कहलाता है। उदाहरणार्थ, पांच लड़कों का नम्बर है, २२, २८, ३५, ४५, ६०। इसमें Mean हुआ $\frac{२२+२८+३५+४५+६०}{५}=\frac{१९०}{५}=३८$.। गणित के अनुसार इसका

❀ Mean का भी दो रूप होता है, Simple mean और Weighted mean। Mean तीन प्रकार का होता है -Arithmetic mean, Geometric mean और Harmonic mean। इनकी सविस्तार व्याख्या के लिए देखिए— Statistics by Yule and Kendall.

formula है, $M=\frac{S(X)}{N}$। यहां M का अर्थ है Mean, S का योगफल, N का, गुणांकों की संख्या और X अलग अलग गुणांकों को संकेत करता है। इसी formula के अनुसार Mean और S(X) दिये रहने पर गुणांकों की संख्या निकाली जा सकती है $M=\frac{S(X)}{N}$ $\therefore N=\frac{S(X)}{M}$ या $M\times N= S(X)$

इसीके अनुसार (क) श्रेणी का Mean हुआ $\frac{३३०}{१०}=$ ३३ और

(ख) श्रेणी का Mean हुआ $\frac{३३०}{१०}=$३३.

जहां बहुत अधिक गुणांक दिये हुए हैं और एक ही गुणांक कई बार आता है वहां उतने गुणांकों को साधारण तरीके से जोड़ना कठिन होता है। उदाहरणार्थ, ४० गुणांक दिये हुए हों, जिसमें १८ पांच लड़कों को, २५ दस को, ३५ दस को ३६ दस को है और ४० पांच को मिला है। उनकी निम्नलिखित विधि से Mean निकाली जाती है—

नम्बर—बार	×	नम्बर—गुणनफल
१८ — ५	×	१८ =९०
२५ — १०	×	२५ =२५०
३५ — १०	×	३५ =३५०
३६ — १०	×	३६ =३६०
४० — ५	×	४० =२००

योगफल =१२८०—S[X]— अतः Mean हुआ—$\frac{१२८०}{४०}=$३२

इसे इस formula द्वारा व्यक्त किया जाता है $M=\frac{S[fx]}{N}$

यहाँ S [fx]—१२८० है। * यही Weighted Mean है।

---

* Geometric Mean निकालने का formula—$G=(x_1\times x_2\times x_3\times \times x_n)^{\frac{1}{n}}$। मान लें ३ गुणांक दिया हुआ है ३, ६ और २७ तब इसका Geometric Mean हुआ $G=(३\times ६\times २७)^{\frac{१}{३}}=(७२६)^{\frac{१}{३}}=६$.

Harmonic Mean निकालने का formula— $\frac{1}{H}=\frac{1}{n}S\left(\frac{1}{x}\right)$

(b) Median — औसत निकालने का यह दूसरा तरीका है। औसत निकालने की यह बहुत ही सरल विधि है।

विधि:— अंकों की या मापों को परिमाण के अनुसार क्रम में रखकर जो अंक बीच में आये वही Median है। Median मध्यवर्ती अंक है।

मान लें, कुछ अंक दिए हुए हैं, ६, १४, २०, ५०, ४५, ३५, २२। इसे परिमाण के अनुसार क्रम में रखा जायगा— ६, १४, २०, [२२] ३५, ४५, ५०; यहां सात अंक हैं; इसलिए मध्यवर्ती अंक है चौथा, २२; यही Median है। Median निकालने का formula $\frac{n+1}{2}$th अंक। यहां n का अर्थ है अंको की संख्या। ऊपर में सात अंक दिए हुए हैं इसलिए $\frac{७+१}{२}$वां अर्थात् चौथा अंक (२२) ही Median है। यदि अंकों की सख्या फुट न हो कर जोड़ा(even) हो तब बीच के दो अंकों को जोड़ कर दो से भाग दे देने पर median प्राप्त होता है। (च) और (छ) श्रेणी में दस गुणांक हैं अत: ५ वां और ६ वां अंक को जोड़ कर २ से भाग देने पर median प्राप्त होगा। (च) श्रेणी का median— $\frac{३५+२५}{२}=३०$ और (छ) का $\frac{३५+२७}{२}=३१$। इसका formula $\frac{n}{2}$th और $\frac{n+2}{2}$th अंक के योगफल को २ से भाग देने पर median प्राप्त होता है। (च) श्रेणी में दस अंक हैं अत: $\frac{n}{2}$th अंक हुआ ५वां अंक और $\frac{n+2}{2}$th अंक हुआ $\frac{१०+२}{२}$ अर्थात् ६ वां अंक। ५वां अंक है ३५, ६वां २५ अत: madian हुआ $\frac{३५+२५}{२}=३०$

जहां गुणांक लगातार हैं वहां median सबसे उत्तम औसत (Average) है। जैसे, ५, ६, ७, ८, ९। पर जहां गुणांक लगातार नहीं है वहां ऐसे औसत का अर्थ अनिश्चित है। जैसे ८०, ४५, ४०, १० ७, ३, २। यहां median १० है जिससे औसत का पता नहीं चलता है।

(C) Mode— औसत प्राप्त करने की यह तीसरी विधि है। जो गुणांक सबसे अधिक बार आता हो वही mode है। जहां class-interval दिया हो वहां उसके बीच का अंक ही mode होता है।

उदाहरण:—(१) १०, १५, ३६, १५, १०, ३६, ९, ८, ३६, ३, ३६; इतने

गुणांक में ३६ चार बार, १५ दो बार, १० दो बार और बाकी गुणांक एक-एक बार आए हैं, अत: ३६ Mode हुआ।

(२) (च) श्रेणी में ३०–३९ class interval सबसे अधिक बार आया है; यह class interval १० का है अत: ३४$\frac{१}{२}$ mode हुआ।

(३) Mean और median दिए रहने पर भी mode निकाला जा सकता है।

Mode=Mean–3 (Mean–Median)

सबसे उत्तम औसत वही है जिसमें निम्नलिखित बातें हों:—

(a) उसकी परिभाषा कर दी गई हो।

(b) जितने उदाहरणों का निरीक्षण हुआ हो सभी के आधार पर औसत निकाली गई हो।

(c) अयथार्थ नहीं हो।

(d) सरल हो।

(e) यदि दो samples की औसत निकाली जाय तब दोनों समान हों।

(f) जो आसानी से algebraic form में परिणत हो जाय।

Mean में (a), (b), (d), (e) और (f) बाते मिलती हैं पर यह अयथार्थ भा हो सकता है। मान लें कि तीन लड़कों ने ५, २०, ३० नम्बर पाए हैं तब mean हुआ १८$\frac{१}{३}$; पर यह नम्बर तीनों में से किसी को नहीं है। दूसरी बात यह कि यदि गुणांकों की संख्या अधिक है तो योग करने में कठिनाई होती है और तीसरी बात की यदि कुछ नम्बर बहुत कम हो जाता है और बाकी साधारण तब mean बहुत कम हो जाता है। उसी प्रकार कम नम्बर हो और कुछ ही अधिक तब mean ज्यादा हो जायगा। परयह बहुत ही प्रचलित है। Median में (a), (b)और (c) बातें ठीक हैं पर यह mean से अधिक सरल है। (f) में mean इससे उत्तम है। इसमें एक दोष यह है कि यदि गुणांक लगातार न हों तब केन्द्रीय प्रवृत्ति का पता नहीं चल सकता है। Mode आरम्भिक प्रयोग के लिए उपयुक्त नहीं है और संख्यात विधि में इसका अधिक प्रयोग नहीं होता है।

(d) Deviation (भ्रंश)

किसी श्रेणी को पूर्ण रूप से जानने के लिए और साथ-साथ दो श्रेणियों की तुलना करने के लिए भ्रंश का अर्थ जानना आवश्यक है। दो श्रेणियों की तुलना विस्तार निकाल कर भी जानी जा सकती है। मान लें, एक स्कूल के पांच लड़कों का नम्बर है— १, १०, ४५, ६०, ८१ और दूसरे स्कूल के उसी क्लास के पांच लड़कों का नम्बर है— ३०, ४५, ६०, ७०, ८०। पहली श्रेणी का विस्तार है ८० और दूसरी का ५०। इससे यह स्पष्ट है कि पहले उदाहरण में लड़कों में योग्यत की दृष्टि से बहुत भेद है पर दूसरे में उतना भेद नहीं है। पर इस प्रकार की तुलना का ज्ञान भ्रंश जान कर निश्चित रूप से हो सकती है। दूसरी श्रेणी का पूर्ण ज्ञान भी भ्रंश ही जान कर सम्भव है। मान लें,किसी श्रेणी की (४२, ४८, ५०, ५२, ५८) जिसमें पांच अंक है औसत है ५०। एक दूसरी श्रेणी है (४, ६, ७०, ८०, ९०) जिसमें पांच अंक हैं और औसत उतना ही है—५०, पर दोनो श्रेणी में बहुत अन्तर है। पहली श्रेणी में प्रत्येक अंक ५० के करीब है; पहला नम्बर औसत से ८ कम है और आखरी ८ अधिक। पर दूसरी श्रेणी में प्रत्येक अंक ५० के करीब नहीं है अपितु उससे बहुत हटा हुआ है। पहला अंक औसत (५०) से ४६ कम है, दूसरा, ४४, तीसरा २० अधिक, चौथा ४० और आखरी ४० अधिक। औसत से प्रत्येक अंक का जितना हटाव होता है अर्थात् जितनी कमी और बेशी होती है वही भ्रंश कहा जाता है। अतः भ्रंश जान कर ही श्रेणी का ज्ञान सम्भव है क्योंकि ऊपर के उदाहरण में औसत तो एक ही है पर श्रेणी अलग अलग और काफी भिन्न।

भ्रंश (Deviation) दो प्रकार से निकाली जाती है। एक को Mean या Average Deviation कहा जाता है दूसरे को Standard Deviation।

(i) Mean Deviation निकालने का तरीका:— किसी श्रेणी का Mean Deviation निकालने के लिए सबसे पहले उस श्रेणी का Mean निकाला जाता है। इस Mean से प्रत्येक अंक को घटा देने से प्रत्येक अंक का deviation निकाल लिया जाता है। प्रत्येक deviation का योगफल निकाल कर उसे, श्रेणी में जितने अंक हैं, उस संख्या से भाग देने से M. D. प्राप्त होता है। इसका formula— $M.D.=\frac{S(x)}{N}$ यहां x का अर्थ हुआ अंकों का पृथक-पृथक deviation।

उदाहरण:— मान लें कि एक श्रेणी है— ४, ६, ७०, ८०, ९०, । इसका Mean हुआ $\frac{२५०}{५}=५०$ ।

नम्बर—Mean व्यक्तिगतभ्रंश

अब— ४ − ५० = − ४६
६ − ५० = − ४४
७० − ५० = + २०
८० − ५० = + ३०
९० − ५० = + ४०

यहां घटाव और जोड़ के चिन्ह का कोई अर्थ नहीं होता है। अत: व्यक्तिगत भ्रंशों का योगफलहुआ (४६+४४+२०+३०+४०)=१८०; यही S(x) है।

इसलिए M.D= $\frac{१८०}{५}$= ३६

(i) Standard Deviation:— इसमें भी पहले Mean निकाला जाता है। उससे प्रत्येक अंक का भ्रंश निकाल कर उन्हें squire कर दिया जाता है। उनका योगफल निकाल कर गुणांकों की संख्या से भाग दे कर उसका वर्गमूल (Squire root) निकालने से S.D. को प्राप्त होता है। S. D. को σ से भी संकेत करते हैं। इसका formula— S. D or $\sigma = \sqrt{\frac{Sx^2}{N}}$ यहां x का अर्थ है प्रत्येक गुणांक का भ्रंश।उदाहरण:— मान लें कि एक श्रेणी है, ४२, ४८, ५०, ५२, ५८ । इसकाMean हुआ ५० ।

	गुणांक	Mean	भ्रंश	भ्रंश का वर्ग
अब—	४२	− ५० =	− ८	− ६४
	४८	− ५० =	− २	− ४
	५०	− ५० =	०	− ०
	५२	− ५० =	+ २	− ४
	५८	− ५० =	+ ८	− ६४
				Sx^2= १३६

अत: S. D or $= \sqrt{\frac{Sx^2}{N}} = \sqrt{\frac{१३६}{५}} = \sqrt{२७·२} = ५·२$ लगभग। वैज्ञानिक अन्वेषणों में S. D. ही प्रचलित है।

(D) सम्बन्धन (Correlation)

संख्यात विधि का लक्ष्य औसत या भ्रंश निकालना ही नहीं अपितु उसी के आधार पर घटनाओं के बीच सम्बन्धन (Correlation) निकालने का है। जहाँ घटनाओं में क्रियात्मक सम्बन्ध हो तब उनके बीच सम्बन्धन निकाला जाता है। इन्हीं सम्बन्धनों के आधार पर निष्कर्ष रूप आगमनात्मक नियम स्थपित किए जाते हैं। घटनाओं के बीच सम्बन्धन तीन प्रकार का होता है। भावात्मक (Positive), अभावात्मक (Negative) और असम्बन्धन (No Correlation)। भावात्मक सम्बन्ध तब होता है जब दो घटनाओं का होना एक ही अनुपात से है। जैसे, एक विद्यार्थी अंग्रेजी में ५० और इतिहास में भी ५० लाता है और ऐसी बात प्रत्येक परीक्षा में होती है तब इसे भावात्मक सम्बन्धन कहा जायगा। पूर्ण भावात्मक सम्बन्ध तब होता है जब बिल्कुल एक ही अनुपात से दो घटनाएं हों। उसे + १·०० से संकेत किया जाता है। अभावात्मक सम्बन्धन तब होता है जब दो घटनाओं के बीच उल्टा अनुपात हो, जैसे, किसी परीक्षा में एक लड़के ने साहित्य में ६० पाया और हिसाब में O और यही हर परीक्षा में हों। पूर्ण अभावात्मक सम्बन्धन को—१·०० से संकेत किया जाता है। जब दो घटनाओं के बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हो तो उसे असम्बधन कहा जाता है, जैसे, घड़ी की रंग और उसकी चाल में। इसे O से संकेत किया जाता है।

जहां भावात्मक या अभावात्मक सम्बन्धन है वहां यह आवश्यक नहीं है कि वह पूर्ण ही हो अर्थात् + १·०० या — १·०० सम्बन्धन हो। घटनाओं के बीच + ·७५ या + ·५० या — ·७५ या — ·५०, इत्यादि सम्बन्धन भी सम्भव है। इसी प्रकार दो घटनाओं के बीच कितना सम्बधन हैं यह निकाला जाता है। इसे ही Coefficient of Correlation कहा जाता है।

जहां भावात्मक सम्बन्धन अधिक है वहां कार्य-कारण सम्बन्ध रहने की भी सम्भावना रहती हैं। सम्बन्धन को r से भी संकेत किया जाता है। Coeffi-

cient of Correlation निकालने का formula:—

सम्बन्धन या $r = \frac{S(xy)}{N \sim x \sim y}$

यहां x और y का अर्थ है दोनो श्रेणी के व्यक्तिगत गुणांक का भ्रंश और S(xy) का अर्थ है दोनों श्रेणियों के पहले गुणांक के भ्रंशों का गुणनफल, दूसरे गुणांकों के भ्रंशों का गुणनफल तीसरे, चौथे, गुणांकों के भ्रंशों का गुणनफल का योगफल। N का अर्थ है गुणांकों की संख्या और $\sim x$ का अर्थ x श्रेणी का Standard deviation और $\sim y$ का y श्रेणी का S. D.।

उदाहरण:—मान लें कि पांच लड़कों के साहित्य और इतिहास के नम्बर लिए गए—वे इस प्रकार हैं।

	x	y	Deviation	Deviation	xy
	इतिहास	साहित्य	x श्रेणी के गुणांकों का	y श्रेणी केगुणांकों का	
A—	१०	३०			१००
			१०	१०	
B—	१५	३५	५	५	२५
C—	२०	४०	०	०	
D—	२५	४५	५	५	२५
E—	३०	५०	१०	१०	१००
				S(xy)=	२५०

N = 5;

$\sim x = \frac{\sqrt{२५०}}{५} = \frac{\sqrt{५०}}{} = ५\sqrt{२};$

$\sim y = \frac{\sqrt{२५०}}{५} = \sqrt{५०} = ५\sqrt{२}$

$\therefore r = \frac{S(xy)}{N \sim x \sim y} = \frac{२५०}{५ \times ५\sqrt{२} \times ५\sqrt{२}}$

$= \frac{२५०}{२५०} = +\ १{\cdot}००$

अत: Coefficient of Correlation हुआ + १·००।

इसी प्रकार Correlation निकाल कर निष्कर्ष निकाला जाता है।

§५ *व्यक्तिगत विकार* (Personal Error or Equation)

आगमन का लक्ष्य है व्यापक नियमों की रचना करना। व्यापक नियम घटनाओं के निरीक्षण पर ही आश्रित रहते हैं। निरीक्षण में दोष होजाने पर उन पर आश्रित नियम भी दूषित हो जाता है। इसलिए निरीक्षण में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। यह जरूरत और भी बढ़ जाती है जहां संख्या के गणना की आवश्यकता होती है क्योंकि गणना करने में भूल की सम्भावना और भी अधिक है। इसलिए यदि भिन्न अन्वेषक किसी विषय पर प्रयोग, निरीक्षण वा उसकी गणना करते हैं तो उनकी रीति एक होती है जिसमें कि आपस में भेद न हो। वे एक ही रीति का प्रयोग करते हैं। इतना होने पर भी उनकी गणना में वा निरीक्षण में कुछ न कुछ सूक्ष्म (subtle) अन्तर पड़ ही जाता है। ग्रीनवीच निरीक्षणशाला (Greenwich Observatory) के निरीक्षकों के समय के हिसाब रखने में प्रायः $\frac{1}{100}$ से $\frac{1}{5}$ सेकेंड का अन्तर हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि मनुष्य के शरीर की बनावट, इन्द्रिय, रुचि, भावुकता, व्यक्तित्व इत्यादि भिन्न है। मनुष्य में दो प्रकार के गुण हैं एक, सामान्य, दूसरे भिन्न। सामान्य गुण वे हैं जिनके कारण सभी मनुष्यों को मनुष्य कहा जाता है अर्थात् विवेक-शक्ति तथा पशुत्व, जो सभी मनुष्य में समान रूप से मिलते हैं। पर कुछ ऐसे भी गुण हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने हैं, जैसे, उसका चरित्र, रुचि, उसके इन्द्रियों की बनावट, उसके शरीर की बनावट इत्यादि। ये गुण मनुष्य में अपने अपने हैं और इस दृष्टि से एक मनुष्य की समता किसी दूसरे से नहीं हो सकती है। इसमें भी कुछ ऐसे गुण हैं जो स्थायी हैं और कुछ क्षणिक। मनुष्य का चरित्र, स्थायी भाव, रुचि इत्यादि ज्यादा स्थायी है बनिस्बत उसके क्षणिक इच्छाओं तथा संवेगों से। जब हम कोई गणना वा निरीक्षण करते हैं तो आशा करते हैं कि सभी गणना वा निरीक्षण एक समान होगी क्योंकि सभी मनुष्य हैं अर्थात् उनमें समान गुण हैं। पर उनमें भेद होने के कारण उनकी गणना वा निरीक्षण में भी अन्तर हो जाता है। मनुष्य के व्यक्तित्व की छाप उसके सभी कर्मों (actions) पर पड़ती है। इसलिए एक ही रीति का प्रयोग करने पर भिन्न निरीक्षकों के हिसाब में थोड़ा अन्तर अवश्य होता है। यदि किसी विद्यार्थी के एक ही उत्तर को भिन्न परीक्षक परीक्षा करें तो एक ही

रीति रहने पर भी अंक देने में थोड़ा अन्तर अवश्य होगा। अपनी निजी व्यक्तित्व (personality) के कारण किसी गणना में जो विशेष प्रकार का सूक्ष्म अन्तर होता है उसे ही व्यक्तिगत विकार (Personal Equation) कहा जाता है। रीड (Read) ने कहा है कि प्रत्येक मनुष्य की निजी विशेषताएं होती हैं, जैसे, शरीर की गठन, चरित्र इत्यादि। इसीके कारण उसकी क्रियाओं में विशेषता होती है। इसीसे जो औसत से थोड़ा फर्क पड़ता है वही व्यक्तिगत विकार (Personal Equation) है। यह अन्तर संख्याओं की गणना में अधिक होता है। ज्योतिषशास्त्र (Astronomy) में इसके उदाहरण मिलते हैं। ताराओं, नक्षत्रों इत्यादि के निरीक्षण में वा उनकी चाल की गणना करने में सूक्ष्म अन्तर पड़ जाता है। पर ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि दैनिक जीवन में इनका कोई महत्व नहीं है। इसलिए इससे दैनिक जीवन में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। इनका महत्व केवल वैज्ञानिक क्षेत्र में है, जब व्यापक नियमों की रचना होती है। वहां भी औसत (Average) निकाल कर इस दोष से बचने का उपाय किया जाता है। औसत निकालने का अर्थ है कि किसी मनुष्य में औसत अन्तर कितना पड़ता है यह जानना। इसीसे व्यक्तिगत विकार दूर किया जाता है।

§६. *अध्याय*

1. What is the necessity of Statistical Method in any scientific inquiry ? Explain.
2. How Statistical Method is related to Probability ? Explain the meaning of Statistical Method.
3. What are the different steps in Statistical Method ? Explain briefly.
4. How is Statistical Method related to Induction ? Does it overcome the difficulty arising from Plurality of causes ?
5. Explain the different ways of determining the central tendency in a series ?
6. Analyse the conceptions of Average and of Mean. How do we calculate them ?
7. Explain and distinguish Mean, Mode and Median. Which of them is the most suitable ?
8. What is Deviation ? What are the ways of measuring it ? Explain.
9. Explain fully the meaning of Personal Equation.
10. Write short notes on :—(a) Correlation, (b) Sampling, (c) Frequency and (d) Class-interval.

ग्यारहवाँ अध्याय

सादृश्यानुमान (Analogy)

§१. सादृश्यानुमान का स्वरूप (Nature)
§२. सादृश्यानुमान और वैज्ञानिक आगमन
§३. सादृश्यानुमान और निगमन
§४. सादृश्यानुमान की निश्चयात्मकता (Strength)
§५. सादृश्यानुमान के दोष (Fallacies)
§६. सादृश्यानुमान की उपयोगिता (Use)
§७. अभ्यास

§१. *सादृश्यानुमान का स्वरूप* (Nature)

यदि दो वस्तुओं में कुछ सादृश्य या समानता (similarity) हो तो उनमें और गुणों की समानता होने की सम्भावना रहती है। दो विद्यार्थी हैं, राम और रहीम। दोनों गरीब हैं, दोनों मेहनती हैं, दोनों एक ही कालेज में पढ़ते हैं, दोनों अपने शिक्षक के प्रियपात्र हैं और राम ईमानदार है, तो अनुमान करते हैं कि रहीम भी ईमानदार होगा। राम और रहीम के कुछ गुणों में समानता है इसलिए अनुमान किया जाता है कि उनके और गुणों में भी समानता होगी, पर यह निष्कर्ष कि 'रहीम भी ईमानदार है' निश्चित नहीं है। इसकी केवल सम्भावना मात्र ही है। इसी प्रकार के अनुमान को Analogy कहते हैं।

दो पदार्थों के आंशिक सादृश्यता (imperfect similarity) के आधार पर कोई विशेष निष्कर्ष (particular conclusion) निकालने को, जिसकी केवल सम्भावना मात्र हो, सादृश्यानुमान कहते हैं। ❀ उदाहरण लीजिये,

---

* पाश्चात्य विचारकों ने Analogy शब्द को भिन्न अर्थों में व्यवहार किया है। ग्रीक शब्द Analogia, जिससे Analogy शब्द की उत्पत्ति हुई है, Aristotle द्वारा, अनुपात की समता के अर्थ में व्यवहार किया गया था। जैसे, ३: ६: :: ४: ८ अर्थात् ३ का अनुपात ६ से वैसा ही है जैसा ४ का ८ से।

(१) क के गुण हैं प, फ, ब, भ, म इत्यादि। ख के गुण हैं प, फ, ब, य, र, इत्यादि। दोनों में आंशिक समानता है पर क में एक और गुण पाते हैं 'ज'। इसलिए ख में भी 'ज' का अनुमान किया जा सकता है।

(२) पृथ्वी में जल है, प्रकाश है, वायु है अपने कील पर २३° के झुकाव पर घूमती है,..... ; मंगल में भी जल, प्रकाश तथा वायु देखा गया है, अपने कील पर २३° के झुकाव पर घूमतीभी है—दोनों में अनेक बातों में समानता है।

पृथ्वी में जीव (living beings) है इसलिए अनुमान किया जाता है कि मंगल में भी जीव होंगे।

ये दोनों उदाहरण सादृश्यानुमान के हैं। इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

(१) कुछ बातों में समानता के आधार पर एक विशेष (particular) निष्कर्ष निकालना। पृथ्वी और मंगल में कुछ बातों में समानता है। उसके आधार पर विशेष निष्कर्ष निकाला गया है कि मंगल में भी जीव है।

(२) पर इसमें कार्य-कारण सम्बन्ध का ज्ञान नहीं रहता। वायु, जल, प्रकाश या कील पर २३° के झुकाव पर घूमने से और जीव में क्या सम्बन्ध है इसका ज्ञान नहीं है। यदि यह प्रमाणित हो जाय कि जहां ये गुण होंगे वहां जीव रहेंगे तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मंगल में भी जीव होंगे। पर ऐसे सम्बन्ध का ज्ञान नहीं रहता।

यहां समता केवल संख्या में ही है पर भिन्न पदार्थों में भी यह सम्भव है, जैसे, स्वास्थ्य: शरीर :: पुण्य : आत्मा।

Whatley ने Analogy का अर्थ बतलाया है 'सम्बन्धों का सादृश्य', जैसे, किसी जहाज के कप्तान का संबन्ध उस जहाज से वैसा ही है जैसा किसी governor का अपने राज्य से। यदि इसी सम्बन्ध के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाय कि 'चूंकि जहाज को कप्तान ही रास्ता दिखलाता है इसलिये राज्य को भी governor ही को सम्भालना चाहिये' तो यह Analogy के द्वारा अनुमान हुआ। इसे कुछ तार्किकों ने Analogy of Relations कहा है।

वर्तमान काल में Analogy शब्द का व्यवहार दूसरे अर्थ में होता है। यदि दो बातों में मुख्य गुणों का सादृश्य हो तो उसके आधार पर एक सम्भव निष्कर्ष निकालना ही Analogy कहा गया है। Butler, Kant, Mill, इत्यादि ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है। Aristotle ने इसे Paradeigma या Analogy from Examples कहा है।

(३) इसलिये सादृश्यानुमान के निष्कर्षों के सत्य होने की केवल सम्भावना रहती है, निश्चयता नहीं। यह निश्चित नहीं है कि मंगल में भी जीव हैं।

(४) इसमें ज्ञात गुणों से अज्ञात गुण का अनुमान किया जाता है। समान गुण ज्ञात रहते हैं [जैसे, जल, वायु, इत्यादि] पर अज्ञात गुण [जीव] का अनुमान किया जाता है।

§२. *सादृश्यानुमान और वैज्ञानिक आगमन* (Analogy and Scientific Induction)

सादृश्यानुमान आगमन का ही भेद है। इसलिये दोनों में समता है सादृश्यानुमान द्वारा, आगमन के समान, विशेष वस्तुओं के निरीक्षण (observation) के अधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाता है। दूसरे, आगमन में भी निष्कर्ष का आधार सादृश्यता (similarity) ही है। यदि अ में ग है क में ग है तो अनुमान करते हैं कि अ, क और ख के समान सभी चीजों में ग होगा। पर इस अनुमान में इस बात का ज्ञान रहता है कि अ क और उसके समान चीजों में कोई ऐसा गुण है जिसके कारण 'ग' है। सादृश्यानुमान में यह ज्ञान नही होता।

दोनों विधियों में समता के साथ साथ निम्नलिखित फर्क भी है:—

(१) वैज्ञानिक आगमन द्वारा विशेष को देखकर कोई सामान्य निष्कर्ष (general conclusion) प्रतिपादित किया जाता है पर सादृश्यानुमान द्वारा विशेष (particular) के आधार पर विशेष (particular) फल निकाला जाता है। आगमन के निष्कर्ष सामान्य होते हैं, जैसे, 'सब मनुष्य मरणशील हैं' या मच्छरों के काटने से मलेरिया ज्वर होता है', इत्यादि। सादृश्यानुमान के निष्कर्ष विशेष होते हैं, जैसे, मंगल में जीव है, रहीम ईमानदार है, इत्यादि।

(२) वैज्ञानिक आगमन द्वारा प्रतिपादित (proved) निष्कर्ष (conclusion) में कार्य-कारण सम्बन्ध का ज्ञान रहता है। यह मालूम रहता कि क्यों मनुष्य मरणशील है, मनुष्य में कौन सा गुण है जिसके कारण उसमें मरणशीलता है। सादृश्यानुमान में ऐसे सम्बन्ध का ज्ञान नहीं रहता। पृथ्वी में कौन सा गुण है जिसके कारण जीव हैं यह मालूम नही है। यदि मालूम हो तो

मंगल में उस गुण को देखने से निश्चित रुप से हम जान जांय कि उसमें भी जीव है।

(३) इसलिये वैज्ञानिक आगमन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष निश्चित होते हैं पर सादृश्यानुमान द्वारा प्राप्त निष्कर्ष केवल सम्भव (probable)।

(४) सादृश्यानुमान से निष्कर्ष (conclusion) का केवल संकेत (suggestion) मिलता है; निष्कर्ष उस युक्ति द्वारा प्रमाणित (prove) नही होता। दो वस्तुओं में समानता के कारण यह संकेत होता है कि उनमें और समानता होगी। इससे यह प्रमाणित (prove) नहीं होता कि ऐसा होगा ही। संकेत मिलने के बाद उसे सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है। सिद्ध हो जाने पर फल निश्चित (certain) हो जाता है और तब उसे आगमन का रूप कह सकतेहैं। इसलिये सादृश्यानुमान आगमन की पहली सीढ़ी (step) भी कहा जा सकता है।

कल्पना(Hypothesis) भी कारण का केवल संकेत करता है इसलिये सादृश्यानुमान को कल्पना का रुप भी कह सकते हैं।

§३. *सादृश्यानुमान और निगमन* (Analogy and Deduction)

सादृश्यानुमान और निगमन में भी समता और भेद दोनों हैं। सादृश्यता (similarity), सादृश्यानुमान के तरह निगमन का भी आधार(basis) है। सब मनुष्य चतुर हैं, राम और मनुष्य में समानता है इसलिए राम भी चतुर है' यह निष्कर्ष निगमन-विधि द्वारा निकालते हैं। पर दोनों में फर्क भी है।

(१) निगमन-विधि में पूर्ण समता का ज्ञान रहता है। राम और मनुष्य के तत्व (essence) में समानता है। इस प्रकार की समता का ज्ञान सादृश्यानुमान में नहीं रहता।

(२) निगमन-विधि द्वारा सामान्य के आधार पर विशेष निष्कर्ष निकाला जाता है, सादृश्यानुमान में विशेष से विशेष।

(३) निगमन-विधि के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष निश्चयात्मक होते हैं। यदि आधार-वाक्य (premises) सत्य हों तो निष्कर्ष भी वैसा ही होता है। सादृश्यानुमान में निश्चयात्मकता नहीं होती।

(४) निगमन-विधि में अनुमान का केवल आकार (form) देखा जाता है, सादृश्यानुमान में अनुमान का विषय (matter) भी।

§४. *सादृश्यानुमान की निश्चयात्मकता* (Strength)

ऊपर कहा जा चुका है कि सादृश्यानुमान द्वारा प्राप्त निष्कर्ष निश्चयात्मक नहीं होते। उनके सत्य होने की केवल सम्भावना (probability) रहती है। पर किसी बात की सम्भावना कम हो सकती है या अधिक। सम्भावना की मात्रा (degrees) होती है। इसलिये कुछ नियम बताये गये हैं जिनसे सादृश्यानुमान की मात्रा की जांच हो सकती है। नियम नीचे बताए गए हैं—

(१) दो वस्तुओं के समान गुणों की जितनी अधिक संख्या और प्रधानता होगी उतनी ही अंश में उस आधार पर निकाले गये निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना अधिक रहती है। मान लीजिये की दो कवि हैं और दोनों पढ़े-लिखे हैं, दोनों सरल हैं, दोनों एक जलवायु (climate) में पले हैं, तो यदि एक के भावुकता से दूसरे को भी भावुक अनुमान करें तो इस निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना अधिक होगी।

(२) दो वस्तुओं के असमान गुणों की जितनी अधिक संख्या और प्रधानता होगी उतनी ही अंश में उस आधार पर निकाले गये निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना कम रहती है। यदि दो बालक हैं, एक अमीर है दूसरा गरीब, एक पढ़ा है दूसरा अनपढ़ पर दोनों एक गांव के हैं तो इस समानता से यदि एक के विनय-शीलता से दूसरे में विनयशीलता का अनुमान करें तो इस निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना कम होगी।

(३) यदि दो वस्तुओं के ज्ञात गुणों (known points)की संख्या तथा प्रधानता अज्ञात गुणों (unknown points) से अधिक हो तो निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना अधिक रहती है। यदि क और ख के विषय में करीब सब कुछ ज्ञात रहे और केवल थोड़े से गुण अज्ञात हों तो यदि उससे कोई निष्कर्ष निकाला जाय तो उसके सत्य होने की सम्भावना अधिक होगी।

सादृश्यानुमान में हमें मुख्य बातों में सादृश्यता देखनी चाहिये। समान गुणों की संख्या बहुत रह सकती है पर वे यदि ऊपरी हैं तो अनुमान शुद्ध नहीं होगा। यदि दो मनुष्य हों, दोनों के बाल काले हैं, दोनों एक जगह के हैं, दोनों की एक ही आकार तथा लम्बाई है, दोनों एक ही कपड़ा पहनते हैं तो यदि एक तेज है तो उससे यह अनुमान करना कि दूसरा भी तेज होगा, दोषपूर्ण होगा। दोनों की

समता मुख्य बातों में नहीं है; पर यदि दोनों कवि हों तो यदि एक भावुक है तो दूसरे के भावुक होने की सम्भावना है क्योंकि कवि अधिकतर भावुक होते हैं। इस प्रकार यदि सौ समान गुण हों पर सब गौण (unimportant) हैं तो उसके आधार पर अनुमान नहीं किया जा सकता है और यदि १०० गुणों में भेद हो पर एक ही मुख्य बात में सादृश्य हो तो अनुमान के सत्य होने की सम्भावना अधिक रहती है।

सादृश्यानुमान के निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना गणित द्वारा भी व्यक्त किया गया है। इसमें सम्भावना की मात्रा अर्थात् निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना कितनी है, भिन्न (fraction) से पता चलता है।

$$\text{सम्भावना} = \frac{\text{समानता}}{\text{भेद} + \text{अज्ञान गुण}}$$

समान गुण, भेद और अज्ञात गुणों को योगफल से अधिक हों तो अधिक अंश में निष्कर्ष के सत्य होने की सम्भावना होगी। पर इस नियम में दोष है। पहले तो इसके द्वारा मुख्य गुणों की जांच नहीं हो सकती और दूसरे, कुछ गुण जब अज्ञात होंगे तो उनकी संख्या कैसे जानी जा सकती है?

§५. *सादृश्यानुमान के दोष* (Fallacies)

जब मुख्य गुणों के समानता के आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाता है तो उसके सत्य होने की सम्भावना अधिक रहती है। ऐसे अनुमान को शुद्ध सादृश्यानुमान (good Analogy) कहते हैं। पर यदि गौण गुणों (superficial points) के समानता पर कोई निष्कर्ष निकाला जाता है तो उसके सत्य होने की कोई सम्भावना ही नहीं रहती। ऐसे सादृश्यानुमान में कोई तत्व नहीं रहता। इसे अशुद्ध सादृश्यानुमान (bad or false Analogy) कहते हैं। उदाहरणार्थ, बादल भी मनुष्य की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं इसलिए वो भी भावुक हैं। यह अशुद्ध सादृश्यानुमान का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त यदि सादृश्यानुमान के निष्कर्ष को निश्चित मान लिया जाय तब भी दोष हो जाता है क्योंकि इसमें निश्चयात्मकता नहीं आ सकती।

§६. *सादृश्यानुमान की उपयोगिता* (Use)

सादृश्यानुमान एक प्रकार का वास्तविक आगमन है। इसलिए विज्ञान के

क्षेत्र में इसका महत्व बहुत अधिक है। इसके द्वारा बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं। इसकी उपयोगिता निम्नलिखित हैं:—

(i) यह कारण को संकेत करता है। अतः इसके द्वारा कल्पना (Hypothesis) में सहायता मिलती है। कल्पना को यह प्रथम आरोहणशिला (stepping stone) कहा गया है।

(ii) इसका उपयोग व्यावहारिक क्षेत्र में भी होता है।

§७. *अभ्यास*

1. Is Analogy an inference ? Explain its nature.

2. How does Analogy differ from Induction and Deduction ?

3. "In Analogy we must weigh the points of resemblance, not simply count them." Discuss. In what lies the strength of an Analogical Argument ?

4. Point out the distinction between Analogy and Scientific Induction.

5. How would you judge the strength of an Analogical argument ? Explain.

6. 'An argument from Analogy can only be more or less probable'. Explain. Analogy like a Hypothesis is only suggestive-is it true?

बारहवाँ अध्याय

प्राकृतिक नियम (Laws of Nature)

§१. विषय-प्रवेश
§२. 'नियम' शब्द के भिन्न अर्थ
§३. नियमों का आपसी सम्बन्ध
§४. प्राकृतिक नियमों का वर्गीकरण (Classification)
(क) स्वयंसिद्ध सिद्धान्त (Axioms)
(ख) मूल नियम (Primary Laws)
(ग) गौण नियम (Secondary Laws)
§५. नियमित संसार
§६. अभ्यास

§१. *विषय-प्रवेश*

व्यापक वाक्यों (universal proposition) की रचना ही आगमन का उद्देश्य है। वास्तविक व्यापक वाक्य, नियम का रूप धारण कर लेते हैं। अतः आगमन का लक्ष्य नियमों की स्थापना ही मानना चाहिए। नियम अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे, वैज्ञानिक नियम या कोई व्यक्तिगत नियम, तर्कशास्त्र के नियम, इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुछ नियम अधिक व्यापक होते हैं कुछ कम। इन सब की विवेचना तभी हो सकती है जब हम 'नियम' का अर्थ जान लें। अतः 'नियम' के अध्ययन की आवश्यकता आगमन शास्त्र में होती है।

§२. *'नियम' शब्द के भिन्न अर्थ*

जब हम रात में सोकर ८ बजे नित्य सवेरे उठते हैं तो पूछने पर कहते हैं कि हमारा नियम है देर से जागना। गर्मी के दिनों में ७ बजे सूर्यास्त होता है और जाड़े में ५ बजे, तो कहते हैं कि गर्मी में दिन बड़ा होता है और जाड़े में छोटा, यही नियम है। रात में बिना बत्ती के साइकिल न चलाने का कारण पूछने पर कहा जाता है कि ऐसा ही नियम है अर्थात् जिस विधि या दस्तूर

के अनुसार किसी पदार्थ का व्यापार हो उसे उस पदार्थ के व्यापार का नियम (Law) कहते हैं।

अब, पदार्थों के व्यापार का दस्तूर या तो मनुष्य स्वयं बनाए या वे स्वत: वैसे ही हों। इस तरह नियम शब्द का तीन अर्थों में प्रयोग होता है, मानव-निर्मित नियम, प्राकृतिक नियम और मानदंड (Standards) के अर्थ में।

(१) नियम शब्द का प्रथम प्रयोग 'राज्य-नियम' (Law of the State) के अर्थ में ही हुआ है। राज्य-नियम का अर्थ है किसी राजा का हुक्म या राज्य-सत्ता द्वारा निर्माण किए गए फर्मान जिसके अनुसार मनुष्यों का एक सा व्यापार या आचरण होता है। यदि कोई इन नियमों के अनुसार नहीं चलता था उसे दण्ड दी जाती थी। प्रजा का यह कर्त्तव्य था कि वे उन नियमों के अनुसार चलें। इस अर्थ में नियम मानव-निर्मित हुआ।

(२) नियम शब्द का प्रयोग 'प्राकृतिक नियम' के अर्थ में भी होता है। प्राकृतिक घटनाओं के देखने से पता चलता है कि उनके व्यापार में समरूपता है। हर गर्मी के बाद बरसात और उसके बाद जाड़ा आता है, हर फल टपक कर जमीन पर गिरते हैं, इत्यादि। इसी समरूपता को अर्थात् जिस विधि के अनुसार उनकी क्रिया में साम्य होती है प्राकृतिक नियम कहा जाता है। यह विधि किसी शक्तिशाली सत्ता के द्वारा निर्मित नहीं होता है। पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि सर्वशक्तिशाली ईश्वर ने इन विधियों की सृष्टि की है। पर वैज्ञानिकों का कथन है कि ईश्वर की कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं है। ये नियम प्राकृतिक हैं अर्थात् पदार्थों के स्वभाव पर ही निर्भर हैं। विज्ञान का लक्ष्य इन्हीं नियमों का अन्वेषण है।

(३) 'नियम' शब्द का तीसरा अर्थ 'मानदंड' (Standard) है। मानदंड उस आदर्श को कहते हैं जिसके अनुसार आचरण या विचार होने से उन्हें शुद्ध माना जाता है। तर्कशास्त्र के नियम, नैतिक नियम, धर्म के नियम इस कोटि में आते हैं।

§३ *उपरोक्त नियमों का आपसी सम्बन्ध*

(क) प्राकृतिक नियम और राज्य नियम (Natural Laws & Laws of the State)

(i) प्राकृतिक नियम अपरिवर्तनशील होते हैं और राज्य-नियम परिवर्तनशील। राज्य-नियम भिन्न राज्यों में भिन्न होते हैं। अमेरिका का राज्य-नियम भारत के राज्य-

नियम से भिन्न है। प्राकृतिक नियमों में इस प्रकार का अन्तर नहीं होता है। उनके विषय में हमारे ज्ञान में परिवर्तन होता है पर उनमें स्वयं परिवर्तन नहीं होता। पहले हमें यह ज्ञान था कि पृथ्वी की चारो ओर सूर्य घूमता है पर अब उसका उल्टा ही सत्य माना जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उस नियम में ही परिवर्तन हो गया अपितु हमारे ज्ञान में परिवर्तन हुआ।

(ii) प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं होता है पर राज्य-नियमों का उल्लंघन होता है। चोरी, डकैती, खून करना, इत्यादि राज्य-नियम के विरुद्ध है पर अखबारों में नित्य दिन उन अपराधों के उदाहरणों की खबर मिलती है। राज्य-नियमों के उल्लंघन के लिए दण्ड दिया जाता है। पर प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन सम्भव नहीं है।

(ख) प्राकृतिक नियम और मानदंड (Standards)

(i) प्राकृतिक नियम यथार्थ (positive) होते हैं किन्तु मानदंड (standards) आदर्श-निर्देशक (Normative)। प्राकृतिक नियमों का सम्बन्ध घटनाओं की यथार्थ अवस्था से है। मानदंड एक आदर्श (Norm) है जिसके अनुकूल चलने से किसी फल की प्राप्ति होती है। एक का सम्बन्ध घटनाएँ जैसी हैं, उससे है और दूसरे का, जैसी घटनाओं को होना चाहिए, उससे। आचारशास्त्र के नियम या तर्कशास्त्र के नियम मानदंड हैं।

(ii) प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं हो सकता पर मानदंड का उल्लंघन सम्भव है। आचारशास्त्र के नियमों का उल्लंघन मनुष्य करता ही है और उसीसे उसे पापी, दुष्ट इत्यादि हम कहते हैं। उसी प्रकार तर्कशास्त्र के नियमों का भी हम उल्लंघन करते ही हैं और उसीसे तर्क में दोष होता है।

इसी भेद और सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए Mackenzie ने कहा है कि चार प्रकार के नियम सम्भव हैं; (i) वे जो परिवर्तनशील हैं और जिनका उल्लंघन भी हो सकता है, (ii) वे जो अपरिवर्तनशील हैं पर उनका उल्लंघन हो सकता है, (iii) वे जो परिवर्तनशील हैं पर जिनका उल्लंघन नहीं हो सकता और (iv) वे जो अपरिवर्तनशील हैं और जिनका उल्लंघन भी नहीं हो सकता है।

प्रथम प्रकार राज्य-नियमों का है और चौथा प्राकृतिक नियमों का। दूसरा प्रकार मानदंड का है अर्थात् आचारशास्त्र तथा तर्कशास्त्र के नियमों का और तीसरे प्रकार के नियम ऋतु-नियम, इत्यादि हैं।

विज्ञान का सम्बन्ध प्राकृतिक नियम से है। अतः अब हम व्यापकता के आधार पर उन्हीं का वर्गीकरण करेंगे।

§४. *प्राकृतिक नियमों का वर्गीकरण* (**Classification of Natural Laws**)

प्रत्येक नियम का अपना दायरा होता है। कुछ नियमों का दायरा छोटा होता है और कुछ का बड़ा होता है अर्थात् कुछ कम व्यापक होते हैं और कुछ अधिक। अर्थशास्त्र का एक नियम है कि जब किसी वस्तु की मांग बढ़ती है और उसकी आमदनी घटती है तब उसका दाम बढ़ जाता है। एक दूसरा नियम है कि दो विरोधात्मक गुण एक ही समय में किसी पदार्थ में दोनों नहीं रह सकते। इन दोनों नियमों में पिछला नियम अधिक व्यापक है क्योंकि वह किसी भी पदार्थ के लिए सत्य है परन्तु पहला नियम किन्हीं विशेष क्षेत्रों तक ही सीमित है।

इस प्रकार व्यापकता (generality) के आधार पर नियमों का वर्गीकरण करने पर सबसे पहले "स्वयम्सिद्ध सिद्धान्त" (Axiom) का स्थान आता है बाद में मूल नियम (PrimaryLaws) और तब गौण नियम (Secondary Laws) आते हैं।

(क) स्वयंसिद्ध सिद्धान्त (Axiom)

बहुत से ऐसे नियम हैं जो बिल्कुल सहज होते हैं और जिनके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। वे सर्वव्यापी होते हैं अर्थात् सभी पदार्थों के लिए सत्य होते हैं, न कि किसी विशिष्ट क्षेत्र के लिए ही। उदाहरणार्थ, दो विरोधात्मक (contradictory) गुण, जैसे "लाल और नहीं-लाल" एक ही स्थान पर किसी एक पदार्थ में नहीं पाये जा सकते। इसे सिद्ध करने के लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यह किसी भी पदार्थ के लिए सत्य है। ऐसे ही नियमों को "स्वयम्सिद्ध सिद्धान्त" कहा जाता है। ऐसे नियम यथार्थ व्यापक वाक्यों (universal real propositions) के रूप में व्यक्त रहते हैं।

इनके निम्नलिखित लक्षण हैं :—

(i) ऐसे नियम यथार्थ (Real) होते हैं, शाब्दिक (Verbal) नहीं। परिभाषा की तरह इनमें केवल किसी बोध (concept) का विस्तार नहीं किया जाता अपितु कोई नई बात बतायी जाती है। जैसे, " प्रत्येक घटना का कोई कारण

होता है" इस वाक्य को "शाब्दिक" नहीं कह सकते क्योंकि "घटना" के बोध से "कारण" का बोध नहीं होता। "सभी मनुष्य विवेकी होते हैं", यह वाक्य "शाब्दिक" है इसलिए कि "मनुष्य" के बोध से ही उनमें "विवेक" का बोध हो जाता है।

(ii) ये स्वत: सिद्ध हैं। इनके सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। ये न किसी सामान्य नियम से प्राप्त होते हैं, न एक दूसरे से। इन्हें भिन्न विज्ञान सत्य मान लेते हैं और इन्हीं से निगमन (deduction) निकालते हैं। तर्कशास्त्र में ऐसे पांच स्वयंसिद्ध सिद्धान्त हैं—तदात्म्य नियम (Law of Identity), व्याघात-नियम(Law of Contradiction), मध्यदशानिषेधक नियम (Law of Excluded Middle), प्रकृति-समरूपता नियम (Law of Uniformity of Nature) और कार्यकारण नियम (Law of Causation)

(iii) ये सर्वव्यापक होते हैं। बहुत से नियम विशेष क्षेत्रों में ही सीमित होते हैं, पर स्वयंसिद्ध नियम सभी पदार्थों पर लागू हैं। वे नियम जो गुण सम्बन्धी (qualitative)हैं, वे जहां तक गुण का सम्बन्ध है, सर्वत्र सत्य होते हैं और वे जो परिमाण सम्बन्धी (quantitative) हैं, वे जहां तक परिमाणों का सम्बन्ध है, उसमें बिना अपवाद के लागू होते हैं।

(ख) मूल नियम (Primary Laws)

स्वयंसिद्ध साधारण नियम तो सर्वव्यापी होते हैं इसलिए सब प्रकार के पदार्थों के लिए वे सत्य हैं पर मूल नियम केवल अलग-अलग विभागों (departments) के लिए ही सत्य होते हैं। संसार में भिन्न प्रकार के पदार्थ हैं और प्रत्येक का एक विभाग होता है, जैसे, मनुष्य-विभाग, पशु-विभाग, पौधों का विभाग, इत्यादि। विशेष विभागों में ही मूल नियम होते हैं और उनके व्यापकता का क्षेत्र इसी विभाग तक सीमित रहता है। अपने विभाग में वे व्यापक होते हैं। निश्चित अनुपात नियम (Law of Definite Proportion) रसायनशास्त्र (Chemistry)का मूल नियम है; वंश-परम्परा (Law of Heredity) जीवविद्या का नियम है। एक विभाग का मूल नियम दूसरे विभागों में लागू नहीं होता है क्योंकि विषय में परिवर्तन हो जाता है। किसी विशेष क्षेत्र में

जानता। विज्ञानों में अधिकतर ऐसे ही नियम हैं। इसी तरह रेखागणित के साध्य या अर्थशास्त्र के नियम व्युत्पन्न गौण नियम के ही उदाहरण हैं।

(ii) अनुभव-जन्य गौण नियम:—अनुभव के आधार पर जिन नियमों को स्थापित किया जाता है उन्हें अनुभव-जन्य गौण नियम कहते हैं। इनका मूल नियमों से विरोध नहीं रहता है वरन् ये तो उनसे ही उत्पादित किए जा सकते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा ऐसे नियमों की स्थापना होती है। अनुभव-जन्य नियम विशेष परिस्थितियों पर निर्भर रहते हैं। किसी पदार्थ का अनुभव किसी विशेष परिस्थिति में ही होता है। यदि परिस्थितियां बदल जाएँ तो उस पदार्थ का नियम भी बदल जाता है। अतः नियमों की नित्यता भंग हो जाती है। दूसरी बात यह है कि अधिक समय बीत जाने पर वे परिस्थितियां रहती हैं या नहीं, यह भी निश्चित रूप से कहना कठिन है। उदाहरणतः, "अधिक ठंढ से पानी जम जाता है" यह किसी हद तक ही सत्य है। उस हद को पार करने पर पानी पर ठंढक का फल प्रतिकूल ही होता है।

अनुभव-जन्य गौण नियम दो प्रकार के होते हैं—एक तो शुद्ध सामान्यीकरण (Invariable Generalisation) और दूसरा निकटतम सामान्यीकरण(Approximate Generalisation)।

(i) शुद्ध सामान्यीकरण:— अनुभव के आधार पर यदि सामान्यीकरण से कोई नियम स्थापित किया जाए तो उसे शुद्ध सामान्यीकरण कहते हैं। जैसे, सब कौए काले हैं। कौए क्यों काले हैं यह नहीं कहा जा सकता पर अभी तक ऐसा ही अनुभव हुआ है। इसका कोई अपवाद नहीं मिला है। इसलिए यह सामान्यीकरण शुद्ध (invariable) हुआ।

(ii) निकटतम सामान्यीकरण:—यदि कोई गुण किसी वर्ग के अधिकांश व्यक्तियों में मिले तो हम कहते हैं कि अधिकतर व्यक्तियों में अमुक गुण है। इसे ही निकटतम सामान्यीकरण कहते हैं। जैसे, बहुत से पुच्छल तारा पृथ्वी के चारो ओर पूरब से पश्चिम की ओर घूमते हैं। यही इसका उदाहरण हुआ।

ऐसे सामान्यीकरणों को वैज्ञानिक बनाने के लिए अपवादों तथा उनके कारण को जान लेना चाहिए; यदि अपवाद का कारण मालूम हो जाय तो वह नियम वैज्ञानिक तथा शुद्ध हो जाता है। जहां गणना सम्भव है वहां संख्या को जान लेने से भी ज्ञान की वृद्धि होती है। सामाजिक तथा राजकीय विभागों में प्रत्येक

व्यक्ति के लिए किसी गुण का जानना सम्भव नहीं रहता। इसलिए वहां ऐसे ही सामान्यीकरणों के आधार पर नियम बनते हैं। अधिकतर व्यक्ति जिस मत का पालन करते हैं या अधिकतर लोगों में जो गुण पाया जाता है उसी के आधार पर सामाजिक या राजकीय नियम बनते हैं। प्रत्येक की गणना सम्भव नहीं है। इस अवस्था में संख्यात-विधि (Statistical Method) का प्रयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त Read ने दो प्रकार का नियम बतलाया है—(i) आनुपूर्वी घटनाओं की समरुपता ((Law of Succession) और (ii) सहभावी घटनाओं की समरूपता (Law of Co-existence)। इनकी व्याख्या प्रकृति-समरूपता के सम्बन्ध में हो चुकी है।

§५. *नियमित संसार* (The World as a system of Laws)

संसार के सभी पदार्थों की गणना तो सम्भव नहीं है, पर वे सब एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। उनका प्रकार होता है, जैसे कि मनुष्य, जानवर, पौधे आदि। इन्हीं प्रकारों के आधार पर भिन्न-भिन्न विभाग बने हैं और प्रत्येक विभाग को लेकर Biology, Chemistry, Zoology आदि विभिन्न विज्ञान बना है। हर विभाग का भिन्न-भिन्न नियम है और इस तरह संसार का प्रत्येक पदाथ नियमों से बद्ध है। एक विभाग का नियम दूसरे विभाग के नियमों से सम्बन्धित रहता है, क्योंकि संसार के सभी पदार्थ सम्बन्धित हैं। इसी अर्थ में संसार को नियन्त्रित कहा जाता है।

नियमों की सूची—

१—स्वयंसिद्ध-सिद्धान्त—(संसार के हर पदार्थ में कोई न कोई गुण अवश्य
२—मूल नियम—(विभिन्न वर्गों में होता है इसलिए यह प्रत्येक पदार्थ
सत्य होते हैं)। के लिए सत्य होता है)।
३—गौण नियम—(विशेष परिस्थिति में
वर्गों के व्यक्तिगत पदार्थों के लिए)।

व्युत्पन्न (मूल नियमों से निकाले जाते है)	अनुभव-जन्य (अनुभव के आधार पर स्थापित किए जाते हैं) मूल नियमों से अभी तक व्युत्पन्न नहीं किए गए हैं।)
शुद्ध सामान्यीकरण (जिनका अपवाद अभी तक अनुभव नहीं किया गया हो)।	निकटतम सामान्यीकरण (अधिकांश के विषय में ही सत्य होते हैं)।

§६. *अभ्यास*

1. What is the meaning of Law in Logic ? Is a Law of Nature different from a Law of State? Have the Laws of Nature been classified ?

2. Explain--(i) Axioms (ii) Primary Laws (iii) Secondary Laws.

3. What is meant by an Expirical Law? Explain the distinction between Derivative and Empirical Laws.

4. 'Secondary Laws are true only in Adjacent cases.' Is it true? Explain the distinction between Invariable and Approximate Generalisation.

5. Estimate the value of Approximate Generalisations. Is this world a system of Laws?

तेरहवाँ अध्याय

व्याख्या (Explanation)

§१. व्याख्या का अर्थ

§२. वैज्ञानिक तथा प्रचलित व्याख्या (Scientific and Popular Explanation)

§३. वैज्ञानिक व्याख्या का स्वरूप (Nature)

§४. व्याख्या का प्रकार (Forms)

§५. व्याख्या की सीमा (Limits)

§६. व्याख्या के दोष (Fallacies)

§७. अभ्यास

§१. *व्याख्या का अर्थ*

व्याख्या करने का अर्थ है किसी विषय को स्पष्ट करना अर्थात् समझाना। किसी विषय को समझने में जब कठिनाई होती है तो व्याख्या की आवश्यकता होती है। व्याख्या द्वारा विषय स्पष्ट हो जाने पर मानसिक सन्तोष होता है। यदि किसी विद्यार्थी को यह जानने की उत्सुकता होती है कि फल पक कर जमीन पर क्यों गिरता है तो उसे समझाया जाता है कि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के कारणही ऐसा होता है। उसकी उत्सुकता शान्त हो जाती है। पर उसी विषय को सभी इस प्रकार समझाने पर नहीं समझ सकते। बहुत से लोगों को, जो पढे लिखे नहीं हैं, 'आकर्षण-शक्ति' का ही अर्थ समझ में न आयगा। किसी व्याख्या द्वारा आसानी से समझ जाना या न समझना अपनी बुद्धि और विद्या पर निर्भर है। इसलिए कोई भी व्याख्या सापेक्षिक (relative) है। किसी व्याख्या से विषय स्पष्ट होता है या नहीं, समझने की कठिनाई दूर होती है या नहीं, यह समझने वाले पर निर्भर करता है। उन लोगों को जिनकी मानसिक विकास अभी पूरी नहीं हुई है, किसी बात की व्याख्या सरल रूप से कर देने पर ही संतोष हो जाता है पर वैज्ञानिकों के लिए, जो तत्व के अनुसन्धान में

लगे रहते हैं,किसी विषय की व्याख्या तभी पूर्ण होती है जब उन्हें उसका कारण या नियम पता चल जाय। अत: उन्हें इतनी आसानी से मानसिक संतोष नहीं होता। अत: वे व्याख्याएं जो साधारण मनुष्य के लिए होती हैं वैज्ञानिक के लिए वास्तविक व्याख्या नहीं हैं। साधारण व्याख्या को प्रचलित व्याख्या(Popular Explanation) कहा जाता है और दूसरे को वैज्ञानिक (Scientific)।

§२. *वैज्ञानिक तथा प्रचलित व्याख्या* (Scientific and Popular Explanation)

मैं कह चुका हूँ कि किसी विषय को समझाना, समझने वाले पर भी निर्भर है। बरसात में पानी बादलों के कारण होता है कह देना किसी अनपढ़ के लिए काफी होगा पर किसी वैज्ञानिक को उससे सन्तोष न होगा। इसलिए दो प्रकार की व्याख्या होती है। एक तो वैज्ञानिक और दूसरी प्रचलित जो नित्य के जीवन में हम व्यवहार करते हैं। दोनों में निम्नलिखित अन्तर है—

(क) प्रचलित व्याख्या से ज्ञानियों को सन्तोष नहीं होता। निर्बोध बुद्धि ही उससे सन्तुष्ट हो सकती है। ज्ञानी घटनाओं के तत्व को जानना चाहते हैं अत: उन्हें जब तक वास्तविक कारण का पता नहीं मिलता वे सन्तुष्ट नहीं होते हैं। साधारण मनुष्य कामचलाऊ ज्ञान हो जाने पर ही संतोष कर लेता है; अत: प्रचलित व्याख्या ही उसके लिए प्रयाप्त है।

(ख) प्रचलित व्याख्या ऊपरी समानता तथा गौण लक्षणों पर आश्रित होती है और वैज्ञानिक व्याख्या गहरे और वास्तविक लक्षणों पर। उदाहरणार्थ, लोग कहा करते हैं कि भोली हाथी की सूंढ़ से पानी बरसता है। यह व्याख्या ऊपरी समानता पर आश्रित है। जिस प्रकारहाथी की सूढ़ से जलकण गिरते हैं उसीप्रकार पानी बरसने की भी कल्पना की गई है। यह केवल अन्धविश्वास है। वर्षा होनें की वैज्ञानिक व्याख्या यह है कि गर्मी से जल भांप बनकर ऊपर उड़ जाता है और वहां शीत होने से जम कर जलविन्द बन जाताहै ठीक वैसे ही जैसे हम चायदानी के ढक्कन पर बूंदे पाते हैं जब पानी खौल कर भाफ हो जाता है।

(ग) प्रचलित व्याख्या अप्राकृतिक (super-natural) साधनों द्वारा की जाती है। देहातों में जब किसी रोगी के रोग का पता नहीं चलता तो उसे भूत प्रेत के कोप का फल बतलाया जाता है। वैज्ञानिक व्याख्या प्राकृतिक साधनों

द्वारा की जाती है। इसमें रोगी की हर प्रकार से जांच कर रोग का कारण बतलाया जाता है।

(घ) बहुधा प्रचलित व्याख्या घटना-विशेषों (particular facts)की होती है, जैसे, हम क्यों पुस्तक लिखना चाहते हैं, आपने क्यों कांग्रेस को छोड़ा, इत्यादि। वैज्ञानिक व्याख्या सामान्य घटनाओं तथा नियमों की होती है, जैसे, क्यों कोई वस्तु पृथ्वी की ओर गिरता है, कैसे रात और दिन होता है, इत्यादि। यदि विज्ञान में घटना-विशेषों की व्याख्या की भी जाती है तो उसका कारण बता कर। कारण बतलाने में प्रत्येक condition का उल्लेख किया जाता है पर प्रचलित व्याख्या में केवल एक ही condition बतलाया जाता है।

(च) प्रचलित व्याख्या अधिकतर कल्पित होते हैं। वे संवेग (emotion) तथा भाव (feeling) पर आश्रित हैं। उनका सम्बन्ध कल्पना से है, तक और बुद्धि से नहीं। प्रायः लोग ईश्वर या अन्य देवताओं में इसलिए विश्वास करते हैं कि इससे उन्हें सुख मिलता है। पर इस कारण से ही किसी भी वस्तु में विश्वास नहीं होनी चाहिए। हमें तर्क और विचार को आधार बनाना चाहिए। वैज्ञानिक व्याख्या का आधार तर्क और बुद्धि है।

(छ) प्रचलित व्याख्या किसी विशेष पुरुष के लिए की जाती है। जब हमें कोई बात समझ में नहीं आती तो हमको उसे विशेष ढंग से समझाया जाता है। वैज्ञानिक व्याख्या सामान्य रूप से मानव जाति के लिए की जाती है।

§३. वैज्ञानिक व्याख्या का स्वरूप (Nature)

प्रत्येक व्याख्या का कोई विषय होता है। व्याख्या का अर्थ है स्पष्ट करना और स्पष्ट करने के लिए कोई विषय होना आवश्यक है। वैज्ञानिक व्याख्या का विषय दो ही हो सकता है, कोई घटना-विशेष या कोई नियम। घटना-विशेषों की व्याख्या उनके कारणों वा नियमों को बताकर की जाती है। नियमों की व्याख्या उन्हें व्यापक नियमों के अन्तर्गत लाकर की जाती है। अतः किसी भी अनभिज्ञ विषय को उसका कारण (discovery) बता कर या उसकी समता भिज्ञ विषय से करके (assimilation) या उसे किसी नियम का फल बता कर (deducing) स्पष्ट करने को वैज्ञानिक व्याख्या (Scientific or Logical Explanation) कहते हैं।

यदि किसी वस्तु को नित्य दिन देखते हों या उससे पूरी जानकारी हो तो उसके लिए व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती है। जब विषय नवीन होता है तो उसके समझने में कठिनाई होती है। उस नवीन वस्तु की समता किसी परिचित वस्तु से कर देने पर या उसे किसी जाने हुये चीज का किस्म बता देने पर हम समझ जाते हैं। किसी जंगल में एक नये किस्म का जानवर देखने पर हम साथियों से पूछ देते हैं कि यह क्या है? यह कह देने पर कि वह जानवर बन्दर का ही एक किस्म है हम उसे समझ तथा पहचान जाते हैं। यहां व्याख्या समता बता कर हुई है। वर्गीकरण (Classification) भी इसी प्रकार समता के आधार पर की जाती है इसलिए दोनों सम्बन्धित हैं।

किसी विषय का कारण मालूम हो जाने पर वह विषय स्पष्ट हो जाता है। जेम्स वैट को, चायदानी के ढ़क्कन में गति क्यों होती है, पहले समझ में नहीं आई। कुछ दिनों के बाद उसे स्पष्ट हुआ कि ताप के कारण ऐसा होता है। इस प्रकार स्टीम इंजन का आविष्कार हुआ। इसलिए कारण का अनुसंधान करना भी व्याख्या की वैज्ञानिक विधि है। आगमन (Induction) तथा कल्पना (Hypothesis) द्वारा भी इसी प्रकार कारण का पता लगाया जाता है इस लिए उन्हें व्याख्या का रूप कह सकते हैं।

कभी कभी किसी नियम को समझने में कठिनाई हो जाती है। ऐसी अवस्था में उस नियम के आधार-नियम अर्थात् वह नियम जिससे वह निष्कर्ष रूप निकाला गया है, बता कर समझा देते हैं। एक नियम है कि 'शीत प्रदेश में जानवरों का रंग उजला होता है'। यह नियम किसी दूसरे नियम का निष्कर्ष है। वह नियम है कि रंग रक्षा का साधन है। शीत प्रदेश वर्फ से ढ़का रहता है। वर्फ उजला होता है इसलिए वहां जानवरों का रंग उजला होता है जिससे वो शीघ्र दीख न पड़े और सुरक्षित रहे। वैज्ञानिक व्याख्या का लक्ष्य है प्रकृति की जटिलता को समझाना। नई-नई घटनाएं होती रहती हैं। उनके कारण का ज्ञान प्राप्त करने से ही उनकी व्याख्या होती है। इस प्रकार घटना-विशेषों को नियमों के अन्तर्गत लाकर उनकी व्याख्या होती है। फिर सरल नियमों को व्यापक नियमों के अन्तर्गत लाने से वे स्पष्ट होती हैं। इस तरह प्रत्येक घटना को नियमों से और एक नियम को दूसरे नियमों से सम्बन्धित कर देना ही वैज्ञानिक

व्याख्या का चरम लक्ष्य है।संक्षेप में, समीकरण (assimilation), आविष्कार (discovery) और निगमन (deduction) द्वारा वैज्ञानिक व्याख्या होती है।

§४. *व्याख्या का प्रकार* (forms)

इस संसार में भिन्न प्रकार के मनुष्य हैं और विषय भी अनेकानेक हैं। कभी हमें जटिल घटनाओं की व्याख्या करनी होती है तो कभी दो घटनाओं के सम्बन्ध को और कभी किसी नियम को ही। हर विषय की व्याख्या एक रूप से नहीं हो सकती। जटिल घटनाओं को विश्लेषण द्वारा स्पष्ट किया जाता है, दो घटनाओं के सम्बन्ध को युक्तिशृंखला (concatenation) के द्वारा और नियमों को उच्च नियमों के अन्तर्गत (subsumption) करके। अतः व्याख्या की तीन वैज्ञानिक रीतियां है जिन्हें उसका स्वरूप (form) कहा गया है।

(क) विश्लेषण (Analysis)-यदि किसी जटिल (complex) विषय की व्याख्या करनी होती है तो उस विषय का विश्लेषण करके उसको कई वर्गों में विभाजित कर देते हैं। अलग-अलग वर्गों को सरलतम रीतियों से समझा देने से विषय स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण लीजिये-विषय है बादल की ध्वनि प्रकाश के बाद होती है (report of a cloud follows the flash)। इसमें तीन उपकरण हैं—(१) बादलों के संघर्ष से बिजली पैदा होना, (२) देखनेवाले की दूरी (३) प्रकाश की ध्वनि से तेज गति। ध्वनि और प्रकाश एक बार होता है पर प्रकाश की गति तीव्र होने के कारण मनुष्य को, जो मीलों उस स्थान से दूर रहता है, ध्वनि से पहले प्रकाश ही दिखता है।

(ख) युक्तिशृंखला (Concatenation)-किन्हीं दो घटनाओं को बीच की शृंखला द्वारा सम्बन्धित कर देने को युक्तिशृंखला कहते हैं। कभी कभी दो घटनायें सम्बन्धित रहती हैं पर उनका सम्बन्ध कैसे है यह स्पष्ट नहीं रहता क्योंकि वे शृंखलाबद्ध नहीं रहते। इस हालत में बीच की शृंखला (chain) को बता देने से उनका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार विषय की व्याख्या भी हो जाती है। उदाहरण लीजिये—कहावत है 'न रहेगी बांस न बजेगी बांसरी'। यदि निर्बोध बालक को यह समझ में न आये तो समझाया जाता है कि बांस से बांसरी बनती है, बांसरी होने ही से बांसरी बजती है इसलिये यदि

बांस न रहे तो बांसरी नहीं बजेगी। इसी को युक्तिशृंखला (Concatenation) कहते हैं।

(ग) वृहत्तर नियमाधीनता (Subsumption)—कभी कभी नियम स्पष्ट न रहने पर उनके व्याख्या की आवश्यकता हो जाती है। नियमों को उनके आधार-नियमों द्वारा समझाया जाता है। वेंग का रंग मटमैला उसके रक्षा के हेतु है। यदि पूछा जाय क्यों तो उत्तर होगा कि प्रकृति ने जीवों के रक्षा के अनुकूल रंग प्रदान किया है। यह विशेष नियम उस सामान्य नियम का फल है। इस प्रकार एक नियम को दूसरे के अधीन दिखला कर उसे समझाया जाता है।

§५. *व्याख्या की सीमा* (Limits of Explanation)

जो विषय अस्पष्ट है उसे स्पष्ट करने के लिए ही व्याख्या की जाती है। यदि कोई विषय स्वयं ही स्पष्ट हो तब उसे स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं होती। यहां व्याख्या की सीमा पहुँच जाती है। इसके अतिरिक्त किसी विषय को दूसरे विषय के समान बताने पर ही उसकी व्याख्या होती है पर संसार में ऐसे बहुत से चीज हैं जिनकी समता दूसरे से नहीं हो सकती। वो अपने किस्म के अकेले होते हैं। इसलिए संसार को सभी विषयों की व्याख्या सम्भव नहीं है (The Explanation of Nature can never be completed)। निम्नलिखित विषयों की व्याख्या नहीं हो सकती है:—

(क) व्याख्या की आवश्यकता होती है जब कोई कठिनाई हो समझने में। यदि विषय बिल्कुल सरल है तो व्याख्या सम्भव नहीं होता। इसलिये मन की मौलिक दशा, जैसे स्पर्श (छूना) या गन्ध इत्यादि की व्याख्या सम्भव नहीं है।

(ख) वस्तुओं के मुख्य गुण, जैसे विस्तार, गति, इत्यादि की व्याख्या नहीं हो सकती है। इन गुणों के समान कोई दूसरा गुण नहीं है इसलिए इनकी समता की कमी के कारण इनकी व्याख्या करना सम्भव नहीं है।

(ग) सर्वोच्च (ultimate) नियमों की व्याख्या करना भी सम्भव नहीं है। नियमों को एक दूसरे नियम के अधीन बता कर व्याख्या की जाती है पर सबसे उच्च नियम से बृहत्त दूसरा नियम नहीं है जिसके अधीन रख कर उसे समझाया जा सके। ऐसे नियम स्वयंसिद्ध होते हैं। उनका कारण नहीं बताया जा सकता।

'सभी कार्य का कारण होता है' इस नियम का कारण नहीं समझाया जा सकता है।

(घ) वस्तुओं या घटनाओं के अनन्त रूप (infinite character) की व्याख्या नहीं हो सकती। प्रत्येक वस्तु का अनन्त रूप होता है, जैसे, पुस्तक जो सामने है उसके अपने मुख्य गुण तो हैं ही उसके अलावा वह क्यों उस स्थान पर है, क्यों जरा टेढ़ी है, क्यों दूसरे स्थान पर थी, इत्यादि, बातें भी हैं। वस्तुओं के इन गुणों की व्याख्या सम्भव नहीं है।

§६. *व्याख्या का दोष*—(Fallacies in Explanation)

जन समूह को न इतना समय है न इतनी बुद्धि कि किसी विषय की व्याख्या वैज्ञानिक रीति से करें। उनकी व्याख्या केवल नाम मात्र ही की व्याख्या है। व्याख्या का लक्ष्य उनसे नहीं पूरा होता। विषय अस्पष्ट रह जाते हैं। इसलिए ऐसे व्याख्या भ्रमात्मक या अशुद्ध व्याख्या (illusory or false Explanation) कहे जाते हैं। इनके चार भेद हैं—

(१) व्याख्या का लक्ष्य है विषय को स्पष्ट करना। यदि हम किसी घटना या विषय की व्याख्या उसके कारण या नियम को न बता कर अपितु शब्दों के हेर-फेर से ही कर देते हैं तो व्याख्या दोषपूर्ण हो जाती है। जिस विषय की व्याख्या करनी है उसे केवल दूसरे शब्दों में दुहरा देने से वह विषय स्पष्ट नहीं होता। 'शीशे के आर-पार इसलिए देखते हैं कि वह पारदर्शक है'। यह व्याख्या दोषपूर्ण हुई क्योंकि पारदर्शक का भी अर्थ है जिसके आर-पार देखा जा सके। इसलिये यह कहने से कि शीशे के आर-पार इसलिए देखते हैं कि शीशा के आर-पार देखा जा सकता है, विषय स्पष्ट नहीं हुआ। यह दोष कारण की अनभिज्ञता के वजह से होती है। इसे आत्माश्रय (petitio principii) का दोष भी कहा जाता है।

(२) यदि विषय सरल हो तो उसकी व्याख्या नहीं होती पर सभी विषय को बिल्कुल ऐसा सरल बतला देना न्यायसंगत नहीं है। यदि 'पृथ्वी में गति क्यों है' इस प्रश्न का उत्तर 'प्रकृति ऐसी ही है' यह मिले तो यह उत्तर संतोषजनक नहीं होगा। यह विषय इतना सरल नहीं है, इसलिए इसकी व्याख्या हो सकती है।

(३) सर्वोच्च नियमों (Ultimate Laws) की व्याख्या करना भी भूल ही है।

ये स्वयंसिद्ध होते हैं और उनके व्याख्या की आवश्यकता नहीं रहती है। पर यदि उनका भी कारण बतलाने की चेष्टा की जाय तो यह भूल है, उदाहरणार्थ, गुरुत्वाकर्षण नियम (Law of Gravity)। इसकी व्याख्या नहीं हो सकती, इसका वर्णन किया जा सकता है।

(४) वैज्ञानिक दृष्टि से प्रचलित व्याख्यायेंभी अशुद्ध ही हैं। प्रचलित व्याख्याएं बाहरी लक्षणों अथवा दैवी शक्तियों के द्वारा की जाती हैं। वैज्ञानिक व्याख्या इस प्रकार नहीं होती। अतः प्रचलित व्याख्याएं भी दोषपूर्ण हैं।

(५) किसी विषय की व्याख्या उसके कारण को बता कर भी की जाती है। पर यदि असली कारण को न बता कर गलत कारण के द्वारा ही किसी घटना की व्याख्या की गई तो वह दोषपूर्ण मानी जायगी। इसलिये दोषपूर्ण सामान्यीकरण (Illicit Generalisation) जहां वास्तविक कारण नहीं रहता, दोषपूर्ण व्याख्या है।

§७. *अभ्यास*

1. Explain the meaning of Explanation. What are its different forms ?

2. What is logical Explanation ? Give instances of Illusory Explanations and explain them.

3. Point out the distinction between Scientific and Popular Explanation.

4. How Explanation helps Induction ? Is it true 'that the Explanation of Nature can never be completed' ?

5. "To Explain means to bring the particulars or the less general under the universal or the more general." Discuss. Point out the limits of Explanation.

चौदहवाँ अध्याय

परिभाषा (Definition)

§१. विषय-प्रवेश

§२. परिभाषा की वास्तविक (Material) शर्तें

§३. परिभाषा के प्रभेद (Kinds)

§४. अभ्यास

§१. *विषय-प्रवेश*

परिभाषा (Definition) का अर्थ है सीमा निश्चित करना। किसी पद की अपनी सीमा होती है अर्थात् वह निश्चित वस्तुओं पर लागू होता है, जैसे, मनुष्य पद। यह पद वैसे जीवों पर लागू होता है जो विवेकशील हो और जिसमें पशुत्व हो। इसलिए जब हम मनुष्य को विवेकशील पशु कहते हैं तो हम उसकी परिभाषा करते हैं। विवेकशीलता और पशुत्व मनुष्य के सारगुण (Connotation) हैं। अत: परिभाषा का अर्थ है किसी पद के सारगुण को सरल और स्पष्ट भाषा में व्यक्त करना। त्रिभुज का अर्थ है तीन भुजावाली आकृति, अत: त्रिभुज की परिभाषा हुई तीन भुजावाली आकृति। यदि किसी पद की परिभाषा में उसके सारगुणों में से कुछ छोड़ दिया जाय या अधिक बता दिया जाय तो परिभाषा में दोष हो जाता है। 'मनुष्य पशु है' यदि ऐसा कहा जाए तब परिभाषा दोषपूर्ण होगी क्योंकि गाय भी पशु है, कुत्ता भी पशु है। इसमें सारगुणों में से विवेकशीलता, एक गुण छोड़ दिया गया है। इसी प्रकार शुद्ध परिभाषा की और भी शर्तें हैं। किसी पद की परिभाषा में उसका समस्त सार-गुण बताना चाहिए। परिभाषा सरल, स्पष्ट और सुबोध भाषा में होनी चाहिए। ये सब शुद्ध परिभाषा के आकारिक (formal) शर्तें हैं। इन सब शर्तों के पालन करने से परिभाषा शुद्ध होती है। पर किसी पद के सारगुण निश्चित करने पर ही उसे व्यक्त किया जा सकता है। जब तक यह नहीं जाना जाय कि मनुष्य का सारगुण (connotation) क्या है उसकी परिभाषा कैसे की जा सकती है?

करने के लिए आगमन में कुछ नियम बताए गए हैं। ये ही हैं परिभाषा के विषय-विषयक (material) शर्तें।

§२. *परिभाषा की विषय-विषयक* (Material) *शर्तें*:—

परिभाषा का अर्थ है किसी पद के सारगुणों का व्यक्तीकरण। किसी पद का सारगुण तभी व्यक्त किया जा सकता है जब उसका ज्ञान रहे। अतः किसी पद की परिभाषा करने के पहले उस पद के सारगुणों को निश्चित करना आवश्यक है। किसी पद के सारगुण को निश्चित करने के नियम ही परिभाषा के विषय-विषयक शर्तें (Material conditions) हैं।

सारगुण निश्चित करने के नियम:—

(क) विध्यात्मक विधि (Positive Method)—किसी पद के सारगुण को जानने के लिए उस नाम के कुछ व्यक्तियों का निरीक्षण और परीक्षा किया जाता है। निरीक्षण के उपरान्त उन व्यक्तियों में कौन कौन गुण हैं और कौन से गुण सभी में सामान्य हैं यह पता चलाया जाता है। वैसे गुण जो व्यक्तियों में भिन्न हों उनका निराकरण और वो जो सामान्य हैं उनका धारण किया जाता है। सामान्य गुणों में भी वैसे जो आकस्मिक हैं उन्हें छोड़ दिया जाता है। वैसे जो सामान्य हैं और जाति गुण हैं वे ही उस पद के सारगुणहैं। मान लें कि मनुष्य पद का सारगुण जानना है। मनुष्य नाम से पुकारे जानेवाले कुछ प्राणियों की हमने परीक्षा की। हमने पाया कि कुछ गोरे हैं, कुछ काले हैं, कुछ के दो पैर हैं, दूसरे लंगड़े हैं, किसी को नाक है, मुंह है पर कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें यह नहीं है या ये विकृत हैं। इसलिए ये सब गुण मनुष्यों में भिन्न हैं पर विवेकशीलता और पशुत्व सब में सामान्य है। अतः यही मनुष्य पद का सारगुण या जाति-गुण हुआ।

सारांश यह हुआ कि जिस पद की परिभाषा करनी है उस पद से जिन व्यक्तियों का संकेत मिलता है उनकी तुलना करके उनमें सामान्य गुण निकालने पर उस पद का सारगुण निश्चित होता है। यह विध्यात्मक विधि हुई।

(ख) निषेधात्मक विधि (Negative Method):— ऊपर बताए हुए विधि से निकाला गया सारगुण तभी निश्चित होता है जब उसके विपरीत पद का विचार कर लिया जाय। यह निश्चित रूप से जानने के लिये कि किसी पद का अमुक सारगुण है यह विचार लेना आवश्यक है कि वही गुण अन्य पदों का तो

नहीं है। मनुष्य का सारगुण विवेकशीलता और पशुत्व बताया गया है। यह निश्चित हो जाता है जब हम देखते हैं कि जो मनुष्य नहीं हैं, पशु, पेड़, पत्थर, उनमें विवेकशीलता का अभाव है। ऐसा विचार कर लेने से सारगुण निश्चित रूप से पता चलता है। इसलिए बेन (Bain) ने कहा है कि किसी पद की निश्चित परिभाषा करने के लिए उसके विपरीत पद की परिभाषा भी आवश्यक है। सारांश यह हुआ कि किसी पद का सारगुण जानने के लिए विपरीत पद के व्यक्तियों की तुलना भी आवश्यक है। यह हुई निषेधात्मक विधि।

आलोचना:—उपर बताए हुए नियम सरल प्रतीत होते हैं। पर वास्तव में वे इतना सरल नहीं जितना प्रतीत होते हैं। पहले तो किसी पद से इतने व्यक्तियों का संकेत मिलता है कि उनकी तुलना करने के लिए उन्हें इकट्ठा करना सम्भव नहीं है। मनुष्य ही पद को लें। अब मनुष्य नाम से पुकारे जानेवाले अनेक प्राणी हैं। सब की तुलना करना सम्भव नहीं है। यदि उनकी तुलना भी किया जाय तो यह बताना कि कौन से गुण सामान्य हैं और भिन्न, असम्भव तो नहीं पर बहुत ही कठिन है। दूसरे, कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिनका सारगुण जानना बहुत ही कठिन है क्योंकि उनमें कुछ गुण किसी एक जाति के वर्तमान हैं और कुछ गुण किसी दूसरी जाति के। जैसे, जेली। जेली में ठोस पदार्थ के भी गुण हैं क्योंकि ठोसपदार्थ में रोकने की शक्ति है जो जेली में भी है और उसमें तरल पदार्थ के भी गुण हैं क्योंकि उसमें रोक-शक्ति बहुत कम है। इसलिये जेली ठोस पदार्थ मानी जाय या तरल पदार्थ यह निश्चित करना कठिन है।

इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये कुछ तार्किकों ने व्यक्ति-विशेष (Type) द्वारा परिभाषा को ही उत्तम बताया है। व्यक्ति-विशेष द्वारा परिभाषा करने का अर्थ है कि किसी जाति के ऐसे व्यक्ति की परिभाषा करना जिसमें उस जाति के गुण अधिक से अधिक मात्रा में वर्तमान हों। जैसे चीन निवासी मंगोल जाति के हैं जिसके चाम पीले हों, नाक चपटी हो इत्यादि। पर ऐसी परिभाषा में तो और भी कठिनाई है इसलिए कि जब तक किसी जाति का सारगुण हम नहीं जान लेते, यह कैसे जान सकते हैं कि अमुक व्यक्ति में उस जाति का अधिक से अधिक गुण वर्तमान है। इसलिये व्यक्ति-विशेष का चुनाव विना सारगुण के ज्ञान के सम्भव नहीं है।

§३. *परिभाषा के प्रभेद* (Kinds of Definition)

(i) निगमनात्मक और आगमनात्मक (Deductive and Inductive)—दो प्रकार की परिभाषा मानी गई है, निगमनात्मक और आगमनात्मक। जिस परिभाषा में पद के समस्त सारगुण (connotation) को सरल और स्पष्ट रूप में व्यक्त किया जाय उसे निगमनात्मक कहा जाता है। मनुष्य विवेकशील पशु है यह परिभाषा निगमनात्मक हुई। जिसमें पदार्थों का निरीक्षण करके पदों (Terms) के सारगुण को निकालने का प्रयत्न किया जाय वह आगमनात्मक (Inductive) परिभाषा होगी। मनुष्य पद से जिन व्यक्तियों की सूचना मिलती है उन्हें परीक्षा करके उनके सारगुण को जानने का प्रयत्न किया गया है; यही आगमनात्मक परिभाषा है। इससे यह सिद्ध होता है कि आगमनात्मक परिभाषा के बाद ही निगमनात्मक परिभाषा का स्थान है। जब तक पदों के सारगुण का ज्ञान नहीं हो जाता है उसे सरल और स्पष्ट रूप में व्यक्त कैसे किया जा सकता है? जब हम यह जान लेते हैं कि मनुष्य पद का सारगुण विवेकशीलता तथा पशुत्व है तभी हम कहते हैं कि मनुष्य विवेकशील पशु है। भाववाचक (abstract) क्षेत्रों में केवल निगमनात्मक परिभाषा का ही प्रयोग होता है, जैसे गणितशास्त्र या ज्यामितिशास्त्र में। इन क्षेत्रों में निरीक्षण सम्भव नहीं है। लाईन, विन्दु, त्रिभुज इत्यादि भाववाचक हैं, अतः उनके निरीक्षण का प्रश्न ही नहीं होता। इसलिये यहाँ आगमनात्मक परिभाषा सम्भव नहीं है।

(ii) वस्तुवाचक और नामवाचक (Real and Nominal)—ऐसे वस्तुओं की परिभाषा जिसका संसार में वास्तविक अस्तित्व हो वस्तुवाचक कही जाती है। यदि मनुष्य की परिभाषा की जाय 'मनुष्य विवेकशील पशु है' तब यह वस्तुवाचक परिभाषा होगी क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व वास्तविक है। यदि ऐसे वस्तुओं की परिभाषा हो जिनका संसार में वास्तविक अस्तित्व नहीं हो तब वह परिभाषा नामवाचक कही जाती है।

इस समस्या के विषय में कि परिभाषा, वस्तु की होती है या नाम की या धारणा की, तार्किकों में मतभेद है। इसके विषय में तीन मत है वस्तुवाद (Realism), जिसके अनुसार वस्तुओं की परिभाषा होती है, नामवाद (Nominalism), जिसमें बतलाया गया है कि परिभाषा नाम की होती है, और धारणावाद

(Conceptualism), जिसके अनुसार परिभाषा धारणाओं की होती है। वास्तव में परिभाषा का अर्थ है अर्थ बतलाना। अर्थ तो हम बतलाते हैं वस्तुओं के धारणाओं (concepts) का। अतः हम धारणाओं की ही परिभाषा करते हैं जो नामों में व्यक्त रहते हैं। पर धारणाएं वस्तुओं की ही होती हैं।

(iii) द्रव्यवाचक और जनन (Substantial and Genetic)—जब किसी पद के सारगुण को स्पष्ट और सरल रूप में व्यक्त किया जाय तो वह (Substantial) परिभाषा होगी। पर जब हम सारगुण के निश्चित करने की रीति बतलाएं तो उसे (Genetic)परिभाषा कहेंगे। 'त्रिभुज तीन भुजावाली आकृति है', यह Substantial परिभाषा हुई। पर यदि यह कहा जाय कि त्रिभुज किसी cone के apex से किसी perp. plane के pass करने से बनती है तब यह Genetic परिभाषा हुई। Genetic परिभाषा से यह पता चलता है कि पदार्थों की उत्पत्ति या बनावट कैसी है।

§४. *अभ्यास*

1. Explain and illustrate the material conditions of Definition.

2. In defining a term how do we know its connotation ? Explain critically.

3. Distinguish between:—

(a) Deductive and Inductive Definition.

(b) Real and Nominal Definition.

(c) Subtantial and Genetic Definition.

4. Explain critically the meaning of Definition by Type. Do we define a Name or a thing ?

5. What is a Genetic Definition ? Is it a real form of Definition ? Explain.

पन्द्रहवाँ अध्याय

वर्गीकरण (Classification)

§१. वर्गीकरण का अर्थ
§२. वैज्ञानिक (Scientific) तथा लौकिक (Popular) वर्गीकरण
§३. प्राकृतिक (Natural) वर्गीकरण और प्राकृतिक जाति-प्रकार-सिद्धांत (Theory of Natural Kinds)
§४. वर्गीकरण के नियम (Rules)
§५. श्रेणी द्वारा वर्गीकरण (Classification by Series)
§६, व्यक्ति-विशेष द्वारा और परिभाषा द्वारा वर्गीकरण (Classification by Type and Definition)
§७. वर्गीकरण और व्याख्या (Explanation)
§८. वर्गीकरण और विभाजन (Division)
§९. वर्गीकरण और परिभाषा (Definition)
§१०. वर्गीकरण की सीमा (Limits)
§११. वर्गीकरण का उपयोग (Use)
§१२. अभ्यास

§१. *वर्गीकरण का अर्थ* (Meaning of Classification)

वर्गीकरण का अर्थ है पदार्थों को वर्गों में करना। उदाहरणार्थ, यदि किसी स्थान पर कलम, पेंसिल, खल्ली तथा टेबुल, कुर्सी, मेज, आदि रखे हुए हों, तो उन्हें दो वर्गों में रखा जायगा—कलम, पेंसिल, खल्ली लिखने की सामग्री होने के कारण एक वर्ग में तथा टेबुल, कुर्सी, मेज सामान होने के कारण दूसरे वर्ग में।

इसी प्रकार संसार में अनन्त पदार्थ हैं; पर वे सभी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न नहीं हैं। एक विभाग के सभी पदार्थ समान ही रहते हैं और उन्हें एक ही नाम से सम्बोधित किया जाता है। जैसे, राम, श्याम, मोहन आदि सभी मनुष्यों को 'आदमी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसी प्रकार घोड़े, हाथी, कुत्ते आदि "जानवर" के नाम से पुकारे जाते हैं।

किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये पदार्थों में सादृश्य (similarity) और भेद (difference) के अनुसार मन में उनका वर्ग बनाना "वर्गीकरण" कहलाता है। वर्गीकरण एक मानसिक (mental) क्रिया है, शारीरिक (physical) नहीं। यह आवश्यक नहीं है कि वस्तुओं को वास्तव में अलग वर्गों में रखा जाय। प्रदर्शनियों में एक-एक तरह की चीजें अलग-अलग कतार में सजाई जाती हैं। वहां वर्गीकरण शारीरिक होता है। परन्तु वैज्ञानिक वर्गीकरण मानसिक होताहै। विज्ञान में बहुत से ऐसे पदार्थों का भी वर्ग बनता है जिसका लोप हो चुका है।

कौन सी वस्तु किस वर्ग की है यह समान और असमान गुणों पर निर्भर रहता है। जो चीजें एकसी होती हैं वे एक वर्ग में रखी जाती हैं तथा जो एक दूसरे से भिन्न रहती हैं उन्हें दूसरे वर्ग में रखा जाता है। कालेज के प्रथम कक्षा के विद्यार्थी का एक वर्ग है और दूसरी कक्षा के विद्यार्थी का दूसरा। पहली कक्षा के विद्यार्थी एक वर्ग के इसलिए हैं कि उन सबों ने मैट्रिक पास किया है तथा पहली कक्षा अभी पास नहीं कर सके हैं। दूसरी कक्षा के विद्यार्थी, इसी तरह, एक दूसरे वर्ग के हैं। पदार्थों में जितना अधिक फर्क होता है उतना ही वे एक दूसरे से पृथक वर्गों में रखे जाते हैं।

किसी पदार्थ में बहुत से गुण हैं। एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ से कई गुणों में सादृश्यता हो सकती है और इसी तरह भेद भी। पहली कक्षा के विद्यार्थी मैट्रिक पास रहने एवं उसी कक्षा में पढ़ने में ही केवल समान हैं; पर धर्म, खेल अथवा बुद्धि आदि अन्य गुणों में वे एक दूसरे से भिन्न हैं। इसलिए किसी आधार पर ही दो वस्तुओं में समानता हो सकती है। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से एक ही पदार्थ विभिन्न वर्गों में रखा जा सकता है। कोई शिक्षक प्रथम कक्षा के विद्यार्थी को अपनी दृष्टिकोण से तेज, औसत तथा मन्दबुद्धि, इन तीन वर्गों में बांटता है; उन्हीं विद्यार्थियों को गुप्तचर विभाग का एक सदस्य (C. I. D.) 'राजभक्त तथा राजविरोधी' आदि दो दल में अपने विचारानुसार बांट सकता है। इसी प्रकार वे विद्यार्थी कालेज के चपरासी के अनुसार 'अमीर तथा गरीब' दो गुट में बँट सकते हैं। इसी प्रकार एक दृष्टिकोण से अलग कोई विद्यार्थी एक वर्ग में किसी एक के साथ है तो दूसरी दृष्टिकोण से वह दूसरे वर्ग में किसी दूसरे के साथ हो सकता है। अतः सादृश्य निश्चित करने के लिये किसी लक्ष्य या दृष्टि

कोण का निश्चित करना आवश्यक है। उसी लक्ष्य या दृष्टिकोण से ही वर्गीकरण किया जाता है।

§२. *वैज्ञानिक तथा लौकिक वर्गीकरण* (Scientific and Popular Classification)

वर्गीकरण का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य रहता है। यह भिन्न मनुष्यों के लिए भिन्न होता है। सभी मनुष्य एक ही लक्ष्य की पूर्ति के लिये वर्गीकरण नहीं करते। जब कोई दारोगा किसी गांव के लोगों को 'ए' 'बी' 'सी' दर्जे में विभाग करता है तब उसका लक्ष्य उस गाँव के लोगों का चरित्र जानना रहता है, जिससे अपराधियों को पकड़ने में उसे आसानी हो। परन्तु जब एक वैज्ञानिक पौधों का वर्गीकरण करता है तब उस विषय में उसका लक्ष्य रहता है मनुष्य का ज्ञान बढ़ाना। पहले उदाहरण में वर्गीकरण दैनिक जीवन के लिए किया गया है, दूसरे में ज्ञान के विकाश के लिए। इस प्रकार लक्ष्य सैद्धान्तिक (theoretical) या व्यावहारिक होता है। सैद्धान्तिक लक्ष्य रहने पर किसी वर्गीकरण को वैज्ञानिक (Scientific) कहते हैं, व्यावहारिक रहने पर व्यावहारिक (practical)। साधारण लोग अपने जीवन में पिछले ही किस्म के वर्गीकरण का प्रयोग करते हैं; इसलिए इसे लौकिक (Popular) वर्गीकरण भी कहते हैं।

वैज्ञानिक वर्गीकरण का आधार है मुख्य बातों में समानता। एक शिक्षक तथा एक विद्यार्थी के बीच वेश-भूषा, कद आदि ऊपरी बातों में तो अनेकानेक समता रहती है, फिर भी दोनों एक श्रेणी के नहीं हैं। सामान्य तथा स्वाभाविक गुणों का सादृश्य ही वास्तविक समानता है। मनुष्यों में बाहरी भेद तो बहुत हैं, फिर भी उनकी विवेकशक्ति के कारण उनमें वास्तविक समानता है; इसलिए वे एक श्रेणी में आते हैं और इसी कारण वैज्ञानिक वर्गीकरण को प्राकृतिक (Natural) वर्गीकरण कहा जाता है। इसके विपरीत लौकिक वर्गीकरण निजी हित के लिए होती है। ऊपरी समानता के आधार पर ही अधिकतर इस प्रकार का विभाजन होता है। इसलिए इसे कृत्रिम (Artificial) वर्गीकरण कहते हैं। वास्तव में प्राकृतिक (Natural) और कृत्रिम (Artificial) वर्गीकरण में विशेष अन्तर नहीं है। एक दृष्टि से दोनों ही कृत्रिम कहे जा सकते हैं क्योंकि दोनों ही मानव निर्मित हैं। दूसरी दृष्टि से दोनों ही प्राकृतिक कहे जा सकते हैं क्योंकि दोनों

में जिस गुण के सादृश्य पर वस्तुओं को वर्गों में रखा जाता है उनका अस्तित्व उन्हीं वस्तुओं में है और वे गुण प्राकृतिक होतेहैं। उनमें अन्तर केवल यही है कि एक में वर्गीकरण का कोई विशेष लक्ष्य होता है, दूसरे में समान्य ज्ञान ही के लिए वर्गीकरण होता है।

मनुष्य का ज्ञान-कोष जितना अधिक विस्तृत होता है उतना ही उत्तम वर्गीकरण भी होता है। मान लें कि पानी में रहने या न रहने के आधार पर जानवरों का विभाजन करना है। यदि मुझे मगर का ज्ञान न हो तो पानी में रहने वाला एक जानवर छूट जायगा,जिससे पूर्ण वर्गीकरण में कमी रह जायगी। किसी गुण के आधार पर जब विभाजन करना है तो संसार में जिन-जिन पदार्थों में वह गुण है, सब को एक श्रेणी में रखना चाहिये। इसमें अनभिज्ञता या आलस्य रहने पर कोई न कोई पदार्थ अवश्य ही छूट जायगा। किसी पदार्थ का गलत गुण मानकर उसे किसी वर्ग में रखने पर भी वर्गीकरण दोषपूर्ण हो जाता है। पर वैज्ञानिक वर्गीकरण विस्तृत होता है। उसमें निश्चयता होती है। विभाजन करने में यह मानना कि अमुक पदार्थ इस श्रेणी में होगा अथवा उस श्रेणी में, अवैज्ञानिक है। इसमें तो निश्चित पद्धतियों द्वारा विषयों का अध्ययन करके ही किसी फल पर पहुँचा जाता है।

अत:वैज्ञानिक वर्गीकरण का लक्षण है व्यापकता (comprehensiveness), निश्चयता (definiteness) तथा सुव्यवस्था (systematisation)।

§३. *प्राकृतिक वर्गीकरण और जाति-प्रकार का सिद्धान्त* (Natural Classification & the theory of Natural kinds)

प्राकृतिक वर्गीकरण का सम्बन्ध सबसे अधिक और प्रधान गुणों के सादृश्य से है। ऐसी वस्तुओं को, जिनमें अधिक और प्रधान गुणों में सादृश्य हो, एक वर्ग में रखा जाता है। पर सादृश्य गुणों की गणना में ऊपरी सादृश्य का मूल्य नहीं है। दो वस्तुओं में ऊपरी समानता बहुत अधिक हो सकती है पर वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हो सकते हैं। अत: वर्गीकरण में प्रधान गुणों में समानता ही का ख्याल रखना चाहिए। प्रधान गुण वे ही हैं जिनके आधार पर भिन्न वस्तुओं को एक वर्ग में रखा जाता है और जिनके कारण उनका भेद अन्य वर्ग के वस्तुओं से होता है। मनुष्य का प्रधान गुण है उसकी विवेकशक्ति

(rationality) क्योंकि इसी के कारण एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में समता है और मनुष्य दूसरे वर्गों के पदार्थों से भिन्न है। अतः प्राकृतिक वर्गीकरण का आधार वस्तुओं का प्रधान गुण ही होना चाहिए।

प्राकृतिक वर्गीकरण का सम्बन्ध प्राकृतिक जाति-प्रकार-सिद्धान्त (theory of Natural Kinds) से है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति में स्वभावतः भिन्न-भिन्न वर्ग या जातियां हैं। ऐसा मालूम होता है कि प्रकृति ने स्वयं वर्गों को बनाया है, उदाहरणार्थ, हाथी, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, पौधे, मनुष्य, इत्यादि। प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों में प्रधान गुणों में सादृश्य है जिसके कारण वे एक वर्ग मे हैं। ये वर्ग प्राकृतिक इसलिए कहे गये हैं कि उन्हें हम नहीं बनाते अपितु प्रकृति ही की रचना इस प्रकार है। प्राकृतिक वर्गीकरण द्वारा इन्हीं वर्गों या जातियों का पता लगाया जाता है। इसलिये प्राकृतिक वर्गीकरण का वास्तविक ध्येय पदार्थों को भिन्न वर्गों में बांटना नहीं अपितु यह बताना है कि वे किस वर्ग के व्यक्ति हैं क्योंकि वर्ग तो बने हुए है ही हैं।

प्राकृतिक जाति-प्रकार-सिद्धान्त (theory of Natural Kinds) सृष्टि-वाद (theory of Creation) पर आश्रित है। सृष्टिवाद के अनुसार ईश्वर ने इस विश्व की सृष्टि की है और उसी समय सारी वस्तुओं की रचना की। उन्होंने दुनिया में जितने प्राणी पाए जाते हैं सभी का एक-एक जोड़ा बनाया और इस तरह प्रत्येक वर्ग के प्राणी उन्हीं के सन्तान हैं। इस तरह बिल्ली, कुत्ता, हाथी, घोड़ा, आदमी सभी भिन्न-भिन्न वर्ग के हैं क्योंकि ईश्वर ने इनकी सृष्टि अलग-अलग की और विश्व के आदि काल से ही ये सभी वर्ग या जाति हैं। इनमें मौलिक भेद वा सादृश्य है। एक वर्ग या जाति की उत्पत्ति दूसरे वर्ग या जाति से नहीं हुई।

आधुनिक विकासवाद (Theory of Evolution) ने उपरोक्त सिद्धान्त का प्रतिरोध किया है। इसके अनुसार जितनी जातियां आज हैं सभी का अस्तित्व सृष्टि के आरम्भ काल से ही नहीं हैं। सभी के वंशज आरम्भ में एक ही थे पर धीरे-धीरे उनसे भिन्न-भिन्न जातियों का विकास हुआ है। इसी सिद्धान्त के द्वारा यह बताया गया है कि मनुष्य के पूर्वज बंदर थे।

आधुनिक विकासवाद ने प्राकृतिक वर्गीकरण का ध्येय ही बदल दिया है,

क्योंकि जातियां या वर्ग निश्चित तथा अपरिवर्तनशील नहीं हैं जैसा जाति-प्रकार सिद्धान्त में बतलाया गया है। अब समस्या है कि कौन सा वर्ग किस वर्ग से उत्पन्न हुआ है? पर वर्तमान अवस्था में भी भिन्न-भिन्न वर्ग हैं और प्रधान गुणों में सादृश्य के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। यही प्राकृतिक वर्गीकरण हुआ।

§४. *वर्गीकरण के नियम* (Rules of Classification)

फुटकर पदार्थों का सादृश्यता के आधार पर इकट्ठा करना ही वर्गीकरण है। इसके निम्नलिखित नियम हैं :—

(१) सबसे पहले जिन वस्तुओं का प्रधान और अधिकांश गुण एक समान हो उन्हें एक वर्ग में रखना चाहिए। इसी तरह फुटकर पदार्थों का वर्ग बनता है, जैसे, सभी मनुष्यों का एक वर्ग हुआ, सभी बिल्लियों का दूसरा, सभी घोड़ों का तीसरा इत्यादि। इसे ही वर्गीकरण का स्वर्ण नियम (Golden Rule) कहा जाता है।

(२) फुटकर पदार्थों को वर्गों में रखने ही से काम समाप्त नहीं होता है। इन वर्गों को भी सादृश्य के आधार पर बड़े वर्गों में रखना चाहिए। जो वर्ग एक समान हों वे एक बड़े वर्ग में आएंगे और दूसरे, दूसरे वर्ग में, इत्यादि।

(३) फिर छोटे-छोटे वर्गों को अधिक व्यापक वर्गों के अन्तर्गत रखना चाहिये। इस तरह वर्गीकरण की गति ऊपर होनी चाहिए। ये नियम प्राकृतिक या वैज्ञानिक वर्गीकरण के हैं। वर्गीकरण में सबसे छोटा वर्ग 'Variety' माना जाता है, तब Species, फिर Genera, Tribe, Order, Sub-kingdom और सबसे बड़ा वर्ग Kingdom।

§५. *श्रेणी द्वारा वर्गीकरण* (Classification by Series)

किसी गुण के आधार पर पदार्थों का वर्गीकरण होता है। एक वर्ग में समान गुणवाले पदार्थ होते हैं पर उसी वर्ग के भिन्न पदार्थों में वही गुण भिन्न मात्रा में होती है। मान लें कि रंगों का वर्ग बनाया गया। लाला, पीला, हरा, इत्यादि रंगों का अलग-अलग वर्ग हुआ; लेकिन लाल रंगों के वर्ग में ही लालिमा की भिन्न मात्रा (degrees) मिलती है, कम लाल, अधिक लाल या उससे भी अधिक लाल। भिन्न मात्राओं (degrees) के आधार पर यदि उनका वर्ग बनाया जाय तो एक ही वर्ग में कितने वर्ग होते हैं। इसी को श्रेणी द्वारा वर्गीकरण कहते हैं। कोई गुण यदि सभी वर्गों में सामान्य हो तो इस विधि का प्रयोग जाता है।

रंग

पीला हरा लाल काला इत्यादि

हल्का लाल

अधिक लाल

इत्यादि

§६. *व्यक्ति-विशेष द्वारा वर्गीकरण* (By Type) *तथा परिभाषा द्वारा वर्गीकरण* (By Definition)

वर्गीकरण पदार्थों के समान तथा भेद गुणों के आधार पर होता है। जो पदार्थ एक समान होते हैं उन्हें एक वर्ग में और जिनमें उस गुण का अभाव होता है उन्हें दूसरे वर्ग में रखा जाता है। सादृश्य या भेद वस्तुओं के सार गुण में देखी जाती है पर Whewell का विचार इससे भिन्न है। उनके अनुसार वर्गीकरण व्यक्ति-विशेष (Type) के अनुसार होता है। उन्होंने बतलाया है कि व्यक्ति-विशेष ही वर्ग का प्रतिनिधि होता है। उसमें वर्ग के प्रधान गुण स्पष्ट रूप में व्यक्त रहते हैं। हम या आप मनुष्य वर्ग के एक प्रकार हैं। मनुष्य वर्ग के प्रधान गुण हमलोगों में वर्तमान हैं। अतः हमें या आपको आधार मानकर हमसे या आपसे जो वस्तु सादृश्य हों उन्हें एक वर्ग में रखा जायगा। इसी प्रकार किसी व्यक्ति-विशेष को आधार मान कर उसके समान जो पदार्थ हों उन्हें एक वर्ग में और जो उससे असमान हैं उन्हें दूसरे वर्ग का माना जाता है। इसे ही व्यक्ति-विशेष द्वारा वर्गीकरण कहा जाता है। वेवेल (Whewell) ने इसे ही सही वर्गीकरण बतलाया है।

यह मत मान्य नहीं प्रतीत होता। किस्म के आधार पर कौन पदार्थ उस किस्म का है पता चल सकता है पर वास्तव में वह उसी वर्ग का है या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। एक मछली को लें और पानी के जीवों का उससे समानता देख कर वर्ग बनाएँ तो भेल (Whale) को मछली की ही कोटि में रखना होगा, क्योंकि वे उसी किस्म की मालूम होती हैं; पर वास्तव में भेलों का गुण कुछ और ही है। वे मछली के किस्म की नहीं होतीं। इसलिए किस्म से केवल एक समान पदार्थों का संकेत मिलता है। यह आवश्यक नहीं

है कि दो पदार्थ जब एक किस्म के हों तो वे वास्तव में एक ही वर्ग के हों। लौकिक (Popular) वर्गीकरण इसी प्रकार का होता है। इससे कल्पना में सहायता मिलती है इसलिये इसका सांकेतिक मूल्य है।

मिल के अनुसार वर्गीकरण का आधार 'परिभाषा' होनी चाहिए। परिभाषा का अर्थ है वास्तविक धर्म का स्पष्टीकरण। पदार्थों के वास्तविक धर्म या गुण के आधार पर ही समानता और असमानता का ध्यान रखने से वैज्ञानिक वर्गीकरण होता है। कौन सा पदार्थ किस वर्ग का है यह निश्चित रूप से उसके वास्तविक गुण को जानने से ही पता चलता है। किसी पदार्थ का वास्तविक धर्म उसकी परिभाषा से ज्ञात होता है। इसलिये परिभाषा के आधार पर किए गए वर्गीकरण को वैज्ञानिक माना जाता है।

§७. *वर्गीकरण और व्याख्या* (Classification and Explanation)

(i) वर्गीकरण और व्याख्या भी आपस में सम्बन्धित हैं। व्याख्या का ध्येय है किसी घटना या पदार्थ का कारण बता कर उसे स्पष्ट करना। जब कोई अपरिचित वस्तु की व्याख्या करनी होती है तो उसकी सादृश्यता (similarity) किसी परिचित वस्तु से कराई जाती है। सादृश्यता के आधार पर वर्गीकरण भी की जाती है। किसी पदार्थ को एक वर्ग में रख देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वह क्या है। अतः वर्गीकरण व्याख्या का एक रूप है।

(ii) स्मृति के लिए दोनों सहायक हैं। यदि कोई बात स्पष्ट कर दिया जाता है तो मस्तिष्क पर उसकी गहरी छाप पड़ती है। इसी प्रकार श्रेणियों में बांट देने पर कोई बात शीघ्र ही याद हो जाती है। इसलिए दोनों ही हमारे ज्ञान को व्यवस्थित करते हैं।

(iii) दोनों का लक्ष्य एक ही है, ज्ञान को बढ़ाना।

(iv) दोनों ही किसी वैज्ञानिक गवेषणा में सहायक हैं।

(v) दोनों ही से उत्सुकता शान्त होती है और मानसिक सन्तोष होता है। समता होते हुए भी दोनों में अन्तर यह है कि व्याख्या का सम्बन्ध प्रकृति के परिवर्तनों से है और वर्गीकरण का प्रकृति के स्थिर रूप से। एक घटना से दूसरे घटना की उत्पत्ति कैसे होती है इसका व्याख्या द्वारा ही ज्ञान होता है और कौन

कौन घटनाएं एक वर्ग की हैं अर्थात् एक समान हैं यह वर्गीकरण से ज्ञात होता है।

§८. *वर्गीकरण और विभाजन* (Classification and Division)

विभाजन में हम जातियों को उसके उपजातियों में बांटते हैं। इसके लिये एक सिद्धान्त आवश्यक है। उसी के आधार पर विभाजन होता है। किसी जाति के जिन व्यक्तियों में वह गुण होता है उनकी एक उपजाति होती है और उसका अभाव जिनमें होता है उसकी दूसरी। इस क्रिया में जातियों को उपजातियों में बांटा जाता है। इसमें बड़े वर्ग से छोटे वर्गों की ओर हम जाते हैं। वर्गीकरण में व्यक्तियों को जातियों में रखा जाता है। इसके लिये भी एक सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। उसी के आधार पर वर्गीकरण होता है। इसमें व्यक्तियों से वर्गों की ओर और छोटे वर्गों से बड़े वर्गों की ओर हम बढ़ते हैं। अतः दोनों का सिद्धान्त एक ही है, पदार्थों के समान गुणों को प्रकट करना। इसके अलावा वर्ग बनाने की क्रिया दोनों ही में है। पर दोनो में अन्तर भी है।

अन्तर:—

(i) एक में अंश से सम्पूर्ण की ओर जाते हैं तो दूसरे में सम्पूर्ण से अंश की ओर। आगमन तथा निगमन की भांति, एक में नीचे से ऊपर की ओर और दूसरे में ऊपर से नीचे की ओर बढ़ते हैं। इसलिये यदि दोनों को विभाजन कहें तो एक आगमनात्मक विभाजन और दूसरा निगमनात्मक विभाजन कहलायगा।

(ii) एक में वास्तविक (Material) सत्यता है और दूसरे में आकारिक सत्यता (Formal truth)।

(iii) वर्गीकरण व्यक्तियों का होता है और विभाजन बड़ी जाति (Genus) का।

पर दोनों में एक विभाग-धर्म (Fundamentum Divisionis) की आवश्यकता होती है। विभाग-धर्म का सम्बन्ध पदार्थों के गुण से है। पदार्थों का गुण परिभाषा द्वारा मिलता है। इसलिये दोनों ही परिभाषा (Definition) पर अवलम्बित हैं। पर परिभाषा और वर्गीकरण में अन्तर है। पहला पदार्थों के गुण से और दूसरा उस गुण के आधार पर पदार्थों से सम्बन्धित है।

§९. *वर्गीकरण और परिभाषा* (Classification and Definition)

वर्गीकरण और परिभाषा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। व्यक्तियों को प्रधान गुण की सादृश्यता के आधार पर वर्गों में रखते हैं। वैसे पदार्थ जिनका प्रधान गुण एक समान होता है एक वर्ग में रखे जाते हैं। अतः वर्गीकरण के लिए वस्तुओं के प्रधान गुण को जानना आवश्यक है। ऊपरी सादृश्य के आधार पर तो कृत्रिम (Artificial) वर्गीकरण होता है। मनुष्य ही को लें जिनमें यूं तो अनेक गुण हैं पर प्रधान गुण केवल उनकी विवेकशक्ति (rationality) है। सभी मनुष्य एक वर्ग के प्राणी माने जाते हैं उसी प्रधान गुण (विवेकशक्ति) में सादृश्य के कारण। वस्तुओं का प्रधान गुण परिभाषा द्वारा ही पता चलता है। अतः वर्गीकरण परिभाषा पर आश्रित है।

यह सम्बन्ध होते हुए भी दोनों में भेद है। वर्गीकरण का सम्बन्ध पदार्थों से है और परिभाषा का उन पदार्थों के सारगुण से। अतः उनमें वही सम्बन्ध है जो किसी पद के वस्तुवाचकता(Denotation)और गुणवाचकता (Connotation) में है।

§१०. *वर्गीकरण की सीमा* (Limits)

यह आवश्यक नहीं है कि संसार में जितने पदार्थ हैं प्रत्येक किसी न किसी वर्ग में आ ही जाए। वर्गीकरण में नीचे से ऊपर की ओर जाना पड़ता है। सबसे पहले, व्यक्तियों को भिन्न वर्गों में रखा जाता है, फिर उन वर्गों को उनसे बड़े वर्गों में और इसी प्रकार हम सबसे बड़े वर्ग तक पहुंचते हैं। लेकिन वैसे पदार्थ जो अनूठे (unique) हैं, जिनकी समता किसी दूसरे पदार्थ से नहीं है वे दूसरे पदार्थों के साथ एक वर्ग में नहीं रखे जा सकते। इसलिए निम्नलिखित इसकी सीमा के बाहर हैं:—

(i) सबसे बड़ी जाति—सबसे बड़ी जाति (Highest Genus) किसी बड़े जाति का प्रकार नहीं हो सकता है। यदि ऐसा सम्भव हो तब वह सबमें बड़ी जाति नहीं कहलाएगी। इसलिए इसका वर्गीकरण सम्भव नहीं है।

(ii) अनूठे पदार्थों का भी वर्गीकरण सम्भव नहीं है।

(iii) संसार में कुछ ऐसे पदार्थ भी हैं जो दो तरह के पदार्थों के बीच में आते हैं। इनमें दो वर्गों के या जातियों के गुण समान रूप से मिलते हैं।

उदाहरणार्थ, 'मधु'। यह तरल पदार्थ की भांति हैं और ठोस भी। ऐसे पदार्थ के वर्गीकरण में कठिनाई होती है क्योंकि उन्हें किस वर्ग में रखा जाय यह स्पष्ट नहीं हैं। इसी तरह जो बीच के उदाहरण (Marginal instances) होते हैं उनका वर्गीकरण नहीं होता।

§११. *वर्गीकरण से लाभ* (Utility)

वर्गीकरण का प्रयोग, व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक, दोनों ही क्षेत्रों में होता है। मनुष्य की ही नहीं अपितु पशुओं की भी यह सहज प्रवृत्ति है। चूहों और बिल्लियों में भी दूसरे जाति की पशुओं को पहचानने की शक्ति रहती है अर्थात् उन्हें भी भिन्न वर्गों के भेद का ज्ञान रहता है। जब पशुओं की यह दशा है तो मनुष्य का क्या पूछना? व्यावहारिक जीवन में इसके अनेकानेक दृष्टांत मिलते हैं। विज्ञान की दृष्टि से तो इसका और भी महत्व है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:—

(i) इसके द्वारा प्राकृतिक पदार्थों का वास्तविक ज्ञान होता है। जब हमें पदार्थों का वास्तविक गुण और उनकी दूसरे पदार्थों से समानता का ज्ञान हो जाता है तब उन्हें किसी वर्ग में रखते हैं। इसलिए इससे हमें उन पदार्थों के वास्तविक गुण का और दूसरे पदार्थोंसे उनके सम्बन्ध का ज्ञान होता है।

(ii) इसके द्वारा घटनाओं की व्याख्या करने में आसानी होती है। अमुक घटना वा पदार्थ किस श्रेणी का है, यह ज्ञात रहने पर ही उसकी व्याख्या करना सरल है।

(iii) इससे स्मृति को सहायता मिलती है। स्फुट घटनाओं या पदार्थों को याद रखना मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है। क्या जितने मनुष्य हैं या जितने पशु हैं सबको कोई याद रख सकता है? पर वर्गीकरण हो जाने पर वर्गों को याद रखना सरल है।

(iv)वर्गीकरण से व्याख्या में सहायता मिलती है। किसी पदार्थ को उससे किसी जाने हुए पदार्थ से समानता बतला कर के ही व्याख्या की जाती है। यही वर्गीकरण है। अतः वर्गीकरण के द्वारा हम व्याख्या भी करते हैं।

§१२. *अभ्यास*

1. Explain Classification and point out its utility.

2. Point out the relation between Classification and Explanation.

3. Explain the distinction between Scientific and Popular Classification.

4. Is Classification related to Division ? Explain.

5. Explain Classification by Type, by Definition and by Series. Which of them is Scientific and why ?

6. What is the Golden rule of Classification ? Explain.

7. How is Definition the basis of Classification ? Explain.

8. What are the limits of Classification ? Explain and point out its utility.

9. Can we make a distinction between Natural and Artificial Classification ? Explain.

सोलहवाँ अध्याय

पदक्रम और नामक्रम (Terminology and Nomenclature)

§१. विषय-प्रवेश
§२. नामक्रम और पदक्रम (Nomenclature and Terminology)
§३. नामों का लौकिक (Popular) और वैज्ञानिक व्यवहार और उससे लाभ (Use)
§४. नामों के वैज्ञानिक व्यवहार की शर्तें (Conditions)
§५. शब्दों के अर्थान्तर का कारण
§६. अभ्यास

§१. *विषय-प्रवेश*

तर्कशास्त्र का मुख्य विषय सही विचारों का अध्ययन है, पर विचार का गहरा सम्बन्ध भाषा से है। अतः तर्कशास्त्र भाषा-सम्बन्धी समस्याओं का भी अध्ययन करता है। भाषा ही के माध्यम से मनुष्य विचार करता है। विचार के लिए भाषा आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अपने विचारों को याद रखने के लिए और व्यक्त करने के लिए भाषा ही एक जरिया है। भाषा ही के द्वारा विचार सम्बद्ध होते हैं और उनमें यथार्थता वा शुद्धता आती है। जटिल विचारों को भाषा ही सरल बना देता है।

भाषा उस ध्वनि को कहते हैं जो हमारे विचारों को व्यक्त करता है। शरीर के हिलाने डुलाने से जो विचार प्रकट किया जाता है वह भी भाषा ही है पर उस भाषा से यहां सम्बन्ध नहीं है। ध्वनियों से अक्षर बनते हैं जिनका संकेत कुछ चिन्हों द्वारा किया जाता है। अक्षरों के मेल से शब्द बनते हैं। शब्द भिन्न प्रकार के हैं जिनमें नाम और पद मुख्य हैं। नामों और पदों के द्वारा ही पदार्थों का तथा उनके गुणों का संकेत मिलता है। नाम और पद का महत्व परिभाषा तथा वर्गीकरण में बहुत ही अधिक है। ये तीनों क्रियाएं, नामकरण, परिभाषा और वर्गीकरण एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। परिभाषा और वर्गीकरण 'नामों' ही

के द्वारा सम्भव होते हैं और 'नामों' का अर्थ वर्गीकरण तथा परिभाषा के द्वारा ही स्पष्ट होता है। 'मनुष्य' का अर्थ क्या है, यह तभी स्पष्ट होता है जब हम जान जाएं कि यह किस वर्ग का (वर्गीकरण) है और इसका सारगुण (परिभाषा) क्या होगा।

नाम भी दो प्रकार के होते हैं—व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) और जाति-नाम (Class Names)। यहां जाति नामों से ही सम्बन्ध है।

§२. *नामक्रम और पदक्रम* (Nomenclature and Terminology)

नामों की दो व्यवस्था (system) है—नामक्रम और पदक्रम। नामक्रम और पदक्रम दोनों ही नामों (names) की व्यवस्था (system) को कहा जाता है। पदार्थों या पदार्थों के जातियों या वर्गों के नामों को नामक्रम कहा जाता है; जैसे, Tale, Gypsum, Mica, Suartz, Topaz ये minerals के भिन्न उपवर्गों का नाम है। यह Minerology का नामक्रम (Nomenclature) हुआ। पदार्थों के या जातियों के गुणों का या उसके भिन्न अंगों का या उसकी क्रिया के नामों को पदक्रम (Terminology) कहा जाता है। भिन्न जाति के पशुओं और वनस्पतियों के नामों को नामक्रम कहा जायगा पर पशुओं के अंगों या उनकी क्रियाओं के या उनके गुणों के नामों को पदक्रम कहा जायगा। पशुओं के भिन्न अंगों के नाम या उनके भिन्न गुणों का नाम या उनकी क्रियाओं का नाम ही उसकी पदक्रम (Teminology) होगी। पशुओं में सिर, पसली, दिल नस तथा हड्डी, इत्यादि, पौधों में जड़, धड़, फुनगी इत्यादि, ये सब प्राणीविज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान के पदक्रम (Terminology) हैं। कभी कभी Nomenclature और Terminology वृहत अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं और किसी भी जाति के व्यक्तियों या गुणों या क्रियाओं को दोनों ही कहा जाता है।

§३. *नामों का लौकिक* (Popular) *और वैज्ञानिक व्यवहार और उससे लाभ*

अपने दैनिक जीवन में मनुष्य नामों को अनिश्चित तथा अस्पष्ट अर्थ में व्यवहार करता है। अधिकतर जहां जिस नाम का व्यवहार होना चाहिए वहां अनुपयुक्त नामों का व्यवहार किया जाता है। दैनिक बोलचाल में अच्छा श्रेयस्कर, सुन्दर, भला इत्यादि एक ही अर्थ में व्यवहार किए जाते हैं हालांकि सब का निश्चित अर्थ है और उनमें भेद भी है। नामों के व्यवहार में इस

प्रकार की गड़बड़ी दो तरह से होती है—विशेषीकरण (specialization) के द्वारा या सामान्यीकरण (generalisation) के द्वारा। कभी कभी नामों का जो निश्चित अर्थ होता है उसमें नए गुण जोड़ दिए जाते हैं और उसका व्यवहार उस नए अर्थ में होने लगता है। यह हुआ विशेषीकरण। (specialisation)। इसी प्रकार कभी-कभी नामों का जो अर्थ होता है और उनसे जिस गुण का बोध होता है उससे कुछ गुणों को छोड़ दिया जाता है। यह हुआ सामान्यीकरण (generalisation)। इसके दो कारण हैं दैनिक जीवन की समस्याएं और नई परिस्थितियां। दैनिक जीवन में मनुष्य को इतनी समस्याएं हैं कि नामों का उपयुक्त अर्थ जानने की कठिनाई वह नहीं उठाना चाहता। नामों को थोड़े बदले हुए अर्थ में व्यवहार करने से भी उसका काम चल जाता है। दूसरे, मनुष्य को हर वक्त नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और उसमें जाने हुए नामों को ही थोड़े परिवर्तित अर्थ में वह व्यवहार कर लेता है।

विज्ञान में नामों का व्यवहार निश्चित अर्थ में होता है। विज्ञान का लक्ष्य है निश्चित ज्ञान प्रदान करना। अतः उसमें नामों का अर्थ निश्चित कर दिया जाता है और उनसे उन्हीं गुणों का संकेत मिलता है जिनके लिए वे व्यवहृत हैं। इसलिए विज्ञान में नाम संकेतात्मक (suggestive) होते हैं। एक प्रकार के वस्तुओं के लिए एक ही नाम का प्रयोग होता है। इस तरह नामों की संख्या वहां सीमित कर दी जाती है और मनुष्य की स्मृति पर अधिक जोर नहीं पहुँचता। नामों की संख्या सीमित करने के लिए Binary Method या Method of Double Naming से काम लिया जाता है। इसमें दो नाम मिलाकर एक नाम बनाया जाता है। एक नाम रहता है उस बड़ी जाति का जिसका वह पदार्थ एक प्रकार है और दूसरा उस गुण का जो उस पदार्थ को उसकी बड़ी जाति से पृथक करता है। उदाहरणार्थ, Germaniumजाति के तेरह उपजाति हैं जिनका नाम है Germanium nodosum, Germanium Sylvatisum, इत्यादि। यहां एक शब्द बड़ी जाति का संकेत करता है और दूसरा उस गुण का जो उस जाति से उसके उपजाति का भेद बतलाता है। इसी प्रकार chlorine, bromine और iodine के भिन्न सम्मिश्रन का नाम chlorides, bromides और Iodides है। वनस्पति विज्ञान (Botany) प्राणी विज्ञान (Zoology), रसा-

यन शास्त्र (Chemistry), इत्यादि में अधिकतर इस विधि का प्रयोग होता है। इस प्रकार नामों की संख्या सीमित हो जाती है और उन्हें याद रखना सरल हो जाता है।

नामों को निश्चित अर्थ में व्यवहार करने से अनेक लाभ है। विज्ञान में सफलता के लिए तो यह अत्यावश्यक है। नामों के वैज्ञानिक प्रयोग से दो लाभ है, व्यवहित (Indireet) और अव्यवहित (Direct)।

नामों के वैज्ञानिक प्रयोग से व्यवहित (Indirect) लाभ तो यह है कि ये विचार करने के माध्यम हैं। नामों के बिना विचार करना सम्भव ही नहीं है। दूसरे, सामान्य नाम (General Names) सरल विचारों को जटिल विचारों से मिलाकर विचार की क्रिया को सरल बना देते हैं जिस प्रकार अलग-अलग पृष्टों को पुस्तक रूप में बांध दिया जाता है। उदाहरणार्थ, आदमियत। यह नाम अनेक गुणों का बोध कराता है और यदि यह नाम नहीं रहता तो अनेक गुणों को अलग-अलग विचारना पड़ता। इसके अतिरिक्त विचार नाम ही के रूप में याद रहते हैं और वे ही विचारों को व्यक्त करते हैं। इसलिए अपने विचारों को दूसरों के सामने प्रकट करने में नाम ही सहायक है।

इससे अव्यवहित (Direct) लाभ भी है। सामान्य वाक्यों का निरूपण करने में नाम ही सहायक है। संसार का हर पदार्थ एक दूसरे से भिन्न है पर प्रत्येक में समता भी है। हर मनुष्य एक दूसरे से भिन्न है पर तुलना और विश्लेषण करने पर उसमें कुछ सामान्य गुण भी मिलते हैं जो उसे एक जाति का बोध कराते हैं और दूसरे पदार्थों से अलग करते हैं। इसीलिए उनमें गुण-विशेष में भेद होने पर भी उनको एक नाम 'मनुष्य' से पुकारा जाता है। इसी प्रकार प्रकृति के नियम हैं। ऐसी दशा में यदि नाम ही नहीं होता तो मनुष्य के बारे में विचार करना सम्भव नहीं होता और विज्ञान द्वारा स्थापित नियम सामान्य वाक्य के रूप में रचे नहीं जाते।

§४. *नामों के वैज्ञानिक व्यवहार की शर्तें* (Conditions of Scientific Language or General Naming)

सामान्य नाम केवल विचार के लिए ही नहीं अपितु सामान्य वाक्यों का निरूपण करने के लिए आवश्यक है। अतः समस्या है कि किन शर्तों के पालन

करने से ऐसे नाम विज्ञान के क्षेत्र में लाभदायक होंगे अर्थात् विज्ञान में किस प्रकार की नाम-व्यवस्था होनी चाहिए ?

विज्ञान में भाषा-सम्बन्धी अर्थात् नामकरण के लिए दो शर्तों का पालन करना चाहिए। (i) प्रत्येक मुख्य अर्थ के लिए नाम होना आवश्यक है। (ii)प्रत्येक सामन्य नाम का निश्चित अर्थ होना चाहिए।

(i) प्रत्येक मुख्य अर्थ के लिये नाम होना चाहिए। ऐसा एक भी अर्थ नहीं होना चाहिए जिसका कि कोई उपयुक्त नाम नहीं हो। दूसरे शब्दों में प्रत्येक विज्ञान के लिये अपना निश्चित नामक्रम (Nomenclature) और पद-क्रम (Terminology) होना आवश्यक है। रसायनशास्त्र में भिन्न अमिश्रित रसायन (elements) और मिश्रित रसायन (compounds) के नाम हैं। प्राणीविज्ञान (Zoology) में पशुओं के प्रत्येक जाति का नाम है। वनस्पति विज्ञान (Botany) में भिन्न प्रकार के पौधों का अपना-अपना नाम है। यह हुआ विज्ञानों का नामक्रम (Nomenclature)। इसके साथ-साथ विज्ञानों का अपना पदक्रम (Terminology) होना चाहिए। पदार्थों के अंगों का, उसके गुणों का और उनकी क्रियायों का अपना-अपना नाम होना चाहिए।

(ii) प्रत्येक सामान्य नाम का निश्चित अर्थ होना चाहिये। यदि अर्थ निश्चित नहीं हो तो बहुत ही कठिनाई होगी। इसलिए विज्ञान में कभी कभी नया नामकरण होता है। पर विज्ञान भी प्रचलित नामों का व्यवहार करता है। इस दशा में उस व्यवहृत नाम का जिस अर्थ में व्यवहार हुआ है वह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में, नामों का गुणवाचकता (connotation) जान लेना आवश्यक है। परिभाषा में भी नामों के गुणवाचकता को ही व्यक्त करना पड़ता है; अतः नामकरण(Naming)और परिभाषा सम्बन्धित हैं।

इसके अतिरिक्त यह ध्यान रखना चाहिए कि नामों का सामान्यीकरण (generalisation) या विशेषीकरण (specialisation) नहीं हो। ऐसा होने से नामों का अर्थ ही बदल जाता है और उसे समझने में भूल हो जाती है। जिस शब्द से किसी नाम की उत्पत्ति हुई है उसके अर्थ से उस नाम का अर्थ निश्चित करने में आसानी होती है। इस तरह नामों का वास्तविक अर्थ भी पता चल जाता है।

§५. *शब्दों के अर्थांतर का कारण*

प्रचलित शब्दों का अर्थ बदलता रहता है। एक ही शब्द का किसी काल में अमुक अर्थ रहता है और दूसरे काल में उसका दूसरा अर्थ हो जाता है। इस तरह शब्दों के अर्थान्तर का दो मुख्य कारण है, पहला आकस्मिक गुण-वाचकता (accidental connotation) और दूसरा, शब्दों का सकर्मक प्रयोग (Transitive application of words)।

(i) आकस्मिक गुणवाचकता (Accidental connotation)।

कभी कभी जिस शब्द से किसी वस्तु का बोध होता है उसमें कुछ आकस्मिक गुण मिलते हैं जो उस शब्द का अर्थ बना लिया जाता है। देहात के रहनेवाले को देहाती कहा जाता है पर देहात के लोगों को पढ़ने लिखने की सुविधा नहीं रहने के कारण उनमें से कुछ मूर्ख भी होते हैं। मूर्खता उनका आकस्मिक गुण है। अतः अब कुछ लोग 'देहाती' शब्द का अर्थ मूर्ख समझते हैं। इसी तरह देहात के रहनेवालों को अंगरेजी में पहले Pagan कहा जाता था। पर वे अधिकतर धर्म तथा दर्शन से अनभिज्ञ रहते थे इसलिए अब Pagan उसे कहा जाता है जो क्रिस्तान नहीं हो। इस प्रकार किसी नाम के आकस्मिक गुणवाच-कता को भी उसका अर्थ मान लेने से शब्दों का अर्थ बदल जाता है।

(ii) शब्दों का सकर्मक प्रयोग (Transitive application of words)।

मनुष्य नित्य दिन नई परिस्थितियों का सामना करता है। कभी कभी उसे बिल्कुल नए-नए पदार्थ वा नई परिस्थिति का ज्ञान होता है। ऐसी दशा में वह उसके लिए नया शब्द नहीं बनाना चाहता बल्कि समान पदार्थ के प्रचलित नामों का ही व्यवहार करता है। Oil (तेल) पहले केवल जैतून के तेल के लिए ही इस्तमाल होता था पर जैसे-जैसे और तेलों का आविष्कार हुआ उन्हें भी oil (तेल) ही कहा जाने लगा। अब oil से हर प्रकार के तेल का बोध होता है।

अर्थान्तर शब्दों के सामान्यीकरण (generalisation) और विशेषीकरण (specialisation) के कारण भी होता है। इसकी व्याख्या पहले कर दी गई है।

§६. *अभ्यास*

1. Point out the importance of Language.

2. How Naming is related to Definition and Classification ? Point out the distinction between Nomenclature and Terminology.

3. Explain and illustrate the use of Terminology and Nomenclature. Are they necessary for Science ?

4. 'The Popular use of terms is generally vague and uncertain. ' Why ? How can this difficulty be remedied ?

5. What is the distinction between the Popular and Scientific use of words ? Explain.

6. What is meant by Generalisation and Specialisation of Terms ? How do they change the meaning of Terms ?

7. What are the conditions of Scientific language ? Explain.

8. What is meant by Double Naming or Binary Method? What is its Scientific importance ?

9. How Variations in meaning of words occur ? Can popular Names be used for Scientific purposes ?Explain.

10. Explain and illustrate the meaning of Transitive application of words.

सत्रहवाँ अध्याय

तर्काभास (Fallacy)

§१. विषय-प्रवेश और तर्काभास का वर्गीकरण

§२. अनुमान-सम्बन्धी भूलें (Inferential fallacy)

(i) कारण-सम्बन्धी भूल (Fallacy of causation)

(ii) Analogy में भूल

(iii) सामान्यीकरण की भूल (Illicit generalisation)

§३. अनुमान-सम्बन्धी क्रियाओं में भूल (Non-inferential fallacy)

(i) निरीक्षण-सम्बन्धी भूल (Fallacy of observation)

(ii) वर्गीकरण की भूल

(iii) व्याख्या, परिभाषा, नामकरण, इत्यादि में भूल

§४. सिद्धि-सम्बन्धी-भूल (Extra-logical fallacy)

(i) प्रतिवाद का प्रज्ञान (Ignoratio Elenchi)

(ii) आत्माश्रय (Petitio Principii)

(iii) बहु-प्रश्नात्मक दोष (Fallacy of many questions)

(rv) अकारण को कारण मानना (Non causa pro causa)

(v) असम्बद्ध (Non-Sequitur)

§५. अभ्यास

§१. *विषय-प्रवेश और तर्काभाष का वर्गीकरण*

विचारों में भूल करना मनुष्य के लिये स्वाभाविक है। कभी तो जानबूझ कर दूसरों को भ्रम में रखने के लिये और कभी अज्ञानता के कारण भूल हो जाया करती है। जानबूझकर या अज्ञानता के कारण जब विचार करने में भूल हो जाती है तो उसे तर्काभास (fallacy) कहते हैं।

अब सवाल यह उठता है कि भूल होती है कैसे?

(i) तर्कशास्त्र का सम्बन्ध अनुमान से है। उसमें इसके निमम बताये गए

हैं। इन नियमों का उल्लंघन होने से अनुमान भी अशुद्ध हो जाता है। इस प्रकार भूल का कारण हुआ नियमों का उल्लंघन। व्याप्ति-विधि द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध निश्चित करके ही कोई नियम स्थापित किया जाता है। जहां यह सम्बन्ध नहीं रहे अथवा जहां इसे निश्चित करने में दोष हो जाय वहां अगर इसका अनुमान किया जाय तो वह दोषपूर्ण होगा। इसी प्रकार Analogy और सामान्यीकरण (generalisation) के नियमों का व्याघात होने से अनुमान अशुद्ध हो जाता है।

(ii) केवल अनुमान ही नहीं अपितु उससे सम्बन्धित जितनी क्रियाएँ हैं, उनका भी दोष-रहित होना आवश्यक है। निरीक्षण (Observation), वर्गीकरण (Classification), विभाजन (Division), व्याख्या (Explanation), इत्यादि, अनुमान से सम्बन्धित क्रियाएँ हैं। यदि इनमें दोष रहे तो अनुमान भी दोषपूर्ण हो जायगा। ये क्रियाएँ स्वयं तो अनुमान नहीं हैं, पर उनके द्वारा निष्कर्ष निकाला जाता है। इसलिये इनके दोष भी तर्काभास कहलाते हैं।

(iii) इनके अतिरिक्त अन्य हजार तरीकों से भी तर्क करने में मनुष्य भूल करता है। किसी बात को सिद्ध करने में ही देख लिजिए। कभी सिद्ध करना रहता है कुछ और सिद्ध हो जाता है कुछ और। कभी-कभी तो सिद्ध करने के बजाय उसी को ही दूसरे शब्दों में दुहरा दिया जाता है। इनमें अनुमान के किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता, न अनुमान के किसी सम्बन्धी क्रिया में ही भूल होती है, फिर भी तर्क दोषपूर्ण हो जाता है। ऐसे दोष अनुमान के क्षेत्र के बाहर हैं पर उनसे तर्कभास होता है।

इसलिए अगर भूलों का वर्गीकरण किया जाय तो वे तीन प्रकार की होंगी—

(i) अनुमान के नियमों का उल्लंघन करने से—अनुमान सम्बन्धी-भूलें (Inferential fallacies)। आगमन में ऐसी भूलें तीन प्रकार की हैं—(क) कारण-सम्बन्धी भूलें (Fallacies of Causation) (ख) Analogy सम्बन्धी भूलें (ग) सामान्यीकरण की भूलें (illicit generalisation)

(ii) अनुमान के सम्बन्धी-क्रियाओं में भूलें (fallacies in non-inferential processes)—आगमन में ऐसी भूलें भी अनेक हैं:—निरीक्षण-सम्बन्धी भूलें (fallacies of observation), वर्गीकरण की भूलें (fallacies

in classification), व्याख्या में भूलें (fallacies in explanation) ।

(iii) सिद्धि-सम्बन्धी-भूलें (Extra-Logical Fallacies)

(क) प्रतिवाद का प्रज्ञान (Ignoratio Elenchi)

(ख) आत्माश्रय (Petitio Principii)

(ग) बहुप्रश्नात्मक दोष (Fallacy of many Questions)

(घ) अकारण को कारण मानना (Non Causa Pro Causa)

(ङ) असम्बद्ध (Non-Sequitur)

§२. *अनुमान-सम्बन्धी-भूलें* (Inferential Fallacies)

(क) कारण सम्बन्धी भूलें (Fallacies of Causation)

किन्हीं दो घटनाओं में वास्तविक कार्य-कारण सम्बन्ध न होने पर भी यदि किसी प्रकार ऐसा अनुमान कर लिया जाय तो अनुमान में भूल होती है। यह भूल कई तरीकों से होती है।

(१) कारण किसी घटना का होता है। घटनाएँ वस्तुवाचक (concrete) होती हैं। इसलिए यदि किसी ऐसे विषय का कारण बतलाया जाय जिसकी वस्तुस्थिति न हो तो कारण दोषपूर्ण हो जाता है, जैसे, दो वृत्तों (circles) का एक विन्दु पर मिलने का कारण बताना। वृत्त वस्तुवाचक (concrete) नहीं है, इसलिये यह दोष होता है।

(२) अनुभवातीत(transcendental)विषयों का कारण बताना भी कारण-दोष ही है। तर्कशास्त्र का क्षेत्र अनुभव के क्षेत्र तक ही सीमित है; इसलिए तर्क के आधार पर अनुभव के परे विषयों का कारण बताना अपने क्षेत्र के बाहर जाना होता है। संसार को कार्य (effect) मानकर ईश्वर को इसका कारण बताना, तर्क की दृष्टि से अनुचित है। यह विषय दर्शन का है।

(३)केवल सहचार(co-existence) से कभी-कभी कार्य-कारण सम्बन्ध का अनुमान कर लिया जाता है। परीक्षा में यदि काला कलम व्यवहार करते हैं और सफल हो जाते हैं तो उस कलम को ही सफल होने का कारण समझने लगते हैं। वास्तव में यह सम्बन्ध तो आकस्मिक है।

(४) इसके विपरीत कार्य-कारण सम्बन्ध को सहचार समझने की भी भूल

कारण-दोष है। बड़ी-बड़ी नदियों के किनारे बड़े-बड़े शहरों की स्थिति कुछ लोग आकस्मिक मानते हैं। लेकिन वास्तव में यह बात नहीं है।

(५) केवल आनुपूर्वी से कार्य-कारण सम्बन्ध का अनुमान नहीं करना चाहिए। दो घटनाओं में नित्यता होने से ही यह सम्बन्ध होता है। कोई वस्तु केवल दूसरे के पहले होने से ही उसका कारण नहीं कही जा सकती है। यात्रा में खाली घड़ा मिल जाय और यदि कार्य सिद्ध न हो तो खाली घड़ा को कार्य की विफलता का कारण बतलाना भूल है। इसे ही Post hoc ergo propter hoc (इसके बाद इसलिए इसी के कारण) दोष कहते हैं।

(६) सह-परिणाम (Co-effects) को कार्य और कारण समझना भी दोषपूर्ण है। दिन को रात का कारण और रात को दिन का कारण समझना इसका उदाहरण है। वास्तव में दोनों एक ही कारण के परिणाम हैं। उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है।

(७) कारण में बहुत सी बातें होती है। सभी शर्तों (conditions) के योग को कारण कहते हैं। उनमें से किसी एक को पूरा कारण मान लेना भूल है। घड़ी में चाभी रहना घड़ी चलने के लिये जरूरी है पर उसको कारण नहीं कहा जा सकता। घड़ी चलने की और भी शर्तें हैं। सबों के संयोग से घड़ी चलती है इसलिये चाभी पूरा रहना ही घड़ी के चलने का कारण मानना दोषपूर्ण हुआ।

(८) जिस प्रकार कारण में बहुत सी बातें होती हैं उसी प्रकार कार्य (effect) में भी बहुत सी बातें होती हैं। उनमें से केवल किसी एक ही को कार्य बतलाना भी भूल है। अखबारों पर प्रतिबन्ध लगा देने से खबरें फैलती नहीं हैं। लेकिन केवल यही उसका परिणाम नहीं है। जनता में असन्तोष, सरकार का विरोध भी उसके परिणाम हैं।

(९) विपरीत उदाहरणों को नहीं विचार करने से कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने में भूल होती है। विपरीत उदाहरणों के रहने पर कोई नियम व्यापक (general) तथा शुद्ध नहीं कहा जा सकता है।

(१०) तात्कालिक (immediate) घटनाएँ ही कारण होती हैं। बहुत काल पहले यदि बूंट खाया हो और अब अनपच हो तो बूंट खाना अनपच का कारण मानना भूल है।

इसी प्रकार यदि किसी घटना का दूसरे से दूर का सम्बन्ध हो तो उसको कारण नहीं मानना चाहिए। यदि जोरों की वर्षा होने से दीवाल टूट जाय और कोई चँप जाय तो वर्षा को पूरा कारण मानना भूल है।

(११) बहुकारणवाद अर्थात् किसी घटना का भिन्न-भिन्न कारण मानना कारण-दोष है। इसकी व्याख्या पहले ही कर दी गई है।

(१२) आवश्यकता से अधिक कारण या कार्य के विषय में छान-बीन करना भी भूल है। किसी भी विषय का क्षेत्र संकुचित रहता है। उस क्षेत्र में यदि कारणों का पता लगाना है तो उसी क्षेत्र की छानबीन होनी चाहिए।

(१३) कभी-कभी कारण और कार्य इतने सन्निकट होते हैं कि कार्य को कारण या कारण को कार्य समझ लेने की भूल की सम्भावना रहती है।

(ख) Analogy की भूलों की व्याख्या हो चुकी है।

(ग) सामान्यीकरण की भूलें (Illicit Generalisation)

एक दो उदाहरणों को देख कर सब के विषय में अनुमान कर लेना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृति है। कुछ के आधार पर सब के विषय में अनुमान अर्थात् सामान्यीकरण तभी शुद्ध होता है जब कार्य-कारण सम्बन्ध पर यह आश्रित हो। पर साधारणत: कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करके सामान्यीकरण नहीं किया जाता है। किसी विशेष क्षेत्र में एक दो बार कोई बात पाकर ही सामान्यीकरण कर लेने पर भूल हो जाती है। अत: सरल गणनात्मक आगमन (Induction per simple Enumeration) के निष्कर्षों में यह भूल होने की सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ, सभी Socialists लाल टोपी पहनते हैं वा सभी हंस उजले होते हैं, ये निष्कर्ष अवैज्ञानिक आगमन के उदाहरण हैं। इनमें Socialists और लाल टोपी वा हंस और उजलापन में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है। यदि इसे निश्चित मान लिया जाय तो यह सामान्यीकरण की एक भूल होगी। Miss Mayo की Mother India में ऐसे ही भूलों की भरमार है। किसी विशेष स्थान में अशिक्षित, अन्धविश्वासी तथा असभ्य लोगों को देखकर लेखिका ने सम्पूर्ण देशवासियों को वैसा ही वर्णन किया है। ऐसा अनुमान करना उनकी भूल हैं।

इसके अतिरिक्त जहां केवल निरीक्षण के आधार पर सामान्यीकरण की

जाती है वहां भी भूल होने की सम्भावना रहती है। इसलिए Method of Agreement या वैसी विधियों के जो उस Method के रूपान्तर हैं, आधार पर आगमन निश्चित नहीं होता। पर जब हम उन्हें निश्चित मानने लगते हैं तो सामान्यीकरण का दोष हो जाता है।

अनुभवजन्य नियम (Empirical Laws) सीमित क्षेत्रों में ही लागू होते हैं। उनका क्षेत्र व्यापक नहीं होता। किसी विशेष परिस्थिति में ही वे नियम सत्य होते हैं। यदि उन नियमों को व्यापक मान लिया जाय तो भूल हो जाती है। यह भी सामान्यीकरण की भूल है। उदाहरणार्थ, अभी तक स्त्रियां पुरूषों से आगे नहीं बढ़ी हैं इसलिये वे अवश्य ही पुरूषों से हीन हैं। यह अनुमान गलत है क्योंकि 'अभी तक स्त्रियां पुरुषों से आगे नहीं बढ़ी हैं' यह एक अनुभवजन्य सामान्यीकरण है। इससे यह व्यापक और निश्चित निष्कर्ष निकाल लेना कि 'स्त्रियां पुरुषों से अवश्य हीन हैं' गलत है।

§३. *अनुमान-सम्बन्धी-क्रियाओं में भूल* (Non-inferential Fallacies)

इन भूलों की व्याख्या पहले ही कर दी गई है।

§४. *सिद्धि-सम्बन्धी भूल*

(क) प्रतिवाद का प्रज्ञान (Ignoratio Elenchi)

किसी दलील में एक पक्ष में होता है जो कोई बात सिद्ध करता है और एक प्रतिपक्षी होता है जो उस बात का खण्डन करता है। जिस बात को सिद्ध किया जाता है उसे 'वाद' कहते हैं और जिन युक्तियों द्वारा उस बात का खण्डन किया जाता है उन्हें प्रतिवाद कहते हैं। किसी बात का उल्टा अर्थात् विरोधात्मक वाक्य सिद्ध कर देने से उसका खण्डन होता है। यदि वास्तव में हम विरोधात्मक वाक्य न सिद्ध करें पर अज्ञानता के कारण किसी दूसरे वाक्य को ही उसका उल्टा समझ लें तो उसे प्रतिवाद का प्रज्ञान कहेंगे। वास्तव में प्रतिवाद न हो पर अज्ञानतावश ऐसा समझ लें तो दोष आ जाता है। अरस्तु के अनुसार यही 'प्रतिवाद' के प्रज्ञान का अर्थ है।

वर्तमान काल के तार्किकों ने किसी प्रकार के विषय से भिन्न तर्क को प्रतिवाद का प्रज्ञान माना है। किसी बात का प्रतिवाद करना रहे पर उसका उल्टी-सीधी बात से उत्तर दें या जिसे सिद्ध करना हो उसे छोड़ कर कोई दूसरी बात को

सिद्ध कर दें तब यह दोष होता है। न्यायालयों में, धर्म-चर्चाओं में समाज-सुधारक संस्थाओं में और राजनीति के क्षेत्रों में इस प्रकार की भूलें बहुत मिलती हैं। प्रायः राजनीति के क्षेत्र में किसी नीति का दोष न बतलाकर उस नीति के पण्डितों की बुराई का उल्लेख ही किया जाता है।

इस दोष के बहुत से रूप हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य का वर्णन किया जाता है।

(i) व्यक्तिगत दोष-दर्शन तर्क (Argumentum ad hominem)—युक्ति का उत्तर न देकर युक्ति के देने वाले के आचरण, रीति या व्यवहार पर दोष लगाने को व्यक्तिगत दोष-दर्शन न्याय कहते हैं। जब वादी के युक्तियों का उत्तर नहीं सूझता तो उसको गाली देना आरम्भ करते हैं। किसी बात का खण्डन होता है उस उक्ति का उत्तर देने से। आजकल राजनीति में एक मत मानने वाले दूसरे की नीति का इसी प्रकार खण्डन करते हैं। अमुक दल के अमुक अमुक आदमी चरित्रहीन हैं, दूसरे चोर हैं, इत्यादि, इसलिए वह दल खराब है। इस उक्ति से उस दल की नीति का खण्डन नहीं होता है। कभी-कभी कोई अच्छी सलाह देता है तो हम कहते हैं 'अच्छा आप भी बोलने लगे'। ऐसा कहने से उसकी बातों का उत्तर नहीं होता है।

(ii) समाजोत्तेजन तर्क (Argumentum ad populum)—तर्क के स्थान पर यदि ईर्षा, द्वेष या अभिमान के सहारे अपनी उक्ति पुष्ट करें तो यह दोष होता है। समाज सुधारकों तथा धर्म-पंडितों में यह दोष अधिकतर पाया जाता है। जनता को तर्क द्वारा नहीं अपितु उसे उत्तेजित करके वक्ताओं को अपनी बातों की पुष्टि करते हुए अधिकतर देखा जाता है।

(ii) भावोत्तेजन तर्क (Argumentum ad vercundium)—तर्क के स्थान पर यदि भावों को उत्तेजित करके आप्त-वचन से कोई बात पुष्ट की जाय तो यह दोष होता है। यदि ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण देना है तो इस तर्क से कि वेद सबसे पुराना ग्रंथ है, ईश्वर ने स्वयं उसका निर्माण किया है, हमारे वेद की तरह संसार में दूसरा कोई ग्रंथ ही नहीं है, हमारी संस्कृति तथा सभ्यता का वह गौरव है, उसमें ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण दिया हुआ है, इसलिए ईश्वर की स्थिति अवश्य है, कुछ सिद्ध नहीं होता।

(iv) अज्ञानमूलक तर्क (Argumentum ad ignoratium)—यदि किसी

बात को सिद्ध करने में अज्ञानता के कारण कोई असमर्थ हो तो उससे उस बात का प्रतिवाद नहीं हो जाता। खण्डन करने के लिए भी प्रमाण की आवश्यकता होती है। यदि अज्ञानता के कारण ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रमाण मैं नहीं दे सका तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है। लेकिन बहुधा इसी प्रकार का तर्क किया जाता है। किसी बात को सिद्ध करने का भार वादी पर फेंक दिया जाता है। सिद्ध करने में असमर्थ होने पर उसका प्रतिवाद कर दिया जाता है। वास्तव में उसकी अज्ञानता से फायदा उठाया जाता है। इसे ही अज्ञानमूलक न्याय कहते हैं।

(v) डण्डे का वा शारीरिक तर्क (Argumentum ad baculum)—जब किसी प्रकार का तर्क उपयोगी सिद्ध नहीं होता है तब कभी-कभी अपने बल का प्रयोग किया जाता है। मार-पीट कर वादी को भगा दिया जाता है या अपनी बात उससे मनवा ली जाती है। इसे ही डण्डे का न्याय कहते हैं।

इस दोष के और भी विभिन्न रूप हैं पर उनका अधिक महत्व नहीं है। एकहै Argumentum ad scholum अर्थात् अपने ज्ञान से वादी को उत्तर देने में लाभ उठाना। इसमें एक वाद का दूसरे वादों से विरोध बताकर सिद्ध किया जाता है कि उनमें से कोई भी शुद्ध नहीं है। इस प्रकार एक दूसरा है 'आक्षेप दोष (Fallacy of objection)'।

(ख) आत्माश्रय (Petitio principii)

जब कोई बात अपने ही आधार पर सिद्ध किया जाय तब यह दोष होता है। किसी बात को सिद्ध करने के लिये प्रमाण की आवश्यकता होती है और प्रमाण उससे भिन्न होता है। यदि उसी बात को किसी दूसरे रूप में आधार मान लिया जाय तो वास्तव में इससे कुछ सिद्ध नहीं होता बल्कि सिद्ध करने के बजाय उसी को दूसरे शब्दों में दुहराना हुआ। उदाहरणार्थ, झूठ बोलना खराब है क्योंकि यह पाप है, शीशे के आरपार देख सकते हैं क्योंकि यह पारदर्शी है, इत्यादि। यहां सिद्ध करना है कि झूठ बोलना खराब है या शीशे के आरपार देख सकते हैं। इनके लिये यह प्रमाण देना कि झूठ बोलना पाप है या शीशा पारदर्शी है विषय को अस्पष्ट रखना है। पाप का तो अर्थ ही है खराब या पारदर्शी का मतलब ही है जिससे आरपार देखा जा सके, तो सिद्ध क्या हुआ? यहां प्रश्न

ही को दूसरे शब्दों में दुहरा दिया गया है। इसे ही आत्माश्रय कहते हैं।

इसीका जटिल रूप चक्रक तर्क है (Argument in a circle) इसमें किसी बात को सिद्ध करने के लिये कोई प्रमाण मान लिया जाता है। इस प्रकार तर्क का एक चक्र (circle) बन जाता है। ईश्वर की स्थिति है क्योंकि वेदों में ऐसा लिखा हुआ है और वेद की बातें प्रामाणिक हैं क्योंकि उसे ईश्वर ने बनाया है। मिल का व्याप्ति-चक्र ऐसे ही दोषों का उदाहरण है। अरस्तु के अनुसार यह दोष पांच प्रकार से आता है।

(i) जिसे सिद्ध करना है उसे उसी रूप में मान लेना। यह दोष प्रायः दूसरे रूप में एक ही शब्द का व्यवहार करने से आता है। जमींदारी प्रथा पुरानी है क्योंकि यह प्रणाली पुरातन है। इसे Hysteron Proteron भी कहते हैं।

(ii) किसी विशेष वाक्य को सिद्ध करने के लिये उसे किसी नियम के अन्तर्गत करना जो स्वयं उससे सिद्ध हो। वह दुराचारी है क्योंकि सभी मिथ्याभाषी दुराचारी होते हैं और वह मिथ्याभाषी है। यह नियम तो विशेष मनुष्य, जो मिथ्याभाषी हैं, उनकी परीक्षा के उपरांत ही सिद्ध हो सकता है।

(iii) किसी नियम को सिद्ध करने के लिए विशेष बातों को मान लेना जो स्वयं उस नियम के अन्तर्गत हों। सभी मालदह आम मीठे हैं क्योंकि यह मालदह आम मीठा है।

(iv) किसी नियम को सिद्ध करने के लिये उसका विश्लेषण करके उन अंगों (parts) को मान लेना। साल में दिन कभी बड़ा होता है कभी छोटा क्योंकि गर्मी में दिन बड़ा होता है और जाड़े में छोटा। यह पहले दोष का एक प्रकार है।

(v) किसी वाक्य को सिद्ध करने के लिये उसके विपरीत सम्बन्ध वाले वाक्य को मान लेना। पटना हिमालय के दक्षिण है क्योंकि हिमालय पटना के उत्तर है। श्याम राम का पुत्र है क्योंकि राम श्याम का पिता है।

सारांश है कि किसी बात को, जिसे स्वयं प्रमाण की आवश्यकता है, प्रमाण स्वरूप मान लेने पर ये दोष आते हैं।

(ग) बहु-प्रश्नात्मक दोष (Fallacy of Many Questions)

कभी-कभी एक ही प्रश्न में बहुत से सम्बन्धित प्रश्न छिपे रहते हैं। क्या तुमने झूठ बोलना छोड़ दिया है? इसमें यह मान लिया गया है कि तुम झूठ

बोलते थे। पहले यह सवाल करना चाहिये था कि झूठ बोलते थे या नहीं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर यदि 'हाँ' या 'नहीं' में मांगा जाय तो दोष हो जाता है। यदि उत्तर 'हां' में दिया तो अर्थ होता है कि पहले तुम झूठ बोलते थे और यदि नकारात्मक उत्तर हुआ तो अर्थ होता है कि 'मैं झूठ बोलता ही नहीं था'। दूसरा उदाहरण है राम चोर है या शराबी'। इस प्रश्न में भी यह मान लिया गया है कि वह चोर है या शराबी है। ऐसे दोष इसलिए होते हैं कि एक ही प्रश्न में बहुत से प्रश्न रहते हैं जिनका बहुत ही संक्षेप में हम उत्तर चाहते हैं। इसलिए इसे बहु-प्रश्नात्मक दोष कहा जाता है।

(घ) अकारण को कारण मानना (Non Causa Pro Causa)

किसी बात को सिद्ध करने के लिए यदि कोई ऐसा प्रमाण दे जिससे वास्तव में उस बात का कोई सम्बन्ध नहीं हो तो यह दोष होता है। कभी-कभी तर्क में किसी बात को सिद्ध करने की या उसे खण्डित करने की आवश्यकता होती है। सिद्ध करने के लिये या खंडन करने के लिए कोई प्रमाण दिया जाता है। पर कभी-कभी उस प्रमाण का कोई भी लगाव उस बात से नहीं रहता जिसे हम सिद्ध करना या खंडित करना चाहते हैं। वास्तव में यह दोष निगमनात्मक है। भारतीय तर्क के हेत्वाभास से यह मिलता जुलता है। अरस्तु ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है पर आजकल इसकी गणना कारण दोष ही में होती है।

(ङ) असम्बद्ध (Non-Sequitur)

दो बातों में आवश्यकीय सन्बन्ध न रहने पर भी एक को दूसरे के कारण बताने पर यह दोष होता है। "गाड़ी लेट आई है" इससे पता चलता है कि कहीं लाईन खराब है क्योंकि लाईन खराब रहने पर गाड़ी लेट हो जाती है। इस तर्क में दोष है। यह आवश्यक नहीं है कि गाड़ी लेट है तब लाईन ही खराब हो क्योंकि दूसरे कारणों से भी ऐसा सम्भव हो सकता है।

§५. *अभ्यास*

1. What are the fallacies connected with Causation ? Explain and illustrate.
2. Explain:—(a) Ignoratio Elenchi.
   (b) Petitio Principii.
   (c) the distinction between non-observation and mal-observation.
3. Explain the fallacies of Observation.

अठारहवाँ अध्याय

नैयायिक व्याप्ति-विधि (Nyayika Method of Induction)

§१. अनुमान और उसका आधार
§२. व्याप्ति
§३. व्याप्ति-ग्रहण के उपाय
§४. पाश्चात्य विधि और भारतीय विधि
§५. हेत्वाभास
§६. हेत्वाभास के प्रभेद
§७. अभ्यास

§१. *अनुमान और उसका आधार*

भारतीय तार्किक गौतम ने अनुमान को ज्ञान का एक मुख्य साधन बतलाया है। अनुमान शब्द दो शब्दों के योग से बना है 'अनु' और 'मान'। अनु का अर्थ है बाद में और मान का ज्ञान। अत: अनुमान का शाब्दिक अर्थ हुआ पश्चाद्ज्ञान वा बाद में ज्ञान। यदि किसी एक बात को हम जानते हों और उसीसे हमें किसी दूसरी बात का बोध हो तो वह अनुमान कहा जायगा। उदाहरणार्थ, यदि हमने देखा कि पहाड़ पर धुंआ उठ रहा है तब हमें उसीसे बोध होता है कि वहां आग भी है। यहां धुंआ का हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है पर आग को हम देखते नहीं हैं। आग का ज्ञान हमें धुंआ को देखकर प्राप्त हुआ है। धुंआ आग का चिह्न है। आग का ज्ञान अनुमान द्वारा हुआ है। इसी प्रकार अन्य ज्ञान के आधार पर किसी चिह्न द्वारा दूसरा ज्ञान प्राप्त करना अनुमान कहा जाता है।

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अनुमान में तीन वाक्यों का होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ—पर्वत पर आग है क्योंकि पर्वत पर धुंआ है और जहां धुंआ होता है वहां आग का होना आवश्यक है। इस अनुमान में पर्वत पर आग का होना सिद्ध किया गया है। ऐसा इसलिए सिद्ध होता है कि जहां-

जहां धुंआ होता है वहां-वहां आग का होना आवश्यक है। यदि यह नहीं मालूम हो तब पर्वत पर धुंआ देखकर उससे वहां आग का होना कैसे समझा जा सकता है ? अतः यह निष्कर्ष 'पर्वत पर आग है' का आधार है 'जहां-जहां धुंआ है, वहां-वहां आग भी रहती है'।

धुंआ को देखकर आग का होना तो इसलिए समझा जाता है कि धुंआ और आग के बीच अटूट सम्बन्ध है। जहां धुआ होगा आग का होना भी आवश्यक है। ऐसे सम्बन्ध को व्याप्ति-सम्बन्ध कहा जाता है। अतः अनुमान के निष्कर्ष व्याप्ति सम्बन्ध पर निर्भर रहते हैं।

अनुमान भी दो प्रकार का होता है, अपने लिए और दूसरों के लिए—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। जब अपने लिए अनुमान किया जाता है तब तो उसमें तीन ही वाक्य रहते हैं पर जब अनुमान दूसरों के लिये होती है तो उसमें पाँच वाक्य होते हैं, जिन्हें अवयव कहा जाता है। जैसे, पर्वत पर आग है—[प्रतिज्ञा] क्योंकि इसमें धुंआ है [हेतु] जहां धुंआ होती है वहां आग होती है, जैसे पाकशाला में [सोदाहरण व्याप्ति-वाक्य]-पर्वत पर धुंआ है[उपनय] इसलिए पर्वत पर आग है [निगमन] इसे पंचावयव तर्क कहा जाता है क्योंकि इसमें पांच अंग हैं। इस तर्क में भी पर्वत पर आग इसलिये अनुमान किया जाता है कि वहां धुंआ है और धुंआ और आग के बीच अटूट वा व्याप्ति सम्बन्ध है। एक दूसरा उदाहरण लें। देवदत्त मरणशील है, क्योंकि वह आदमी है और प्रत्येक आदमी मरणशील है। यहां भी देवदत्त को मरणशील इसलिये अनुमान किया जाता है कि वह आदमी है और आदमी और मरणशीलता में अटूट वा व्याप्ति-सम्बन्ध है। केवल हम यह जानें कि वह आदमी है तब उसमें मरणशीलता का अनुमान हम नहीं कर सकते। अतः निगमन (Conclusion) व्याप्ति सम्बन्ध पर ही निर्भर रहता है। वही अनुमान का आधार है।

पाश्चात्य Syllogism में भी हमने देखा है कि एक आधार-वाक्य अवश्य व्यापक (Universal) होना चाहिए अन्यथा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। इसलिए वहां भी यह समस्या है कि व्यापक-वाक्य कैसे रचे जांय ? इसी समस्या का समाधान Induction में होता है।

§२. *व्याप्ति का अर्थ*

व्याप्ति क्या है? व्याप्ति का शाब्दिक अर्थ है विशेष रूप से आप्ति अर्थात् विशेष रुप से सम्बन्ध। जहां धुंआ है वहां आग भी होगी। यह व्याप्ति-वाक्य है क्योंकि धुंआ और आग में विशेष सम्बन्ध है। दो पदार्थों के विशेष सम्बन्ध को व्याप्ति कहा जाता है पर यह विशेष सम्बन्ध क्या है? यह विशेष सम्बन्ध है दो पदार्थों का नियत साहचर्य अर्थात् सर्वदा एकके साथ दूसरे का रहना। साहचर्य का अर्थ होता है एक साथ रहना, जैसे बादल और वृष्टि। साहचर्य भी दो प्रकार से हो सकता है—एक तो कभी-कभी एक साथ रहना और दूसरे, सदा एक साथ रहना। बादल और बिजली में साहचर्य सम्बन्ध है पर जब-जब बादल होते हैं बिजली नहीं चमकती अर्थात् कभी-कभी एक की उपस्थिति दूसरे के बिना भी होती है। यह सम्बन्ध कहलाता है व्यभिचरित अर्थात् एक के अभाव में भी दूसरे का भाव होना। पर जहां-जहां धुंआ होता है वहां अग्नि होती है और अग्नि के भाव के बिना धुंआ का भाव नहीं होता है। इस सम्बन्ध को कहते हैं नियत सम्बन्ध। अतः व्याप्ति का अर्थ हुआ नियत साहचर्य अर्थात् अव्यभिचरित सम्बन्ध। जिस साहचर्य सम्बन्ध में व्यभिचार अर्थात् अपवाद नहीं हो उसे व्याप्ति कहा जाता है। धुंआ आग से कभी अलग नहीं रहता। इस नियम का अपवाद नहीं है। धुंआ केवल आग से ही होता है। यह ऐकान्तिक है। इसका आश्रय दूसरों पर नहीं है। दूसरे शब्दों में, धुंआ और किसी वस्तु पर निर्भर नहीं है। यह अनैकान्तिक नहीं है। इस प्रकार के सम्बन्ध को अविनाभाव भी कहा जाता है। अविनाभाव का अर्थ है जिसके बिना भाव न हो [अ (नहीं) + बिना (पृथक) + भाव (होना)]। धुंआ का आग के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात् धुंआ का अस्तित्व आग के बिना सम्भव नहीं है। उसका अस्तित्व आग पर ही निर्भर है। ऐसे ही सम्बन्ध को व्याप्ति कहा जाता है।

उपरोक्त उदाहरण में यह ध्यान रखना चाहिए कि धुंआ आग के बिना नहीं रह सकता पर आग का सम्बन्ध धुंआ के साथ उस प्रकार का नहीं है। आग बिना धुंआ के भी रह सकती है, जैसे, गर्म लोहे में। गर्म लोहा में आग

है पर धुंआ नही है। अतः धुंआ का आग के साथ नियत साहचर्य या अविनाभाव सम्बन्ध है पर आग का धुंआ के साथ नहीं। ऐसा इसलिए है कि धुंआ में आग समाविष्ट है पर आग में धुंआ नहीं। आग धुंआ में सीमित नहीं है पर धुंआ आग में सीमित है। दूसरे शब्दों में, आग धुंआ में व्याप्त है पर धुंआ आग में व्याप्त नहीं है। दो पदार्थों में जब व्याप्ति सम्बन्ध है तब उसमें वह जो व्याप्त रहता है व्यापक कहलाता है और वह जिसमें व्यापक व्याप्त है व्याप्य कहा जाता है। आग धुंआ में व्याप्त है अतः आग व्यापक हुआ और धुंआ व्याप्य। व्याप्य बिना व्यापक के सम्भव नहीं है पर व्यापक बिना व्याप्य के सम्भव हो सकता है। इसीलिए 'जहां-जहां धुंआ है वहां-वहां आग होगी' यह सत्य है पर 'जहां-जहां आग होगी वहां-वहां धुंआ होगा' सत्य नहीं है। व्याप्य से व्यापक का संकेत मिलता है पर व्यापक से व्याप्य का संकेत नही मिलता। धुंआ से आग का अनुमान किया जा सकताहै पर आग से धुंआ का नहीं। दूसरा उदाहरण लें, वृष्टि और बादल। यहां 'वृष्टि' व्याप्य है और 'बादल' व्यापक। वृष्टि से बादल का अनुमान किया जा सकता है पर बादल से वृष्टि का नहीं।बादल रहने से भी यह आवश्यक नहीं है कि वृष्टि हो ; पर वृष्टि का अस्तित्व बादल पर ही निर्भर है। अतः व्याप्य (धुंआ) और व्यापक (आग) के बीच (i) नियत साहचर्य (ii) ऐकांतिक भाव (iii) अव्यभिचरित सम्बन्ध वा (iv) अविनाभाव सम्बन्ध को व्याप्ति कहा जाता है।

केवल अविनाभाव सम्बन्ध ही व्याप्ति नहीं है। व्याप्ति-सम्बन्ध के लिए उपाधि (Condition) रहित होना आवश्यक है। आग में धुंआ होना किसी उपाधि पर निर्भर है जैसे भिंगीं लकड़ी पर। यही उपाधि है। आग में भी सदा धुंआ का भाव हो यदि सदा यह उपाधि (भिंगी लकड़ी) रहे। यह सम्बन्ध निर्भर है किसी शर्त पर अर्थात् यह सम्बन्ध सापेक्ष है। यदि यह सम्बन्ध निरपेक्ष रहता तब कहीं भी आग के साथ धुंआ रहता पर धुंआ आग में व्यापक नहीं है अतएव धुंआ का आग के साथ व्याप्ति सम्बन्ध नहीं है। पर आग का धुंआ के साथ सम्बन्ध निरूपाधिक है अर्थात् आग धुंआ के साथ रहने के लिए किसी उपाधि पर निर्भर नहीं है।वह धुंआ में व्याप्त है।

आग का धुंआ केसाथ व्याप्ति-सम्बन्ध है। इसी अनौपाधिक सम्बन्ध को व्याप्ति कहा जाता है।

सारांश यह हुआ कि व्यापक और व्याप्य के बीच अविनाभाव (नियत साहचर्य) अनौपधिक सम्बन्ध को व्याप्ति कहा जाता है।इस सम्बन्ध को पहचानने की सरल रीति है कि साध्य (आग) का अभाव जहां-जहां हो वहां-वहां हेतु (धुंआ) का भी अभाव रहे और जहां-जहां हेतु (धुंआ) का भाव हो वहां-वहां साध्य (आग) का भी भाव हो वहां व्याप्ति सम्बन्ध होगा।

व्याप्ति-सम्बन्ध के समरूप पाश्चात्य तर्क में कार्य-कारण सम्बन्ध है। Mill के अनुसार भी कारण कार्य का नित्य अनौपाधिक पूर्ववर्ती घटना है। जब इसप्रकार का सम्बन्ध दो घटनाओं के बीच हो तब उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध माना जाता है।

व्याप्ति ही अनुमान का मूल आधार है। यदि व्याप्ति में दोष हो जाय तो अनुमान भी दोषपूर्ण हो जाता है। अतः व्याप्ति-सम्बन्ध स्थापित करने में काफी सतर्कता की आवश्यकता है।

§ ३. *व्याप्ति-ग्रहण के उपाय*

अब दूसरा प्रश्न है कि व्याप्ति-सम्बन्ध का ज्ञान कैसे होता है— अर्थात् व्यापक नियमों (universal real proposition) की रचना कैसे सम्भव है ? पाश्चात्य तर्कशास्त्र में यही समस्या आगमन (Induction) का है। Mill ने इसके लिए Method of Agreement और Method of Difference बतलाई है। नैयायिकों और अन्य भारतीय तार्किकों की विधि की व्याख्या के उपरान्त दोनों प्रणालियों में समता का विचार किया जायगा।

बौद्ध तार्किकों का मत—उनका मत है कि व्यायक नियमों की रचना कार्य-कारण सम्बन्ध (causal relation) और तादात्म्य सम्बन्ध पर आश्रित है। कार्य-कारण सम्बन्ध को तदुत्पत्ति सम्बन्ध भी कहा जाता है। तदुत्पति का अर्थ है एक से दूसरे की उत्पत्ति, जैसे, आग से धुंआ की उत्पत्ति। इसमें आग और धूंए में कार्य-कारण सम्बन्ध है। इसलिए धूंए से आग का अनुमान किया जा सकता है। उनके मतानुसार केवल नियत सहचार या सहचार के अभाव

'अनौपाधिको सम्बन्धः (व्याप्तिः)'—वाचस्पति मिश्र।

के नियम से व्याप्ति सिद्ध नहीं होती। दो पदार्थों में व्याप्ति सिद्ध होती है जब उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध हो या तादात्म्य सम्बन्ध हो। अभेद सम्बन्ध को तादात्म्य कहा जाता है। जब दो पदार्थों में एक ही सार वर्त्तमान हो तो उससे व्याप्ति सिद्ध होती है, जैसे, मनुष्य और पशु। दोनों में पशुत्व सामान्य है, अतः सभी मनुष्य पशु हैं, यह अनुमान किया जा सकता है। पाश्चात्य तर्क के अनुसार ऐसे वाक्य शाब्दिक (Verbal) होते हैं।

सारांश यह हुआ कि दो पदार्थों में कार्य कारण या तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर देने से व्याप्ति सिद्ध हो जाती है। यदि 'क' और 'ख' में कार्य-कारण या तादात्म्य सम्बन्ध है तो उनका सम्बन्ध व्याप्ति कहलाता है। पर अब प्रश्न है कि कार्य-कारण सम्बन्ध कैसे स्थापित होता है? यह कैसे स्थापित होता है कि आग धुंआ का कारण है?

बौद्ध तार्किकों ने इसके लिए जो विधि बतलाई है उसे पंच कारणी कहा जाता है। कारण सम्बन्ध निम्नलिखित विधि से स्थापित की जाती है।

(a) कारण का अभाव हो और कार्य का भी अभाव हो।

(b) कारण का भाव हो—

(c) तत्पश्चात् कार्य का भी भाव हो।

(d) कारण का अभाव हुआ—

(e) तत्पश्चात् काय का भी अभाव हुआ।

बौद्धों के कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने की विधि पाश्चात्य Method of Difference से मिलती है। उसमें दो ऐसे उदाहरण लिए जाते हैं कि एक में कारण का भाव हो तो कार्य का भी भाव होता है और दूसरे में केवल कारण का अभाव रहने से कार्य का भी अभाव हो जाता है।

पर नैयायिकों ने कार्य-कारण और तादात्म्य सम्बन्ध को नहीं स्वीकार किया है। उनके अनुसार कार्य-कारण सम्बन्ध भी अविनाभाव (Invariable relation) ही है। दो पदार्थों में कार्य-कारण सम्बन्ध तभी कहा जाता है जब एक के बिना दूसरा न रहे। यह बौद्ध के पंचकारणी से स्वयं सिद्ध होता है; अतः कार्य-कारण और तादात्म्य सम्बन्ध अविनाभाव ही है। उन्होंने वेदान्तियों के मत का समर्थन किया है।

वेदान्त मत :—वेदान्तियों के अनुसार सरल परिगणना (Simple Enumeration) से अव्याघात अनुभूति (Uncontradicted experience) के आधार पर ही व्याप्ति सिद्ध की जाती है। जब हम दो पदार्थों को सदा साथ होते अनुभूति करते हैं और ऐसा कभी नहीं पाते कि एक के अभाव में भी दूसरा पाया जाय तो यह सिद्ध हो जाता है कि उनमें व्याप्ति-सम्बन्ध है। जैसे, धुआं और आग का नित्य सहचार सम्बन्ध देखने को मिलता है। ऐसी अनुभूति का एक भी अपवाद नहीं मिलता अर्थात् ऐसा कभी भी नहीं अनुभव हुआ कि आग के अभाव में भी धुआं हो। इसीसे धुआं और आग की व्याप्ति सिद्ध हुई।

वेदान्तियों का मत मिल की Method of Agreement से मिलती-जुलती है। उसमें दो-तीन उदाहरण लेते हैं जहां कारण का भाव हो। कारण के भाव में कार्य का भी भाव होता है। पर वेदान्तियोंने इसमें अव्याघात अनुभूति को भी जोड़ा है। उनके अनुसार व्याप्ति इसलिए नहीं सिद्ध होती कि दो पदार्थों में नित्य साहचर्य की अनुभूति होती है अपितु इसका एक भी अपवाद नहीं मिलता इसलिए।

नैयायिक मत:—नैयायिकों ने व्याप्तिज्ञान को और भी पुष्ट किया है। वे वेदान्तियों से सहमत हैं कि अव्याघात अनुभूति पर ही व्याप्ति निर्भर है पर उसकी पुष्टि वे तर्क तथा सामान्यलक्षण के ग्रहण करने के द्वारा करते हैं। उनके अनुसार निम्नलिखित विधि से व्याप्ति स्थापित होती है।

(a) सबसे पहले हमें सहचार सम्बन्ध की अनुभूति होती है। दूसरे शब्दों में, हम कई बार दो पदार्थों को सदा साथ पाते हैं, जैसे, धुआं और आग। यह अन्वय विधि हुई। यह मिल की Method of Agreement हुई। पर इससे व्याप्ति सिद्ध नहीं होती। यदि एक बार भी आग के बिना धुआं देखने को मिल जाए तो व्याप्ति कट जाती है।

(b) फिर हमें व्यभिचार-ज्ञान का अभाव होता है अर्थात् जहां आग का अभाव है वहीं धुआं का भी अभाव मिलता है। जैसे, जल में। इससे यह सिद्ध होता है कि आग के बिना धुआं का अस्तित्व सम्भव नहीं है। इसे व्यतिरेक कहते हैं।

इन दोनों क्रमों को मिला देने पर Mill की Joint Method हो जाती है।

उसमें दो प्रकार के उदाहरण लिए जाते हैं, भावात्मक (Positive) और अभावात्मक (Negative) और दोनों में सहचार के आधार पर कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

(c) तीसरे, इस सम्बन्ध का एक भी व्याघातक उदाहरण नहीं मिलने से यह सम्बन्ध और भी पुष्ट हो जाती है। ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जहाँ कि धुआँ हो पर आग न हो अर्थात् एक का भाव दूसरे के बिना हो। व्यभिचार-ग्रह अर्थात् अव्याघात अनुभूति (Uncontradicted experience) इसका प्रमाण है। यहां धुंआ का आग के साथ अविनाभाव सिद्ध हो जाता है। व्यभिचार का अ-ग्रहण और सहचार का ग्रहण व्याप्ति ग्रहण में कारण है।

(d) इसके बाद अविनाभाव सम्बन्ध को अनौपाधिक सिद्ध किया जाता है। अनौपाधिक (unconditional) सम्बन्ध होने से ही व्याप्ति-सम्बन्ध होता है। यदि कोई यह अनुमान करले कि आग और धुआँ के बीच व्याप्ति है तब उसके अनुमान में दोष हो जायगा क्योंकि आग का संयोग गीली लकड़ी (उपाधि) से होने पर ही धुआँ होता है। इसलिए धुआं और आग के बीच अनौपाधिक सम्बन्ध सिद्ध करने के लिए हमें बार-बार धुआँ और आग का निरीक्षण करना पड़ता है। बार-बार इसे देखने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि धुआँ और आग के बीच अनौपाधिक सम्बन्ध है, हालांकि आग और धुआँ के बीच उस प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। बार-बार निरीक्षण करने को भूयोदर्शन (Repeated observation) कहा जाता है। अतः भूयोदर्शन से यह सिद्ध होता है कि धुंआ और आग के बीच अनौपाधिक नित्य सहचार (अविनाभाव) सम्बन्ध है।

(e) अब भी यह शंका हो सकती है कि भविष्य में भी धुंआ और आग के बीच यही सम्बन्ध रहेगा। पाश्चात्य विचारकों में ह्यूम (Hume) ने तथा भारतीय तार्किकों में चार्वाक ने इस प्रकार की आपत्ति की है। भविष्य का मनुष्य को अनुभव नहीं हुआ है इसलिए यह कहा जा सकता है कि भविष्य में भी धुआँ और आग के बीच यही सम्बन्ध होगा यह कैसे निश्चित है? इसे नैयायिकों ने व्यवहित रीति (indirect method) से सिद्ध किया है। यदि 'सभी धुआँवाले पदार्थ आगवाले हैं' यह असत्य है तब इसका व्याघातक (contradictory) 'कुछ धुआँवाले पदार्थ आगवाले नहीं हैं' सत्य होगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि बिना आग के भी धुआँ का अस्तित्व सम्भव है। आग ही धुआँ का कारण माना जाता है। अतः इससे यह सिद्ध हुआ कि कार्य (धुआँ) कभी-कभी बिना कारण (आग) के हो सकता है। यह कार्य-कारण नियम का उल्लंघन करता है। कार्य-कारण नियम है कि प्रत्येक घटना का कारण होता है। यदि कोई यह कहे कि बिना कारण के भी कार्य हो सकता है तब व्यावहारिक जीवन ही संभव नहीं हो सकेगा क्योंकि तब इसका अर्थ यह होगा कि जो फल आग से होता है वह किसी अन्य वस्तु से भी सम्भव है। यदि यह सत्य हो तब भोजन बनाने के लिए आग ही की क्यों आवश्यकता पड़ती है और प्यास बुझाने के लिए पानी की ? इससे यह सिद्ध हुआ कि बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता अर्थात् बिना आग के धुंआ सम्भव नहीं है। इस प्रकार तर्क द्वारा व्याप्ति की पुष्टि होती है। पाश्चात्य तर्क प्रणाली में भी यह विधि पाई जाती है पर कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध करने के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जाता है।

(*f*) अन्त में नैयायिकों ने बतलाया है कि केवल भूयोदर्शन (repeated observation) से व्याप्ति नहीं सिद्ध होती। हम कुछ मनुष्यों को मरणशील देखकर अनुमान करते हैं कि सभी मनुष्य मरणशील हैं और कुछ कौओं को काला देखकर कि सभी काग काले हैं। दोनों व्यापक नियम (universal real proposition) हैं पर सभी मनुष्य मरणशील हैं, इसमें दूसरे से (सभी काग काले हैं) अधिक निश्चयात्मकता मालूम होती है। हम कौओं को दूसरे रंग का विचार कर सकते हैं पर मनुष्य को 'अमर' विचार करना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। ऐसा क्यों होता है जब कि दोनों ही भूयोदर्शन द्वारा स्थापित किए गए हैं ? इसका कारण यह है कि राम, श्याम, हरि की मृत्यु हुई है इसलिए सभी मनुष्य मरणशील नहीं है अपितु उनमें मनुष्यत्व (manhood) है इसलिए वे मरणशील हैं। मनुष्यत्व और मरणशीलता में तात्विक सम्बन्ध (essential relation) है। उन व्यक्तियों में मनुष्यत्व का प्रत्यक्ष होने से ही यह व्यापक नियम स्थापित होता है। अतः व्यक्तियों की समता के आधार पर नहीं अपितु व्यक्तियों में जो स्वभावगुण (essence) है उसी पर व्याप्ति आश्रित है। वस्तुओं के स्वभावगुण को सामान्य जाति-गुण (class-essence)

कहा जाता है। मनुष्यों में मनुष्यत्व, गौओं में गोत्व सामान्य जाति-गुण है। कौओं में कागत्व के कारण उनमें कालापन नहीं है। कालापन उनका आकस्मिक गुण है। इसलिए 'सभी काग काले हैं' यह व्यापक नियम निश्चित नहीं प्रतीत होता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि सामान्य जाति-गुण पर ही व्याप्ति निर्भर है। कुछ मनुष्य और मरणशीलता, धूएँ और आग के भूयोदर्शन से यह सिद्ध नहीं हुआ कि सभी मनुष्य मरणशील हैं या सभी धुआँवाले पदार्थ आगवाले हैं अपितु मनुष्य में मनुष्यत्व और धुँआ में भी धूमत्व के प्रत्यक्ष से ही यह निश्चित हुआ। पर यह प्रत्यक्ष साधारण नहीं है वरन् अलौकिक। इसे सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है। हमें चाहिए कि धूमत्व या मनुष्यत्व को अलौकिक प्रत्यक्ष से जान सकें तभी हम उससे मरणशीलता का अविनाभाव, अनौपाधिक (व्याप्ति) सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इसलिए व्याप्ति अन्त में सामान्यलक्षण प्रत्यक्ष पर आश्रित है।

नैयायिकों का मत संक्षेप में:—

(i) अन्वय रीति से सहचार का ज्ञान;

(ii) व्यतिरेक रीति से अविनाभाव सिद्ध करना अर्थात् अन्वय व्यतिरेक से अविनाभाव सम्बन्ध स्थापित करना।

(iii) अव्याघात अपवाद-रहित अनुभूति से अविनाभाव सम्बन्ध की पुष्टि करना।

(iv) भूयोदर्शन से अनौपाधिक सिद्ध करना अर्थात् व्याप्ति स्थापित करना।

(v) तर्क द्वारा संशय दूर करके व्याप्ति की पुष्टि करना।

(vi) सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष द्वारा ही निश्चित रूप से व्याप्ति स्थिर करना।

§ ४. पाश्चात्य विधि और भारतीय विधि

पाश्चात्य तर्कशास्त्र में (मिल के अनुसार) व्यापक नियम (universal-real propositions) केवल कार्य-कारण सम्बन्ध (causal relation) पर आश्रित होते हैं। कार्य-कारण सम्बन्ध का लक्षण अनौपाधिक नित्य पुर्ववर्तिता बतलाया गया है। मिलने इस सम्बन्ध के स्थापित करने की पांच रीतियाँ

बतलाई है जिनमें M. of Agreement और M. of Difference मुख्य हैं। भारतीय तर्कशास्त्र में व्यापक नियमों का आधार व्याप्ति है जिसे बौद्धों ने कार्य-कारण सम्बन्ध कहा है पर नैयायिकों ने अविनाभाव अनौपाधिक सम्बन्ध बतलाया है। उनके अनुसार यह सम्बन्ध सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष पर आश्रित है जिसके द्वारा सामान्य जाति-गुण (class essence) का ज्ञान होता है। सामान्य जाति-गुण के प्रत्यक्ष से ही विशेष व्यक्तियों की निरीक्षण के आधार पर व्यापक नियमों की रचना होती है। इसके अतिरिक्त वे इस सम्बन्ध की पुष्टि तर्क द्वारा करते हैं। मिल ने सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष को नहीं माना है और तर्क द्वारा आगमन की पुष्टि नहीं की है।

पर अरस्तु ने नैयायिकों की भांति सामान्य जाति-गुण को ही आगमन का आधार बतलाया है। अतः जो भेद अरस्तु और मिल में है वही मिल और नैयायिकों में है।

§ ५. *हेत्वाभास*

हेत्वाभास शब्द दो अर्थों मे प्रयोग किया जाता है। हेतुओं (Middle terms) में जो दोष हो उसे हेत्वाभास कहा जाता है या हेतु में दोष होने से जो दूषित अनुमान होता है उसे हम हेत्वाभास कहते हैं। साधारणतः दूसरे ही अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है अर्थात् हेतु में दोष होने के कारण अनुमान का दोष हेत्वाभास है।

हेत्वाभास वैसा अनुमान है जिसमें अयथार्थ हेतु केवल देखने में हेतु सा प्रतीत होता है। हेत्वाभास का शाब्दिक अर्थ है हेतु + आभास अर्थात् हेतु सा जिसका आभास हो। वास्तव में ऐसे हेतु शुद्ध हेतु नहीं होते पर वैसाही प्रतीत होते हैं। नैयायिकों के अनुसार ऐसे दोष वास्तविक (Material) होते हैं, आकारिक (Formal) नहीं *।

अनुमान के आधार वाक्यों में वास्तविक (Material) सत्यता नहीं रहती इसलिए अनुमान दोषपूर्ण हो जाता है। वास्तव में अनुमान हेतु (Middle

---

* अरस्तु का विचार भी इस मत से मिलता है। पदों के द्विआर्थक होने के कारण अनुमान में जो दोष हो जाते हैं उसे नैयायिकों ने जाति, छल निग्रहस्थान इत्यादि में उल्लेख किया है।

term) पर निर्भर रहता है। 'देवदत्त मरणशील है' क्योंकि 'देवदत्त मनुष्य है' और 'सभी मनुष्य मरणशील हैं'। इस अनुमान में देवदत्त (पक्ष) में 'मरणशीलता' इसलिए सिद्ध हुआ है कि वह मनुष्य है। 'मनुष्य' पद हेतु है अथवा साधन है उसमें मरणशीलता सिद्ध करने के लिए क्योंकि मनुष्य और मरणशीलता में व्याप्ति-सम्बन्ध है। अतः साध्य (मरणशीलता) को पक्ष (देवदत्त) से सम्बन्धित करते हैं हेतु (मनुष्यत्व) के आधार पर। यदि हेतु दोषपूर्ण हो जाय तो अनुमान भी दूषित हो जाता है।

§ ६. *हेत्वाभास के प्रकार* (**kinds**)

न्याय सूत्रों में पाँच प्रकार का हेत्वाभास बतलाया गया है—*

(१) सव्यभिचार (Irregular Middle)

(२) विरुद्ध (Contradictory Middle)

(३) सत्प्रतिपक्ष (Inferentially Contradicted Middle)

(४) असिद्ध (Unproved Middle)

(५) बाधित (non-inferentially Contradicted Middle)

(१) *सव्यभिचार* (Irregular Middle) ×— अनुमान में निगमन (conclusion) हेतु (Middle Term) पर निर्भर है। हेतु का साध्य (Major Term) के साथ व्याप्ति सम्बन्ध होने से ही शुद्ध अनुमान सम्भव है। दूसरे शब्दों में, हेतु का साध्य के साथ नियमित साहचर्य होना चाहिए। धुंआ का आग के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध है। यहां हेतु केवल आग पर ही आश्रित है। यह ऐकान्तिक हैं। कड़ापन का पत्थर के साथ ऐकान्तिक सम्बन्ध नहीं है। वह केवल एक पर ही आश्रित नहीं है अर्थात् केवल पत्थर ही में नहीं अपितु अन्य पदार्थों में भी कड़ापन पाया जाता है। इसलिए वह अनैकान्तिक है।

---

* न्यायसूत्र ने इस प्रकार पांच हेत्वाभासों का उल्लेख किया है—

"अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षतः।

कालात्ययापदिष्टश्च, हेत्वाभासश्च पञ्चधा"

× इसे प्रकरणसम भी कहा जाता है (गौतम)।

शुद्ध हेतु ऐकान्तिक होता है। पर यदि जो अनैकान्तिक हो उसे हेतु माना जाय तो उसे सव्यभिचार कहा जाता है। ऐसे हेतु साध्य के साथ-साथ अलग भी पाए जाते हैं। इसलिए कहा गया है अनैकान्तिकः सव्यभिचारः।

उदाहरणः—यह पत्थर है क्योंकि यह कड़ा है। * यहां कड़ापन और पदार्थों में भी पाया जाता है। यह अनुमान सव्यभिचार हुआ।

(२) *विरूद्ध* (Contradictory Middle)

हेतु साध्य को सिद्ध करता है। यदि किसी अनुमान में ऐसा हेतु दिया जाय कि वह साध्य का उल्टा सिद्ध करे तो वह विरूद्ध हुआ। इसमें जो सिद्ध करना है उसका उल्टा सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ, हवा भारी है क्योंकि वह अवरिक्त (empty) है। यहाँ 'अवरिक्त' हेतु है पर यह हल्कापन सिद्ध करता है न कि भारीपन। इसलिए यहाँ जो सिद्ध करना है उसका उल्टा हेतु द्वारा सिद्ध होता है। दूसरा उदाहरण—वह मनुष्य है चौपाया होने के कारण। चौपाया होने के कारण वह पशु सिद्ध होता है न कि मनुष्य। विरूद्ध मे जो सिद्ध करना है उसके विपरीत निमगन निकलता है।

विरूद्ध और सव्यभिचार में यह अन्तर है कि पहले में हेतु का साध्य से कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि हेतु उसका उल्टा सिद्ध करता है, दूसरे में हेतु के साथ सम्बन्ध है पर वह उससे अलग भी मिलता है। चौपाया से मनुष्य नहीं अपितु पशु सिद्ध होता है। यह विरूद्ध हुआ। कड़ापन पत्थर में मिलता है पर उससे अलग भी। विरूद्ध की तरह ऐसा नहीं होता कि कड़ापन पत्थर में मिले ही नहीं, जैसे, चौपाया और मनुष्य। इसलिए विरूद्ध में विपरीत निगमन निकलता है पर सव्यभिचार में दो विपरीत निगमन निकलते हैं।

(३) *सत्प्रतिपक्ष या प्रकरणसम*

साध्य (Major term) का पक्ष (Minor term) में होने या नहीं होने का जब अनिश्चय रहता है तभी उसे हेतु द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता होती है। जैसे, पहाड़ पर आग है या नहीं यह सन्देह होने से ही विवाद का

* ऐसे हेतु अनुचित सामान्यीकरण के फल हैं। इसमें बिना नियमित साहचर्य सम्बन्ध स्थिर किए हुए ही व्याप्ति-वाक्य की रचना की जाती है। इसमें मध्य पद अव्याप्त (undistributed) रहता है।

अवसर (प्रक्रण) आया। इसे 'धुंआ' (हेतु) के प्रत्यक्ष से सिद्ध किया जाता है। पर यदि साध्य के बल पर ही साध्य को प्रमाणित किया जाय तो उसे प्रकरणसम या सत्प्रतिपक्ष कहा जाता है। उदाहरणार्थ, राम ज्ञानी है क्योंकि उसमें अज्ञान का अभाव है या शब्द नित्य है अनित्य गुणरहित होने से। यहां साध्य को ही साध्य का आधार माना गया है। जिस विषय में सन्देह है उसी के आधार पर उसे प्रमाणित किया गया है। यदि यह निश्चित रहता कि राम में अज्ञान का अभाव है या शब्द अनित्य गुणरहित है तब यह सिद्ध करने की क्या आवश्यकता थी कि राम ज्ञानी है या शब्द नित्य है? इस अनुमान के विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि राम अज्ञानी है क्योंकि उसमें ज्ञान का अभाव है या शब्द अनित्य है नित्य गुणरहित होने के कारण। यहां पक्ष और विपक्ष दोनों को सिद्ध करने के लिए एक समान बलवान हेतु वर्तमान हैं। इसको सत्प्रतिपक्ष कहा गया है क्योंकि इसमें प्रतिपक्ष भी रहता है और उसमें भी पक्ष ही के समान बल होता है। दूसरे शब्दो में, इसमें एक हेतु द्वारा जो साध्य सिद्ध किया जाता है उसके उल्टा समान बलवाला दूसरे हेतु द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है।

विरूद्ध में दिए हुए हेतु से साध्य का उल्टा सिद्ध होता * है पर सत्प्रतिपक्ष में दिए हुए हेतु से जो सिद्ध होता है उसका उल्टा समान बलवाला दूसरे हेतु से प्रमाणित किया जा सकता है। यही दोनों में अन्तर है।

(४) *असिद्ध या साध्यसम* (unproved middle)

हेतु के द्वारा साध्य सिद्ध किया जाता है। धुंआ से ही पर्वत पर आग का ज्ञान होता है। इसलिए हेतु का साध्य के साथ निश्चित सम्बन्ध होना चाहिए। यदि ऐसे हेतु का प्रयोग किया जाय जो स्वयं सिद्ध नहीं है तो ऐसे अनुमान को असिद्ध कहा जाता है। इसमें जिस तरह साध्य को पक्ष में प्रमाणित करने की आवश्यकता रहती है वैसे ही (साध्य के समान) हेतु को भी सिद्ध करने की आवश्यकता रहे तो यह असिद्ध (साध्यसम) हुआ। उदाहरणार्थ, छाया द्रव्य है क्योंकि उसमे गति है। छाया का द्रव्य होना सिद्ध किया गया है उसमें गति होने के कारण पर यह स्वयं सिद्ध करने की आवश्यकताहै कि छाया

* पाश्चात्य तर्क में इसे petitio principii (सिद्ध साधन) कहा जाता है।

में गति है। वास्तव में छाया में गति नहीं होती। गति वस्तु में होती है। इसमें हेतु स्वयं असिद्ध है।

(५) *बाधित या कालातीत*

हेतु द्वारा जो साध्य सिद्ध किया गया है यदि उसका उल्टा किसी दूसरे प्रमाण द्वारा सिद्ध हो जाय तो उसे बाधित कहा जाता है। उदाहरणार्थ, आग में ठंढक है क्योंकि वह द्रव्य है। यहाँ आग के द्रव्यत्व से उसमें ठंढक सिद्ध किया गया गया है पर प्रत्यक्ष द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि आग में ठंढक नहीं ताप है। जो सिद्ध किया गया है उसका उल्टा प्रत्यक्ष द्वारा प्रमाणित हुआ है। दिया हुआ अनुमान दूसरे प्रमाण (यहाँ प्रत्यक्ष द्वारा) द्वारा कट जाता है। यही बाधित है।

विरूद्ध में दिए हुए हेतु से ही साध्य का उल्टा सिद्ध होता है, जैसे, चौपाया से पशु, न कि मनुष्य। बाधित में साध्य का उल्टा दूसरे प्रमाण द्वारा (प्रत्यक्ष, शब्द या उपमान) असिद्ध होता है। सत्प्रतिपक्ष में दिए हुए हेतु से जो सिद्ध होता है उसका उल्टा दूसरे समान बलवाले हेतु से सिद्ध होता है। यही इनमें अन्तर है।

सारांश:—(i) हेत्वाभास वैसे अनुमान को कहा जाता है जिसका हेतु केवल देखने में हेतु सा हो पर वास्तव में वह दूषित हेतु हो। हेत्वाभास मुख्यतः पाँच प्रकार का होता है, सव्यभिचार, विरूद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और बाधित।

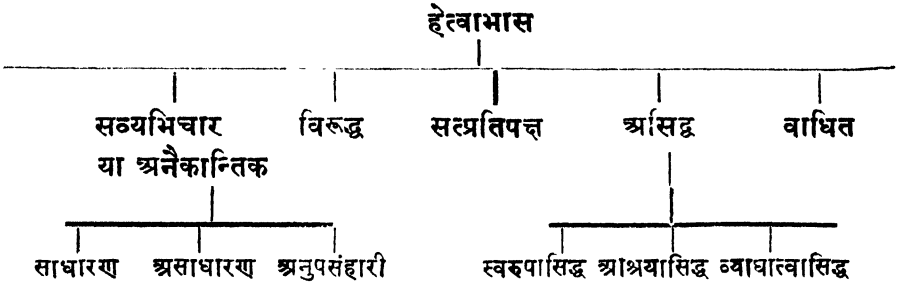
(ii) सव्यभिचार में, हेतु केवल साध्य में ही नहीं अपितु अन्य पदार्थों में मिलने के कारण, निश्चित निष्कर्ष नहीं होता।

(iii) विरूद्ध में हेतु साध्य को सिद्ध करने के बदले उसका उल्टा सिद्ध करता है।

(iv) सत्प्रतिपक्ष में दिये हुए हेतु के समान बलवाले दूसरे हेतु से साध्य अर्थात् जो सिद्ध करना है उसका उल्टा सिद्ध होता है।

(v) असिद्ध में हेतु स्वयं सन्दिग्ध रहता है। उसी को सिद्ध करने की आवश्यकता होती है।

(vi) बाधित में दिए हेतु से जो सिद्ध होता है उसका उल्टा प्रत्यक्ष या अन्य प्रमाणों के द्वारा सिद्ध होता है।



§७. *अभ्यास*

1. What is Vyapti ? Explain fully.
2. What is the function of Vyapti in an inference ? Explain.
3. Explain the form of an inference ? Is it necessary to have Vyapti therein ?
4. How Vyapti is formed ? Explain.
5. Are Mill's Methods analogous to the Method of Induction of the Nyayiks ? Is Vyapti formed by Anvya and Vaitireki only ? Explain.
6. What is the fundamental difference between the Western and the Indian Methods in the formation of Vyapti ? Explain.
7. What is Hetvabhas ? What are its chief kinds ? Explain.
8. Explain the difference between the different kinds of Hetvabhas.

परिशिष्ट

(क) पाश्चात्य आगमन शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास

आगमन शास्त्र आधुनिक युग की देन है। निगमन (Deduction) की भांति इसका जन्म अरस्तु (Aristotle) के समय में नहीं हुआ है। प्राचीन काल में अरस्तु इत्यादि के दर्शन में इसका उल्लेख मिलता है पर इसकी प्रधानता उस वक्त नहीं थी। माध्यमिक काल के दार्शनिकों ने भी आगमन की चर्चा की है पर उस समय भी इस रूप में यह शास्त्र प्रधान नहीं था। अत: निगमन की तुलना में आगमन आधुनिक उपज है।

(i) प्राचीन काल (Ancient Period):—

Aristotle-'Induction' शब्द की उत्पत्ति 'Epagoge' शब्द से हुई है। इस शब्द का प्रथम प्रयोग Aristotle ने ही किया था। इसका अर्थ है 'प्रत्येक घटना विशेषों की परीक्षा करके उनसे सामान्य निष्कर्ष स्थापित करने की क्रिया' इस प्रकार की क्रिया को Aristotle ने परम्परानुमान (Syllogism) के रूप में व्यक्त किया है। इस प्रकार का अनुमान पूर्ण आगमन (Perfect Induction) की भांति हैं। इसीलिए कुछ तार्किकों ने समझा है कि Aristotle ने वैज्ञानिक आगमन को आगमन का वास्तविक रूप स्वीकार नहीं किया है। यह सत्य है कि वैज्ञानिक आगमन आधुनिक काल के तार्किकों की देन है पर Aristotle भी उससे परिचित था। उसने इसे Iuduction नहीं अपितु 'Experimen tum' अर्थात् 'अनुभव-जन्य प्रमाण' कहा है।

(ii) मध्यकालीन तार्किक (Middle Ages)

रूढ़ीवादी तार्किक— इन्होने भी आगमन के आधार की ओर ध्यान दिया है। उन्होंने आगमन का आधार गणना बतलाया है। अत: आगमन का दो रूप इन्होने बतलाया Perfect (पूर्ण) आगमन और Imperfect (अपूर्ण) आगमन। पूर्ण आगमन वह है जिसमें सम्पूर्ण घटना विशेषों को देखकर सामान्य निष्कर्ष स्थापित की जाय। अपूर्ण आगमन में 'कुछ' घटना विशेषों को

देखकर सामान्य निष्कर्ष स्थापित की जाती है। पर दोनों को उन्होंने गणना पर आश्रित बतलाया है। गणना का अर्थ है केवल संख्या जान लेना। इनका घटना-विशेषों के सारगुण से सम्बन्ध नहीं था पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वे वैज्ञानिक आगमन से अपरिचित थे। उन्होंने भी Aristotle की भांति उसे अनुभव जन्य प्रमाण कहा है।

(iii) आधुनिक काल (Modern Age).

१. बेकन—बेकन आधुनिक आगमनात्मक दर्शन का पवर्त्तक माना गया है। उसने पुराने दर्शनों की असफलता बतलाई है और नए दर्शन को आरम्भ करने पर जोर दिया है। पुराने काल में बाईबील की बातों को स्वीकार करके उससे निगमन निकालने की प्रथा थी। बेकन ने बतलाया है कि घटना-विशेषों का अनुभव करके ही उनका कारण (Forms) जाना जा सकता है और कारणों के ज्ञान होने पर ही मनुष्य को प्रकृति का वास्तविक ज्ञान हो सकता है। अतः ज्ञान के लिए अनुभव (Experience) आवश्यक है। सरल गणनात्मक अनुमान बच्चों का अनुमान है। आगमन वैज्ञानिक ढ़ंग से घटना विशेषों का निरीक्षण करके ही स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए उसमें तीन सीढ़ियां बतलाई है।

(क) घटना विशेषों का इकट्ठा करना-जिस घटना की जाँच की जा रही है उसका उदाहरण प्राप्त करना।

(ख) उन उदाहरणों में वैसे गुणों को जानना जो सामान्य हैं और असामान्य गुणों का निराकरण। इसके लिए उसने तीन Tables बतलाई है।

(a) Table of Presence—दो-तीन उदाहरणों को देखना जिसमें जांच की जानेवाली घटना उपस्थित हो।

(b) Table of Absence—ऐसे उदाहरणों को देखना जिसमें जांच की जानेवाली घटना नहीं हो।

(c) Table of Degrees—ऐसे उदाहरणों को देखना जिसमें जांच की जानेवाली घटना भिन्न मात्रा में उपस्थित हो। यही तीनों Tables के आधार पर Mill की तीन विधियां Method of Agreement, Method of Difference और Method of Concomitant Variations है।

(ग) भिन्न परिस्थितियों में घटना विशेषों का निरीक्षण और अनावश्यक बातों का निराकरण (Elimination)।

इन्हीं तीनों क्रमों के द्वारा बेकन ने बतलाया है कि प्रकृति के नियम स्थापित किए जा सकते हैं।

बेकन ने भावात्मक और अभावात्मक दोनो प्रकार के उदाहरणों की परीक्षा करने पर जोर दिया है। यही बेकन की विशेषता है। उसने विश्लेषण और निराकरण को प्रधानता दी है। घटना विशेषों के विश्लेषण करने पर ही यह पता चल जाता है कि कौन से गुण आवश्यक या अनावश्यक हैं। इसलिए उसने कल्पना को वैज्ञानिक दृष्टि से बेकार बतलाया है।

बेकन का कथन बहुत अंशों में सत्य है पर विश्लेषण और निराकरण से ही प्राकृतिक नियमों की रचना सम्भव नहीं है। विश्लेषण के लिए ही कल्पना की आवश्यकता होती है।

उसके अतिरिक्त निराकरण विधि स्वयं निगमगात्मक है। यदि यह पता चले कि कारण या A है या B या C या D और विश्लेषण के उपरान्त यह पता चले कि कारण B नहीं है, न C है, न D है तब निष्कर्ष होगा कि कारण A है।

२. न्यूटन, हरशेल और वेवेल—

न्यूटन— बेकन की रीति में दोष पाकर वैज्ञानिक न्यूटन ने बतलाया है कि आगमन के लिए तीन steps, विश्लेषण, नियम रचना और संयोगीकरण, आवश्यक हैं। उसने कहा है कि जब तक पूर्ण रूप से घटनाविशेषों की परीक्षा नहीं कर ली जाय तब तक उनके कारण के विषय में कल्पना नहीं करनी चाहिए।

हरशेल— उसने नियमों की रचना करने के लिए नौ नियमों का उल्लेख किया है। उनमें से कुछ को मिल की पद्धतियों में समझाया गया है।

वेवेल— उसने आगमन को अंश-संकलन कहा है। घटनाविशेषों की परीक्षा करके उन्हें कोई योग्य बोध (Concept) द्वारा व्यक्त करना ही आगमन है। आगमन का लक्ष्य है आविष्कार करना।

३. मिल— वर्त्तमान आगमन का आरम्भक मिल है। उसने बतलाया है कि आगमन का लक्ष्य है प्रमाणीकरण न कि आविष्करण। सामान्य नियमों को सिद्ध करना ही आगमन है। आगमन प्रकृति-समरूपता और कार्य-कारण नियमों पर आश्रित रहता है। इसकी व्याख्या पीछे की गई है।

४. जेवन्स, स्टेविंग इत्यादि विचारकों ने मिल की आलोचना की है और आगमन का रूपान्तर कर दिया है।

Patna University Questions

1944–A.

1. Give an analysis of the Scientific Process of Induction illustrating its steps by examples.

2. How does 'Plurality of causes' differ from 'Composition of causes ?' Explain and illustrate the remark that 'the doctrine of plurality of causes is due to our different estimate of the cause and effect ?

3. Explain and illustrate the Method of Agreement. What are its advantages and defects ? How does it differ from Induction by simple Enumeration ?

4. Give reasons for accepting or rejecting any three of the following statements:

(a) The course of the world is not a uniformity but uniformities.

(b) The Experimental Methods of Mill are mere weapons of elimination.

(c) The principle of uniformity of Nature is the result of Induction.

(d) The difference between observation and experiment is one of degrees and not of kind.

5. Define Hypothesis. Exemplify the various ways in which hypothesis are suggested. What is a legitimate hypothesis ?

6. 'The full scope of Deductive Method comprises three operations'. What are these operations ? Explain and illustrate them.

7. Explain the nature of Scientific classification and indicate its relation to Explanation. Should Classification be based on Type or on Definition ? Give reasons for your answer.

8. Write explanatory and illustrative note on the following fallacies:

(a) Argumentum ad Populum.
(b) Post hoc ergo propter hoc.
(c) Argumentum ad hominem.
(d) Hysteron Proteron.

9. What is a law ? How are laws classified. Give examples of the different kinds of laws.

1945–A.

1. Explain the following statements:—
(a) Induction precedes Deduction.
(b) Deduction precedes Induction.
(c) Induction and Deduction run into each other.

2. If we can generalise on the basis of the Uniformity of Nature what is the necessity of assuming causation as the basis of Induction ? Explain the relation of the Uniformity of Nature to the law of Causation.

3. Distinguish between cause and condition, and between positive condition and negative condition.

A man while crossing a river in a boat is overtaken by 'a squall of wind. The boat founders and the man is drowned'. Point out the cause and conditions of his death.

4. Explain and illustrate the following:
(a) Imperfect Induction.
(b) Experimentum crucis.
(c) Empirical Law.
(d) Classification by Type.

5. What is the place of Hypothesis in Induction ? How is Hypothesis verified ? Illustrate this by example.

6. 'The Method of Agreement is a Method of Discovery, while the Method of Difference is a Method of Proof'. Explain this and point out the advantages of the Method of Difference over the Method of Agreement.

7. Distinguish between Popular and Scientific Explanation. Illustrate with concrete examples the different forms of Scientific Explanation.

8. Define Analogy, and give an example to illustrate analogical inference. Can an argument from analogy be ever certain ? Discuss the question.

9. Give examples to explain and illustrate the following fallacies; (a) Non-observation and Mal-observation; (b) False Analogy; (c) False Explanation; (d) False Generalisation.

1946–A.

1. Explain fully the characteristics of Induction Proper. Distinguish between Popular and Scientific Induction.

2. Write a critical note on the Plurality of causes, showing how it offers a real difficulty in inductive investigation.

3. Distinguish between Observation and Experiment. Explain the advantages of Experiment over Observation.

4. State and explain the Method of Concomitant Variations ? Illustrate the two forms of the Method. What is its special merit ?

5. What is Hypothesis ? What are its different forms ? Explain and illustrate the chief uses of hypothesis.

6. Explain and illustrate the following:

(a) Intermixture of Effects.
(b) The Physical Method.
(c) Invariable and Approximate Law.

7. On what does the strength of analogical argument depend ? How does Analogy differ from Deduction and Induction ?

8. Explain the truth of the following statements :

(a) Classification is a form of Explanation.
(b) A cause is the invariable unconditional antecedent.
(c) The explanation of nature can never be completed.

9. Explain and illustrate the different fallacies connected with causation.

1947—A.

1. Justify the statement : Deduction without Induction is purely theoretical and valueless ? Discuss the relation between Deduction and Induction.

2. Why has the method of complete Enumeration been called Perfect Induction ? Is it essentially different from simple Enumeration ? Illustrate your answer.

3. How is the Law of Causation related to the Law of Uniformity of Nature ?

4. Describe, with examples, the features of a legitimate hypothesis.

5. Explain and illustrate the Method of Residues. Can it be legitimately called a method of Induction ?

6. Why are the Experimental Methods called the 'methods of elimination' ? Answer with the help of concrete examples.

7. Distinguish between popular and scientific Explanation. What are the limits of Explanation ?

8. Illustrate the application of the Direct and Indirect Deductive Methods. Draw a comparison between the two.

9. Explain and illustrate the fcllowing ;

(a) Post hoc, ergo, propter hoc.
(b) Mal-observation.
(c) Colligation of Facts.
(d) Clasification by Type.

1948—A.

1. Analyse the procedure of Induction and illustrate the different steps involved in it.

2. Define cause, and explain the significance of every important word used in the definition.

3. Distinguish between observation and experiment and discuss the relative advantages of each.

4. A dead body is found on the railway lines. Frame different hypothesis to account for it and select the best one, giving reasons.

5. The Inductive canons follow from the principles of Causation.

6. State and explain the Method of Difference pointing out its merits and demerits.

7. Analyse the nature of Analogical Reasoning and point out the factors which determine its strength.

8. Write notes on any two of the following:
   (a) The law of Uniformity of Nature.
   (b) The Plurality of causes.
   (c) Illusory Explanation.

9. Explain and exemplify the various fallacies relating to causation

1949—A.

1. What is the distinction between Induction and Deduction ? Bring out clearly the point of contrast.

2. Explain clearly the Law of Uniformity of Nature. Why is it called a formal ground of Induction ?

3. In what sense is the Cause equal to the Effect ? 'Sometimes mighty events spring from trivial causes.' Is this statement logically tenable ?

4. What kinds of hypothesis are illegitimate ? Illustrate your answer by examples.

5. Explain clearly the Method of Residues. How does it differ from the Method of Difference ?

6. Distinguish between Analogy and Induction. Give examples of good and bad Analogy.

7. Distinguish between 'Popular' and 'Scientific' Explanation. Describe the main forms of the latter. Can all things be explained ?

8. Write notes on *any two* of the following:—
   (a) The Inverse Deductive Method.
   (b) Empirical and Derivative Laws.
   (c) Classification by Series.

9. Explain and exemplify the fallacies of Generalization.

1950-A.

1. What are the characteristics of Scientific Induction ? Explain and illustrate them fully.

2. 'Science does not recognize any Plurality of Causes.' Do you agree ? Give reasons.

3. Explain clearly the nature of Observation and Experiment. Why are they called the material grounds of Induction ?

4. What are the different ways of proving a Hypothesis ? Give examples.

5. Explain the Deductive Method. What are its uses ?

6. State and explain the Method of Difference, pointing out its merits and defects.

7 What is Chance ? How can it be eliminated ?

Or

Classify Laws of Nature with respect to their generality. Give examples of Empirical Laws.

8. Write notes on *any two* of the following:—

(a) Vyatireka (b) *Post hoc ergo propter hoc.*

(c) Mean and Mode. (d) Illusory Explanation.

9. Explain and exemplify the various fallacies relating to Observation.

1950—S.

1. Analyze the procedure of Induction, and illustrate the different steps involved in it.

2. Distinguish between Popular and Scientific views of Causation. Is the Cause always an invariable antecedent of its Effect ?

3. Explain, with examples, the distinction between (a) Real and Nominal Definitions, (b) Genetic and Substantial Definitions.

4. Explain, with examples, the different forms of Hypothesis.

5. Distinguish between Analogy and Induction. Give examples of False Analogy.

6. Explain and illustrate the Method of Agreement, pointing out the difficulties connected with the employment of this Method.

7. What is the nature and significance of Average ? Show how Variable is related to Average

Or

What is Scientific Explanation ? Describe its main forms and limits.

8. Write notes on *any two* of the following:—

(a) *Experimentum crucis.*

(b) Classification by Type.

(c) *Anvaya-Vyatireka*

(d) The Direct Deductive Method.

9. Explain and exemplify the various fallacies relating to causation.